गगनाञ्चल

वर्ष 14 अंक 1 1991

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्
नयी दिल्ली

प्रकाशक

वीणा सीकरी, महानिदेशक
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद
नयी दिल्ली 110002

संपादक

गिरिजा कुमार माथुर

सहायक संपादक

डॉ. अमरेंद्र मिश्र

आवरण

कांतिराय

मुद्रक

विमल ऑफसेट
1/11804, पंचशील गार्डन,
नवीन शाहदरा दिल्ली-110032

शुल्क दरें

एक अंक	वार्षिक	त्रैवार्षिक
रु. 5.00	रु. 20.00	रु. 50.00
£ 1.00	£ 4.00	£ 10.00
$ 2.50	$ 10.00	$ 25.00

ISSN 0971-1430

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् भारत सरकार के विदेश मंत्रालय के अधीन एक स्वायत्त संगठन है। भारत व अन्य देशों के मध्य सांस्कृतिक संबंधों एवं पारस्परिक सद्भाव को स्थापित तथा संपुष्ट करने के उद्देश्य से 1950 में परिषद् की स्थापना की गयी थी। भारत तथा दूसरे देशों के मध्य इस सांस्कृतिक संवाद के उद्देश्य से आयोजित अपने प्रकाशन कार्यक्रम में परिषद् अन्य गतिविधियों के अतिरिक्त त्रैमासिक पत्रिकाएं भी प्रकाशित करती है जो हिंदी (गगनाञ्चल), अंग्रेजी (इंडियन हराइजन्स, अफ्रीका क्वार्टरली, अरबी (सक़ाफ़त-उल-हिंद) स्पेनिश (पपेलस-दे-ला-इंडिया) और फ्रेंच (रेकौंत्र अवेकलैंद) भाषाओं में हैं। हिंदी और अंग्रेजी की शुल्क दर नीचे दी गयी है। स्पेनिश, फ्रेंच और अरबी त्रैमासिक निःशुल्क हैं। गगनाञ्चल के शुल्क के भुगतान से संबंधित पत्र-व्यवहार और प्रकाशन सामग्री के लिए संपादक 'गगनाञ्चल' से निम्नलिखित पते पर संपर्क किया जाना चाहिए :

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्
आजाद भवन, इंद्रप्रस्थ इस्टेट
नयी दिल्ली-110002

गगनाञ्चल

वर्ष 14 अंक 1 1991

माखनलाल चतुर्वेदी अंक

सांस्कृतिक उन्मेष, सामाजिक यथार्थ, सौंदर्य और प्रगीत के महान उन्नायक : कविवर माखनलाल चतुर्वेदी का जीवन-क्रम और सृजन:एक नजर

जीवन-क्रम

4 अप्रैल, सन् 1889, वैष्णव परिवार में मध्य प्रदेश के बाबई नामक गांव में जन्म। 1905-मसन गांव में (जो बाबई के पास है) आठ रुपए माह पर शिक्षक नियुक्त हुए। 1910 राष्ट्रीय मंडल में लोकमान्य तिलक का प्रवेश और चतुर्वेदी जी का उनसे प्रभावित होकर राजनीति की ओर झुकाव। 1912 शिक्षण-कार्य से त्यागपत्र। 1913 रामनवमी को 'प्रभा' पत्रिका का प्रारंभ। 1914 अल्पायु में ही पत्नी ग्यारसीबाई का देहांत। 1915 हृदय रोग के शिकार। 1917 श्री गणेशशंकर विद्यार्थी के साथ कानपुर गए। 1918 प्रभा का कानपुर से प्रकाशन। 'कृष्णार्जुन युद्ध' नाटक का प्रकाशन। 1919-17 जनवरी से 'कर्मवीर' का जबलपुर से प्रकाशन। 1921 राजद्रोह के अभियोग में 12 मई को गिरफ्तारी। 5 जुलाई को कारावास की सजा। 1922-4 मार्च को कारावास से छुटकारा। 22 नवंबर को 'कर्मवीर' से त्यागपत्र। 1923 डॉ. राजेंद्रप्रसाद, सरदार पटेल, श्री जमनालाल बजाज आदि के साथ झंडा सत्याग्रह की निर्देशक-समिति में सहयोग। 1924 झंडा सत्याग्रह की रिपोर्ट प्रस्तुत की और श्री गणेशशंकर विद्यार्थी के जेल जाने के बाद 'प्रताप' का संपादन-भार संभाला। 1925 4 अप्रैल, से 'कर्मवीर' का अपने स्वामित्व और संपादन में प्रकाशन। 1929 भरतपुर में संपादक-सम्मेलन की अध्यक्षता, उसके बाद एक वर्ष के लिए जेल-यात्रा। 1934 हिंदी साहित्य सम्मेलन की साहित्य परिषद् की अध्यक्षता। 1936 कांग्रेस पार्लियामेंटरी बोर्ड (म.प्र.) की अध्यक्षता। 1939 त्रिपुरी कांग्रेस के अवसर पर स्वागत-समिति के उपाध्यक्ष निर्वाचित, किंतु आपरेशन होने के कारण अधिवेशन में न जा सके। 1940 हिमकिरीटिनी का प्रकाशन। 'साहित्य-देवता' का मुद्रण जो बाद में प्रकाशित हुआ। 1944 अस्वस्थता, विश्राम और साहित्य-सृजन। 1958 सागर विश्वविद्यालय ने खंडवा में विशेष दीक्षांत-समारोह का आयोजन कर आपको डी. लिट्. की मानद उपाधि दी। 1963 भारत सरकार द्वारा पद्मभूषण की उपाधि प्रदान की गई। 1965 मध्य प्रदेश शासन ने खंडवा में द्विदिवसीय आयोजन कर आपका विशेष सम्मान किया। 1968-30 जनवरी 1968 को देहावसान।

सृजन

काव्य : हिमकिरीटिनी 1943 हिमतरंगिनी 1949 माता 1951 युगचरण 1956 समर्पण 1956 आधुनिक कवि भाग-6 1960 बीजुरी काजल आज रही 1964 वेणु लो गूंजे धरा (1960) मरणज्वार (सं. श्रीकांत जोशी) 1963।

नाटक : कृष्णार्जुन युद्ध 1918 : निबंध साहित्य देवता 1943 अमीर इरादे गरीब इरादे 1960।

कहानी : कला का अनुवाद 1954।

संस्मरण : समय के पांव 1962। भाषण : चिंतक की लाचारी 1963 निबंध : पांव-पांव, 1980 निबंध/गद्यकाव्य : रंगों की बोली, 1982।

प्रेम, उत्सर्ग और सौंदर्य का निर्झर
एक भारतीय आत्मा का काव्य

प्रो. विजयेंद्र स्नातक

समूचे राष्ट्र की चिंता करने वाला, सबके कल्याण की कामना करने वाला, सबके सुख के गीत गाने वाला कवि, राष्ट्र कवि होता है। उसके काव्य में पूरे देश की धरती की धड़कन, पूरे देश का पवन-पानी और पूरे देश की गंध होती है। 'एक भारतीय आत्मा' नाम से विख्यात कवि माखनलाल चतुर्वेदी के पास एक दैवी शक्ति थी जो अपने युग की संपूर्ण राष्ट्रीय चेतना को स्वर देने और जन-मानस में विदेशी शासन के प्रति आक्रोश, विद्रोह और उत्तेजना उत्पन्न करने में समर्थ थी। भारतीय आत्मा का प्रतिनिधित्व वही व्यक्ति कर सकता है जो भारतीय जन-जीवन से पूरी तरह जुड़ा हो और राष्ट्र के सुख-दुख का पूरी तरह भोक्ता हो। इस दृष्टि से 'एक भारतीय आत्मा' ने अपनी पहचान राष्ट्र प्रेम के गीत गाकर, काव्य में मरण त्यौहार मनाकर, बलिदान और उत्सर्ग की नई दिशाएं खोजकर सबसे अलग बनाई थी।

कवि समाज में उपनाम रखने की पुरानी परंपरा है। उस युग में भी रत्नाकर, रसाल, हरिऔध, भ्रमर, स्नेही, पूर्ण, शिलीमुख, शंकर, निराला आदि कवि मंडली में प्रचलित उपनाम थे। माखनलाल चतुर्वेदी ने अपने लिए तीन शब्दों का जो उपनाम चुना वह एक वाक्यांश जैसा उपनाम है—'एक भारतीय आत्मा'। यह नाम न तो कोमल कांत पदावली में आता है और न किसी भावुक मानसिकता का द्योतक है। इस उपनाम के चयन में कवि की संकल्पनात्मक, समर्पणात्मक, उत्सर्ग भावना ही प्रेरक रही है। 'एक भारतीय आत्मा' उस व्यक्ति का नाम है जो भारत और भारतीय अस्मिता को पूरी तरह आत्मसात् कर उसकी रक्षा में अपना सर्वस्व उत्सर्ग करने की स्पृहा रखता है। 'भारतीय आत्मा' शब्द से ध्वनित होता है कि भारत मेरा देश है और मैं इस देश की स्वतंत्र आत्मा हूं। ऐसा सटीक नाम कभी किसी कवि ने नहीं चुना। इस प्रकार की सार्थकता किसी युग में किसी उपनाम को प्राप्त नहीं हुई। 'निस्संदेह चतुर्वेदी जी विराट् भारत की अखंड आत्मा थे। उनके काव्य में हिमालय की गरिमा हरितांबरा धरती से बोली है, धरती से मिली है।' उन्होंने पराधीनता के पाश में जकड़ी भारत भूमि के दारुण विषाद को, मानवीय करूणा में निमज्जित कर जिस रूप में प्रस्तुत किया वह काव्य गीत युग-युग का संगीत बन गया। उनकी अनेक कविताएं अपनी सरसता, रोचकता और भाव-भंगिमा के कारण राष्ट्र प्रेमियों का कण्ठहार बन गईं।

चतुर्वेदी जी ने द्विवेदी युग में साहित्य क्षेत्र में प्रवेश किया था किंतु उनका भाव बोध और रचनातंत्र इतिवृत्तात्मक शैली से सर्वथा भिन्न कोटि का था। आश्चर्य का विषय है कि उन्होंने अपनी रचनाओं में तत्कालीन समाज सुधारवादी आंदोलनों को स्थान नहीं दिया और सम-सामयिक पुनर्जागरण की गुंजायमान ध्वनि को ग्रहण नहीं किया। इस वाणी-पुत्र ने उत्सर्ग और राष्ट्र समर्पण के सिवाय कुछ सोचा ही नहीं, कुछ चाहा नहीं। छायावादी कवियों

की रहस्य भावना और अध्यात्म-परक संकेतों को भी राष्ट्र स्तवन और भक्ति के रागात्मक संदर्भों में जड़ कर नया कर दिया। 'किसी बाला के केश पाश में लोचन उलझाना', लाज भरे सौंदर्य को अपलक नेत्रों से निहारना', 'आकाश से किसी मौन निमंत्रण को सुनना', मधुर-मधुर दीपक की लौ पर न्यौछावर होना उन्हें नहीं सुहाया'। यदि छायावादी लहर में चतुर्वेदी जी बह जाते तो उनके काव्य का स्वर कुछ और ही होता। भारत-स्वातंत्र्य के प्रयास की बेला में चतुर्वेदी जी ने भारत माता की आराधना के गीत गाकर जन-मन को अहिंसक क्रांति क. संदेश देना ही अपना लक्ष्य बना लिया—

> "पहनना बेड़ियां, मजबूर होना, मार खाना पर
> नहीं आंसू बहाना, यह हमारी साधना होगी,
> जहां जंजीर झनकारी कि सुर में सुर मिला देंगे,
> विजयिनी आर्य माता की वही आराधना होगी।"

चतुर्वेदी जी की विचारधारा प्रारंभ में लोकमान्य तिलक से प्रभावित थी। उस समय भारत के राजनीतिक रंचमंच पर महात्मा गांधी का उदय नहीं हुआ था। क्रांति और ब्रिटिश शासन के प्रति विद्रोह का भाव उनके मन में गहरा पैठा हुआ था इसीलिए तिलक के स्वराज्य प्राप्ति विषयक विचारों का वे समर्थन करते रहे। जवानी को जीवन का श्रृंगार मानते रहे और राष्ट्र की बलि वेदी पर कुर्बानी के स्वप्न देखते रहे। भारत के लोक मानस को झकझोरने के साथ वे अपराजेय लौह पुरुष की भांति स्वाधीनता का मनोहारी चित्र उकेरते रहे। उनका मन लंबे अर्से तक स्वाधीनता प्राप्ति के लिए हिंसात्मक कार्यकलापों से जुड़ा रहा लेकिन राजनीति के क्षितिज पर महात्मा गांधी के अवतरित होने पर उनके विचारों में परिवर्तन आया और चतुर्वेदी जी करूणा प्लावित अहिंसक की भूमिका में आ गये और अपने कार्यकलाप में कांग्रेस की नियमावली और कार्य प्रणाली को स्थान देने लगे। यह परिवर्तन उनकी वैचारिक मानसिकता का द्योतक है। उनकी मान्यता थी कि साहित्य चिंतक का यह दायित्व है कि वह पुरूषार्थ को दोनों हाथों में लेकर जीने का खतरा और मरने का स्वाद अपनी पीढ़ी में बोए। आचार्य नंददुलारे वाजपेयी ने उनके काव्य के राष्ट्रीय पक्ष का मूल्यांकन करते हुए लिखा है—"उस युग में जब अनेक कवि जीवन के प्रति निराशाओं को व्यक्त करने में लगे थे, कुंठाओं को अभिव्यक्ति देने में लगे थे, तब भी मैंने चतुर्वेदी जी की एक भी ऐसी रचना नहीं देखी जिसमें इस प्रकार के विकल्प आये हों। उन्होंने सचमुच करिश्मा किया है। विश्व-साहित्य में देश प्रेम की रचनाओं का इतना बड़ा ठोस रूप अन्यत्र कहीं दिखाई नहीं देता। मैंने जो कुछ देखा, सुना है उसके आधार पर मैं कह सकता हूं कि इस तरह का राष्ट्रीय काव्य भारत की अपनी विशेषता है। और यदि भारतीय काव्य में, राष्ट्रीय कविता की एक कोटि बन गई है, एक संप्रदाय बन गया है तो उसका श्रेय चतुर्वेदी जी को ही है। भारत में भी ऐसा कोई कवि नहीं जिसने देश को केंद्र में रखकर विशाल राष्ट्रीय साहित्य का निर्माण किया हो। यहां राष्ट्रीयता से मेरा तात्पर्य सामयिक काव्य से नहीं, सांस्कृतिक काव्य से है।"

'एक भारतीय आत्मा' का काव्य जागरण और चेतावनी का राष्ट्रीय काव्य है। वह सामयिकता की सीमाओं से ऊपर भारतीय संस्कृति का संवाहक और भारतीय अस्मिता का

संरक्षक है। उनके शब्दों में—'राष्ट्रीय कविता घुंघरू बांध कर ही मनोरंजन नहीं करती, मधुर आलापों से माधव का गायन ही नहीं करती, वह युद्ध के प्रभात काल में लंका कांड का भीषण रूप भी धारण कर लेती है और सैनिकों को बलि पथ पर आमंत्रित करती है।' बलि पथ का आमंत्रण उस युग में किसी अन्य कवि की कविता में इतने प्रखर स्वर में लक्षित नहीं होता। चतुर्वेदी जी की एक दर्जन कविताएं ऐसी हैं जिनका भाव बोध किसी युग विशेष तक सीमित न हो कर देश और काल की सीमाओं का अतिक्रमण करता है। 'एक फूल की चाह, 'पर्वत की अभिलाषा', 'कैदी और कोकिला', 'जवानी' आदि कविताओं का मूल्यांकन काल की कसौटी पर न करके व्यापक बलिदान की भावना पर, उत्कृष्ट मूल्यों के संवर्धन की इच्छा पर तथा मानवीय संवेदन के स्तर पर करना चाहिए। 'एक फूल की चाह' शीर्षक कविता में सभी पार्थिव सम्मानों को ठुकरा कर फूल की कामना में उत्सर्ग का जो भाव निहित है वह इस छोटी सी कविता का प्राण है। छह पंक्तियों की इस कविता में आज भी राष्ट्रगीत की शक्ति विद्यमान है। यह किसी एक जाति, धर्म या राष्ट्र को संबोधित न होकर राष्ट्रीयता को समर्पित कविता है। मातृभूमि के प्रति अटूट श्रद्धा एवं सर्वस्व समर्पण करने की उत्कट अभिलाषा को फूल की चाह में कवि ने सहज-सरल शैली से संजोया है—

"चाह नहीं मैं सुरबाला के गहनों में गूंथा जाऊं,
चाह नहीं, प्रेमी माला में बिंध प्यारी को ललचाऊं
चाह नहीं, सम्राटों के शव पर, हे हरि डाला जाऊं,
चाह नहीं, देवों के सिर चढूं, भाग्य पर इठलाऊं
मुझे तोड़ लेना वन माली! उस पथ में तुम देना फेंक,
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने, जिस पथ जावें वीर अनेक।"

फूल की सार्थकता का निर्णय कवि ने अपनी बलिदानी भावना के आधार पर किया है। अप्सरा सुरबाला दैवी शक्ति का प्रतीक है, प्रेमिका लौकिक प्रेम का प्रतीक है, सम्राट सामंती वैभव और ऐश्वर्य का प्रतीक है, देव मंदिर की प्रतिमा ईश्वर का प्रतीक है—इन समस्त प्रभुता संपन्न प्रतीकों को छोड़कर पुष्प की इच्छा उस पथ पर विसर्जित होने की है जिस पथ पर मातृ भूमि पर बलिदान होने वाले वीर जा रहे हों। यह बलिदानी भावना कवि को देश प्रेम से बढ़कर कुछ और सोचने ही नहीं देती। अपनी 'जवानी' शीर्षक कविता में उन्होंने जवानी को जिस रूप में प्रस्तुत किया है वह राष्ट्रोत्सर्ग पूर्ण जवानी है। यौवन का उन्माद केवल विलास प्रवण न होकर सक्रिय सेनानी के रूप में रण क्षेत्र में देखा है। जवानी मनुष्य की मनस्विता, तेजस्विता और ऊर्जा का प्रतीक है। जवानी के वर्चस्व का वर्णन कवि ने केवल रोमानी शैली में नहीं किया वरन् त्याग, तपस्या, बल और बलिदान के ओजस्वी संदर्भ में किया है। नवयुवकों को आह्वान करते हुए उन्होंने कहा है :

'द्वार बलि का खोल, चल भू डोल कर दें,
एक हिमगिरि एक सिर का मोल कर दें,
मसल कर, अपने इरादों सी उठाकर
दो हथेली हैं कि पृथ्वी गोल कर दें,

रक्त है या है रगों में क्षुद्र पानी
जांच कर तू सीस दे दे कर जवानी।'

राष्ट्रभक्ति के संदर्भ में चतुर्वेदी जी का साहित्य उनकी प्राण वायु बन कर लगभग आधी शताब्दी तक उनके साथ जुड़ा रहा। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी उनका राष्ट्र प्रेम शिथिल नहीं हुआ। काश्मीर के तात्कालिक संकट पर उनकी दृष्टि सतत बनी रही और भारत मां के श्रृंगा‍ के रूप में उसे स्मरण करते रहे। जवानी की सार्थकता मृत्यु को चुनौती देने में है। ज‍‍वानी कवि की दृष्टि में मरण का त्यौहार है। अर्थात् देश की स्वतंत्रता के लिए प्राणों की आहुति देने वाले युवक की जवानी मरण को त्यौहार मानती है।

पंडित माखनलाल चतुर्वेदी ने केवल वाणी और लेखनी से ही देशवासियों के अंतःकरण में स्वदेशानुराग नहीं जगाया वरन् स्वयं स्वाधीनता संग्राम में सक्रिय भाग लेकर कई बार कारावास का कष्ट भी भोगा। मन, वचन और कर्म का ऐसा विलक्षण सामंजस्य 'एक भारतीय आत्मा' के व्यक्तित्व को प्रोज्वल प्रतीक के रूप में प्रस्तुत करता है। इसी सामंजस्य के कारण उनकी कविता को मर्म की वाणी कहा जाता है। जबलपुर जेल के सीखचों में कैदी के रूप में बन्द रहते हुए सन् 1930 में 'कैदी और कोकिला' शीर्षक कविता लिखी थी। यह कविता एक परतंत्र कैदी की अंतर्व्यथा की कथा तो है ही, तत्कालीन ब्रिटिश शासन के अत्याचार और अनाचार तथा कारागार के जीवन का तलस्पर्शी चित्र भी उपस्थित करती है। कैदी को अपनी व्यथा-वेदना की अभिव्यक्ति के लिए कोई श्रोता, दर्शक या सहभोक्ता नहीं मिलता। वह कारागृह के मध्य स्थित पेड़ पर बैठी कोकिल को ही श्रोता और सहभोक्ता बना कर अपनी करूण कथा कहता है। यह कविता केवल कथन नहीं, मर्म भेदिनी व्यथा है। कविता पढ़ते ही ब्रिटिश शासन के प्रति क्षोभ और क्रोध उत्पन्न होता है। यह क्रोध उसमें दारूण उत्तेजना भर देता है और अपनी असहाय स्थिति का ध्यान करते हुए वह कोकिल से उपालंभ की भाषा में ईर्ष्या व्यक्त करता है। यह कविता एक परतंत्र भारतीय आत्मा की पीड़ा और मनोवेदना से प्रारंभ होती है, कोकिला की माधुर्य भरी सस्वरता और कारागार की कर्कशता के सम्मिश्रण से इस कविता में प्राण संचार हुआ है—

''ऊंची काली दीवारों के घेरे में, डाकू-चोरों बदमाशों के डेरे में,
जीने को देते नहीं पेट भर खाना, मरने भी देते नहीं तड़प रह जाना,
जीवन पर दिन रात कड़ा पहरा है, शासन है या तम का प्रभाव गहरा है।

कोल्हू का चर्रक चूं जीवन की तान, मिट्टी पर अंगुलियों ने लिखे गान,
हूं मोट खीचता लगा पेट पर जूआ खाली करता हूं ब्रिटिश अकड़ का कूआ।''

कारागार के इस दारूण दृश्य को अंकित करने के बाद कोकिल के उन्मुक्त विचरण और अपने बंदी जीवन का तुलनात्मक वर्णन प्रस्तुत करते हुए कवि ने तत्कालीन पराधीन भारत की व्यथा को कविता में ओज और करूणा के सम्मिश्रण से जीवंत बना दिया है। कवि कोकिल से कहता है—

''काली तू रजनी भी काली, शासन की करनी भी काली,

काली लहर, कल्पना काली, मेरी काल कोठरी काली,
टोपी काली, कंबल काली, मेरी लौह श्रृंखला काली।

तुझे मिली हरियाली डाली, मुझे नसीब कोठरी काली,
तेरा नभ भर में संचार, मेरा दस फुट का संसार,
तेरे गीतों उठती दाह, रोना भी है मुझे गुनाह,
देख विषमता तेरी मेरी, बजा रही तिस पर रणभेरी
इस हुंकृति पर अपनी कृति से और कहो क्या कर दूं ?
कोकिल बोलो तो!''

'एक भारतीय आत्मा' का काव्य मूलतः प्रेम, उत्सर्ग और सौंदर्य से ओत-प्रोत इंद्र धनुषी काव्य है। प्रेम काव्य में राष्ट्र प्रेम, विश्व प्रेम, मानव प्रेम, ईश्वर प्रेम, आदि सभी विषयों का समावेश हो जाता है। उत्सर्ग या बलिदानी काव्य में जीवन के संघर्ष, जवानी के जोश भरे उद्गार, अन्याय और अत्याचार के प्रति विद्रोह का स्वर, समाया रहता है। सौंदर्य मूलक कविताओं में प्राकृतिक दृश्यों की सुंदरता, राधा-माधव के रूप सौंदर्य की मोहक छवि, व्रज और वृंदावन के पार्थिव और आध्यात्मिक सौंदर्य का वर्णन मिलता है। माधुर्य और ओजगुण का समन्वय चतुर्वेदी जी की मौलिक विशेषता है। राष्ट्र प्रेम के केंद्र में भी माधुर्य की छटा सर्वत्र लक्षित की जा सकती है। प्रेम संबंधी कविताओं में माधुर्य के साथ ओज का जिस शैली से कवि ने संश्लिष्ट चित्र उकेरा है वह अन्यत्र दुर्लभ है।

× × ×

'एक भारतीय आत्मा' के काव्य का प्रमुख लक्ष्य राष्ट्रीयता अथवा राष्ट्र प्रेम ही है किंतु उसमें संकीर्ण राष्ट्रवाद का स्थान नहीं है। राष्ट्रवाद की भावना से जो विश्व मैत्री का अलगाव होता है उसे कवि ने कभी स्वीकार नहीं किया। परतंत्र भारत के मुक्ति संघर्ष को उन्होंने राष्ट्र प्रेम से जोड़ा किंतु राष्ट्रवाद की संकीर्णता से वे सदैव दूर बने रहे। भारत की राजनीति में चतुर्वेदी जी लंबे अर्से तक सक्रिय रहे और प्रादेशिक राजनीति का उन्होंने पूरी कर्मठता के साथ नेतृत्व भी किया। इस नेतृत्व काल में उन्होंने अपने सिद्धांतों को कभी नहीं छोड़ा। नेतृत्व तो उन्होंने पल भर में छोड़ दिया पर अपनी आत्मा की आवाज को दबाया नहीं। अपनी विचारधारा के मार्ग में जब रोड़े दिखाई देने लगे तो सन् 1938 में उन्होंने कांग्रेस से त्याग पत्र देकर अपने को मुक्त कर लिया। जिस राष्ट्र प्रेम की भावना से वे कांग्रेस में शामिल हुए थे वह राष्ट्र उनके लिए सर्वोच्च सत्ता का प्रतीक था।

अमर राष्ट्र, उद्दंड राष्ट्र, उन्मुक्त राष्ट्र यह मेरी बोली।
यह सुधार समझौतों वाली, नहीं चाहिए हमें ठिठोली।
मैं न सहूंगा मुकुट और सिंहासन से यह मूंछ मरोरी।
जाने दे सिर लेकर मुझको, ले संभाल यह लोटा डोरी।।

× × ×

छोड़ चले तेरी कुटिया, यह लुटिया डोरी ले अपनी।
अब वे पापड़ नहीं बेलने, अब यह माला जपे न अपनी।।
सूली का पथ सीखा हूं, सुविधा सदा बचाता आया।
मैं बलि पथ का अंगारा हूं, जीवन ज्वाल जलाता आया।।

ऐसी जनश्रुति है कि देश के स्वतंत्र होने पर पं. जवाहरलाल नेहरू ने पं माखनलाल चतुर्वेदी से मध्य प्रदेश का मुख्य मंत्री बनने के लिए कहा। चतुर्वेदी जी ने विनम्रता पूर्वक नेहरू जी से कहा—'पंडित जी मुझे कवि ही रहने दीजिए, राजनीति के दल दल में मत फंसाइए।' उनके मना करने पर ही श्री रविशंकर शुक्ल मध्यप्रदेश के मुख्य मंत्री बने थे।

× × ×

माखनलाल चतुर्वेदी का काव्य कुछ समीक्षकों की दृष्टि में प्रेम और रहस्य का रागात्मक काव्य है। राष्ट्रीय काव्य को भी कुछ आलोचक देश प्रेम में रख कर प्रेम काव्य में समाविष्ट कर लेते हैं। यदि चतुर्वेदी जी के प्रेम का रति स्थायी भाव से समंजन किया जाय तो कांता भाव की रति इनके काव्य में पूर्णरूपेण लक्षित की जा सकती है। उनके काव्य में वैष्णव-भावना एक ऐसा बीज भाव है जो किशोरावस्था में उन्हें चोरी-छिपे लल्लूलाल का प्रेम सागर पढ़ने को लालायित करता था। उनका आराध्य कुल देवता नित्य विहारी राधा वल्लभ श्रीकृष्ण हैं जिसे उन्होंने वनमाली और गिरधारी के रूप में स्मरण किया है। वस्तुतः वे कृष्ण चेतना से पूर्णतः संपृक्त थे अतः उनके व्यक्तित्व और कवि-कृतित्व में राधा-माधव की छवि सहज ही देखी जा सकती है। उनकी प्रारंभिक कविताओं में जहां उपासना-भाव या समर्पण-भाव है वहां श्री कृष्ण की उपस्थिति अनिवार्य है। कृष्ण से संबंधित व्यक्ति, घटना चक्र और संदर्भ उनकी कविताओं में कहीं परोक्ष तो कहीं प्रत्यक्ष लक्षित होते हैं। संदर्भ उत्सर्ग का है किंतु वनमाली, ग्वाल बाल, ब्रजबालाएं, यशोदा आदि बरबस उसमें स्थान पा जाते हैं—

सरदारों पर ग्वाल, और नागरियों पर व्रज बालाएं,
द्वार-द्वार पर वार लाड़ले वनमाली वन मालाएं,
छीनूंगी निधि नहीं किसी सौभागिनी पुण्य प्रमोदा की,
लाल करना नहीं कहीं तू गोद गरीब यशोदा की।

भारत माता का जो रूप चतुर्वेदी जी के मन में उभरा है वह भी कृष्ण-भावना से ओत-प्रोत है। भारत माता की छवि में उन्हें अपने ईष्ट देव राधा-माधव की छवि दिखाई देती है। देश की माटी में माखन और धूलि धूसरित वेश की कल्पना में कृष्ण को देखना है तो विचित्र किंतु 'भारतीय आत्मा' को यह प्रीतिकर लगता है।

माखन भले माटी भले— हो धूलि धूसर वेश,
खाऊं, खिलूं, गाऊं तुम्हारे विजय गीत स्वदेश।

स्वदेश के गीत गाते समय कवि के स्मृति पटल पर जो मोहक होकर सुंदर रूप

उदित होता है वह माखन चोर बाल कृष्ण का ही है। श्रीकृष्ण को जन्म काल से ही कारागृह का वास मिला था। कारागृह को उन्होंने कृष्ण का जन्म स्थल मान कर प्यार किया है। कंस के बंदीगृह को उन्होंने अपने पराधीनता के युग से संदर्भित किया है। तीस करोड़ भारतीयों को ब्रिटिश शासन में रहते हुए उन्होंने कारागार में पीड़ित देखा है। कंस और अंग्रेजी राज दोनों का साम्य पाकर उन्होंने उसी युग की कृष्ण कथा को अपनी कविताओं में नई शैली में रूपांतरित कर दुहरा दिया है।

देश के वंदनीय वसुदेव कष्ट में लेन किसी की ओट,
देव की माताएं हों साथ पदों पर जाऊंगा में लोट
जहां तुम मेरे हित तैयार, सहोगे कर्कश कारागार
वहां बस मेरा होगा धाम गर्भ का प्रियतम कारागार।।

'एक भारतीय आत्मा' की वैष्णवता का जब राष्ट्रीयता में पर्यवसान होने लगा तब जेल को सीखचों में राधा-माधव के स्थान पर उन्हें भारत माता का ध्यान आने लगा और उन्होंने राष्ट्रीय विचारधारा को अध्यात्म से जोड़ने का नया मार्ग खोज निकाला। वैष्णवों के माधुर्य भक्ति और स्नेह-समर्पण का समवेत प्रतीति का सौंदर्य 'हिम किरीटिनी' और 'हिम तरंगिणी' की कविताओं में द्रष्टव्य है। हिम किरीटिनी का पहला गीत 'मै अपने से डरती हूं सखि' किसी रोमानी भाव का गीत न होकर वैष्णव-भावना का आभ्यंतर संगीत है—

मैं बढ़ती हूं हां हरि जाने, यह मेरा अपराध नहीं है,
उतर पड़ूं यौवन के रथ से, ऐसी मेरी साध नहीं है,
लोग कहे आंखें भर आई, मैं नयनों से झरती हूं सखि,
मैं अपने से डरती हूं सखि।

वैष्णवता कवि के जीवन मूल्यों की अतल गहराई में छिपी एक उदात्त और अवदात भावना है जिसे उसने अपने अनेक गीतों में व्यक्त किया है। कुंज कुटीरे यमुना तीरे, तुम और, और मैं और, यमुना आदि कविताओं में माधुर्य की छटा कवि के अंतस की वैष्णवता ही है। वृंदावन, वनमाली, गिरधारी, मोहन मुरली, कालिंदी, नित्य विहारी आदि वैष्णवभक्ति परक शब्दों के साथ 'संपूरन के साथ अपूरन झूला झूलेरी' आदि रहस्यवादी शब्दावली संजोना कबीर और सूर को एक डोर में बांधने जैसा है।

आधुनिक युग में कुछ साहित्यकार अपने लेखन को किसी वाद या विचारधारा से प्रतिबद्ध रखने में विश्वास करते हैं। 'एक भारतीय आत्मा' का किसी वाद या विचारधारा के साथ संकीर्ण प्रतिबद्धता नहीं थी। समीक्षकों ने उनकी प्रारंभिक कविताओं के आधार पर उन्हें रहस्यवादी, सौंदर्यवादी, स्वच्छंदतावादी आदि ठहराना चाहा था किंतु चतुर्वेदी जी ने किसी वाद विशेष के प्रति अपनी रुचि प्रकट नहीं की प्रत्युत स्पष्ट रूप से प्रतिवाद करते हुए लिखा कि—'मेरी वादों में आस्था न कभी थी न आज है। छाया, रहस्य, प्रगति, प्रयोग प्रतीक और रीति आदि वादों में से किसी वाद पर ठहरने की मैंने कभी आवश्यकता अनुभव नहीं की।' स्वतंत्र चेता कलाकार की तरह वे अपने स्वनिर्मित पथ पर चलते रहे, सिंहावलोकन

या अतीत दर्शन भी उन्हें कभी प्रिय नहीं लगा।

चतुर्वेदी जी ने अपनी राष्ट्रीय-सांस्कृतिक रचनाओं में विशाल भारत का रमणीक मानचित्र अपने नेत्रों के सामने रखा। भारत का प्राकृतिक परिवेश नदी-नद, गुल्म-लता, कुंज-उद्यान, वन-पर्वत, उपत्यका, रेगिस्तान सब उनकी लेखनी पर उतरते रहे और सबकी मोहक छवि पर रीझ कर उन्होंने जीवन-रस के गीत लिखे। राजनीति में सक्रिय राष्ट्रीय चेतना से जुड़कर उन्होंने जो लिखा उसमें भी भारत के प्राकृतिक परिदृश्य को भुलाया नहीं। उनके काव्य का उल्लेखनीय महत्व यह है कि उन्होंने उग्रतम राष्ट्रीय संघर्ष के साथ अपनी सभी कोटि की रचनाओं मे सूक्ष्म सौंदर्य बोध की चित्ताकर्षक चित्रमयता को स्थान दिया। इस सौंदर्य विधायक चित्रमयता में जीवित जाग्रत राष्ट्र की अर्चना के लिए जिस भावोद्दीप्त ऊर्जा की आवश्यकता थी वह इनकी रचनाओं में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। कैदी और कोकिला शीर्षक कविता में कोयल की रोमांटिक छवि को तोड़कर उसे मुक्तिकामी, संघर्ष-चेतना संपन्न नयी छवि देकर अमर कर दिया। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं कि यह अकेली कविता अपने युग की संपूर्ण राष्ट्रीय चेतना को स्वर देने में समर्थ है। यही कारण है कि साठ वर्ष बाद भी वह हम सबके कंठों में गूंजती है।

श्रीमती महादेवी वर्मा ने लिखा है—'हमारे स्वातंत्र्य युद्ध में अनेक कवियों ने राष्ट्रीय कविताएं लिखकर अपना योगदान किया है किंतु वे राष्ट्रीय कविताएं तात्कालिक थीं और तात्कालिक काम करने के उपरांत भुला दी गईं। परंतु माखनलाल चतुर्वेदी की राष्ट्रीय कविताएं वास्तव में राष्ट्रीय कविताएं हैं जिनमें राष्ट्र जब तक रहेगा तब तक निरंतर उस छंद में अपने स्पंदन को सुनता रहेगा। 'इसमें कोई संदेह नहीं कि चतुर्वेदी जी अपने चिन्तन और मनन में वर्तमान के साथ अनागत भविष्य से जुड़े रहे, अतीतोन्मुखी दृष्टि उन्हें पसंद नहीं थी। साहित्य को 'एक भारतीय आत्मा' ने कोरा शब्द व्यापतर नहीं माना। जो साहित्य द्वंद्व और संघर्ष से बचकर रंगरेलियों तक अपने को सीमित कर लेता है वह न तो लोकप्रिय होता है और न कालजयी। उनके मन में साहित्य तो वह मानव विचार है जिस पर सृष्टि ठहरी हुए हैं। साहित्य का फलक विराट् होता है, उसमें रजकण और सुमेरू का वर्णन विचार की समतल भूमि पर किया जाता है।

'एक भारतीय आत्मा' का रचना संसार बहुत विस्तृत था, बहुआयामी था। अध्यवसाय और शास्त्रीय अभ्यास से दूर रहकर काव्य पुरुष के मुख मे कविता ही नहीं गद्य और वक्तृता भी उसी लय और यति-गति से प्रवाहित होते थे। गद्य और पद्य में अभेद स्वीकार करने के साथ चतुर्वेदी जी ने अपने भाव-विचार 'साहित्य देवता' अमीर इरादे, गरीब इरादे, समय के पांव, कला का अनुवाद और चिंतक की लाचारी शीर्षक गद्यात्मक कृतियों में संकलित किये हैं। पारसी नाटकों के विद्रूप और विकृत प्रदर्शनों द्वारा भारतीय संस्कृति पर जो चोट पहुंच रही थी उसे व्यंग्यात्मक शैली से निरस्त करने के लिए चतुर्वेदी जी ने अपनी युवावस्था में 'कृष्णार्जुन युद्ध' नाटक लिखा था। इस नाटक की रचना द्वारा उन्होंने अपनी रंगमचीय नाट्य प्रतिभा का अच्छा परिचय दिया था। समीक्षकों का कहना है कि यदि नाट्य विधा से चतुर्वेदी जी ने अपना रचना कर्म जोड़े रखा होता तो हिंदी नाटक में एक मौलिक संरचनात्मक तेवर का उदय होता।

हिन्दी निबंध साहित्य की गद्य काव्य विधा में 'साहित्य देवता' शीर्षक रचना अपनी भावात्मक, रसात्मक एवं व्यंजनात्मकता के कारण एक बेजोड़ कृति है। वाक्य विन्यास और सूत्रात्मकता में यह पर्वतीय निर्झर के प्रवाह की समता करती है। ऐसे मनोरम, चारुत्व और सौष्ठवपूर्ण गद्य काव्य की रचना भारतीय आत्मा के कुशल हाथों से ही संभव थी। साहित्य देवता के शब्द-शब्द, वाक्य-वाक्य और पंक्ति-पंक्ति पर भारतीय आत्मा के अंगूठे की छाप अंकित है। शास्त्र और व्याकरण की पाबंदियों तथा शिल्प की कारीगरी को दूर फेंक कर अपनी मौलिक मेधा से साहित्य देवता की जिस नव्य शैली से रचना की गई है वह रुढ़िवादी टकसाल की देन न होकर अभिनव टकसाली सिक्कों का करिश्मा है।

चतुर्वेदी जी ने लंबे अर्से तक पत्रकार के रूप में प्रभा, कर्मवीर और प्रताप का संपादन किया। उनकी ओजपूर्ण शैली में लिखित संपादकीय लेखों के विषय में उर्दू के सुप्रसिद्ध शायर रघुपति सहाय फिराक ने लिखा है—'मुझे याद आता है कि अब से कोई चालीस-पचास बरस पहले जब देश गुलाम था, तब कर्मवीर में पंडित माखनलाल चतुर्वेदी के लेख मेरे और मेरे जैसे लाखों देशवासियों के दिलों में गुलामी के खिलाफ ऐसा जोश पैदा कर देते थे जिसे भुलाया नहीं जा सकता। कम से कम मैं तो तब से अब तक उन्हें भुला नहीं सका हूं। माखनलाल जी के लेख अब तक कानों और दिलों में गूंज रहे हैं। उनके लेखों को पढ़ते समय ऐसा मालूम होता था कि आदि शक्ति शब्दों के रूप से अवतरित हो रही है या गंगा स्वर्ग से उतर रही है। यह शैली हिंदी में ही नहीं, भारत की दूसरी भाषाओं में भी विरले ही लोगों की नसीब हुई है। मुझ जैसे हजारों लोगों ने अपनी भाषा और लिखने की कला माखनलाल जी से सीखी।' फिराक साहब का यह उद्‌गार, चतुर्वेदी जी की भाषा-शैली और पत्रकारिता के विषय में किसी टिप्पणी का आंकाक्षी नहीं है। पत्र-पत्रिकाओं की भाषा को लोक मंगल विधान की भाषा बनाने का उत्तरदायित्व उन्होंने जिस निष्ठा से निबाहा वैसी निष्ठा हिंदी पत्रकारिता के क्षेत्र में आज दुर्लभ है। भाषण सुनने वाले कहते हैं कि उनका भाषण क्या होता था मानो शब्दों के बादल, शब्दों की बिजली और शब्दों की वर्षा होती थी। जो भी सुनता बिना भीगे न रहता। हिंदी में अब ऐसी प्रांजल एवं प्रवाहपूर्ण वक्तृता का अभाव खटकने लगा है। भाषा-प्रयोग के संबंध में उनके अपने मौलिक विचार थे। व्याकरण के नियमों का जकड़बंदी के साथ पालन करने के वे पक्ष में नहीं थे। जीवंत भाषा-प्रयोग के लिए वे अनगढ़ शब्दों का प्रयोग निस्संकोच होकर करते थे। कथ्य को प्राथमिकता देने के कारण भाषा को किसी नियम और व्याकरण से दूर रखते हुए ठेठ बोलचाल के शब्दों को संस्कारी शब्दों अथवा अभिजात्य शब्दों की मर्यादा में स्थान दिया। उन्होंने अपटपटी दिखने वाली भाषा को अपने मौलिक संस्पर्श से संप्रेषणीय बना कर लोक प्रिय बना दिया। इस युग के सजग साहित्यकार श्री सच्चिदानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' ने एक भारतीय आत्मा के साहित्य की समीक्षा करते हुए लिखा है—"वह एक व्यक्ति है जो पूरी तरह आकंठ राजनीति में डूबा हुआ है, राजनीतिक दृष्टि से प्रतिबद्ध राजनीतिक कर्मी है, लेकिन उसके साथ-साथ उतना ही गहराई से, उतनी ही निष्ठा के साथ एक दूसरे क्षेत्र में भी प्रतिबद्ध है—साहित्य। साहित्य के प्रति उसकी प्रतिबद्धता किसी दूसरी प्रतिबद्धता से कम नहीं है। वह व्यक्तित्व बिना किसी कठिनाई के—मतिभ्रम के, इन दोनों प्रतिबद्धताओं

को अलग रख सकता है और निबाहता चलता है। राजनीति के प्रतिबद्ध होने के कारण वह साहित्य को राजनीति का पिछलग्गू नहीं बनाता है। साहित्यकार के रूप में, कवि के रूप में, वह स्वतंत्रता के प्रति उसकी प्रतिबद्धता जरा भी कम नहीं है।''

साहित्य को चतुर्वेदी जी ने मानवतात्मा की अनिवार्य आवश्यकता मानकर 'साहित्य देवता' में लिखा है कि इस चराचर जगत में मानव के लिए जो सर्वश्रेष्ठ और काम्य है वह सार्थक शब्द अर्थात् साहित्य है। कविता केवल शब्दाडंबर नहीं है वरन् मानव की अनुभूतियों और कल्पनाओं का पुंजीभूत रूप है अतः कविता को साहित्य का निकष मानना चाहिए। कविता का सौष्ठव छंद, अंलकार और बिंब विधान पर निर्भर नहीं करता। जिन प्रतीकों और बिंबों को कवि अपनी रचना में स्थान देता है वह संप्रेषण की आवश्यकता के अनुरूप होते हैं। माखनलाल जी ने बिंब और प्रतीकों के चयन में इस बात का ध्यान रखा है कि जिस संदर्भ को प्रस्तुत करना है बिंब और प्रतीक भी तदनुरूप ही हों। उनकी वैष्णव भाव की कविताओं के प्रतीक इतने सार्थक एवं सटीक हैं कि उनका रचना वैदग्ध रचनाकार की विदग्धता को प्रमाणित करता है। वैष्णवता 'एक भारतीय आत्मा' के जीवन का अध्यात्म पक्ष है। राष्ट्रीयता के साथ राधा कृष्ण के रूप को वृंदावन, गोकुल, गोवर्धन आदि स्थलों के साथ चित्रित करने में कवि ने जिन बिंबों को स्थान दिया है वे चाक्षुष बिंब के सुंदर निदर्शन हैं। भारत माता के लिए भी नये प्रतीकों को ग्रहण किया गया है। यदि भारतीय आत्मा की कविता का मूल्यांकन किया जाये तो सबसे पहले यही कहना होगा कि हिंदी कविता को नया मुहावरा और भाषा को नये तेवर देकर उन्होंने अपना स्वतंत्र स्थान बना लिया है। राष्ट्रीयता और स्वाधीनता को कथ्य का केंद्र बनाते समय उनके मन में रहस्य साधना या अध्यात्म का वैष्णव मिथक सदैव विद्यमान रहता है जिसे हम कृष्ण-मिथक कहते हैं वह उनके कविता में प्राण तत्व की भांति विद्यमान रहता है। जातीय जीवन को मार्मिक छवियों में प्रस्तुत करने की की कला चतुर्वेदी जी की समृद्ध कल्पना पर आश्रित है। कृष्ण मिथक को उन्होंने राष्ट्रीयता और स्वाधीनता के नूतन संदर्भों से जोड़कर प्रस्तुत किया है। उनकी कविता के मेरूदंड को पकड़ने के लिए भारत और भारत माता की जातीय अस्मिता को पहचानना आवश्यक है। कारागृह की दीवारों में बंद रहकर जितना साहित्य सृजन इन्होंने किया, शायद हिंदी के किसी दूसरे कवि ने नहीं किया। कृषक और मजदूर को उस समय दलित वर्ग के नाम से नहीं पुकारा जाता था, शोषित और पीड़ित शब्द द्वारा ही इनका बोध होता था। गरीबी हटाओ का नारा भी उन दिनों प्रचलित नहीं हुआ था किंतु कृषक, मजदूर, गरीब और शोषितों को केंद्र में रखकर चतुर्वेदी जी ने विपुल साहित्य सृजन किया। एक भारतीय आत्मा की सही पहचान इस शोषित वर्ग और भारत की स्वतंत्रता से संबद्ध कविताओं में देखी जा सकती है। इस राष्ट्र प्रेमी, महामानव को हम काव्य पुरुष के रूप में जानते हैं और हिंदी काव्य के इतिहास में जातीय अस्मिता और स्वातंत्र्य भावना का साहित्य प्रस्तुत करने वाले यह मूर्धन्य कवि हैं। आधी शताब्दी तक निर्भीक भाव से अपने स्वतंत्र उदगारों को अभिव्यक्त करने वाले इस काव्य पुरूष को हम महाप्राण कविमनीषी के रूप में सदैव स्मरण करते रहेंगे। कोटि-कोटि मानवों को अपनी वर्चस्वी वाणी में बांध लेने की अद्भुत शक्ति रखने वाले इस जीवित काव्य को हम काव्य मर्यादा में उद्बोधन करते हुए जीवन,

जागृति, बल और बलिदान का संदेश देते हुए पाते हैं। जब कविता मनोरंजन और उपदेश की सीमाओं का अतिक्रमण कर जातीय संस्कारों से, जातीय अस्मिता से, जातीय स्पंदन से आपूर्ण कर दे तब वह एक काल विशेष की कविता न रहकर कालजयी और कालातीत बन जाती है। 'एक भारतीय आत्मा' की कविता ही नहीं संपूर्ण साहित्य इसी भाव कोटिका उद्गीथ बन गया है। माधुर्य, ओज और प्रसाद गुण की परिधि को लांघ कर वह मनोरम, चारूत्वपूर्ण और आलोकमय की परिधि को लांघ कर वह मनोरम, चारूत्वपूर्ण और आलोकमय हो गया है। साहित्य का आलोकमय हो जाना उसकी चारुता का प्रमाण है। इसीलिए इस काव्य की मूल प्रेरणा मुख्यतः राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना ही है। इस कोटि की राष्ट्रीय चेतना राष्ट्र भक्ति को संकीर्णता के दायरे में नहीं देखती। उत्साह और ओज की उष्मा के साथ विचार और सोच की संजीदगी भी इसमें सहज ही आ जाती है।

एक भारतीय आत्मा को काव्य में वर्तमान सामाजिक विषमता के खिलाफ सामाजिक न्याय की मांग, गुलामी और शोषण के विरोध में विद्रोह और संघर्ष की बुलंद आवाज तथा हिंसात्मक उपायों को छोड़कर अहिंसक के रूप में सांस्कृतिक उपकरणों का निर्वाह ही अधिक मात्रा में पाया जाता है। किंतु भावुकता के क्षणों में चतुर्वेदी जी अपनी आसक्ति और विरक्ति पर संयम का अंकुश नहीं रख पाते। उनके अपने विवेकी संस्कार भी इन पाटों के बीच दब जाते हैं। उनका आवेग इतना प्रबल और प्रभावशाली होता है कि कभी आसक्ति में आकंठ डूबकर भावुकता का प्रतिरूप बन जाता है तो कभी विरक्ति के संस्कार से पराजित होकर मूल संदेश को भी विरागमय बना देता है। रहस्य, अध्यात्म, राजनीति, राष्ट्रीयता, वैष्णवता, भक्ति, आदि के बिंब-प्रतीकों से आप्लावित उनकी कविता भावों के इंद्र धनुष की सृष्टि कर पाठक को उस चेतना स्तर पर ले जाती है जहां जातीय अस्मिता के साथ स्मृति का—वर्तमान युग बोध का—साम्राज्यवाद का, विदेशी शासन का पराधीनता का संसार उभर कर सामने आ जाता है। इतनी व्यापक परिधि का काव्य संसार उस समय किसी अन्य हिंदी कवि के पास नहीं था। एक भारतीय आत्मा को इसीलिए मैंने काव्य पुरुष की संज्ञा दी है। हिंदी का यह जातीय बोध संपृक्त काव्य पुरुष है। □

राष्ट्रीय काव्य-पुरुष

रामेश्वर शुक्ल अंचल

सतपुड़ा विंध्या ही नहीं, हिमाच्छादित नगपति की हिमानी आस्था के गायक और अपने को आजीवन 'एक भारतीय आत्मा' स्वीकार करने वाले माखनलाल जी चतुर्वेदी की गणना हिंदी के एक युग-प्रवर्तक कवि के रूप में होती है। 'निराला' युग-प्रवर्तक हैं, छंद मुक्ति में भी अपनी लयवती बिंबवती काव्य-सुषमा को नित्य नयी बनाये रखने वाले कवि के रूप में; और 'प्रसाद' युग-प्रवर्तक कवि हैं। द्विवेदी कालीन नीतिवादी प्रतीकों के स्थान पर अनंतवादी, सौंदर्यदर्शी प्रतीकों के प्रतिष्ठापक के रूप में। उसी कोटि में 'एक भारतीय आत्मा' का कवि भी आता है जिसने बलिदान और आत्मार्पणवादी प्रतीक हिंदी को प्रदान कर काव्यानुभूति को राष्ट्रीय वेदना और ओज देकर एक रोमांचक नयी दिशा दिखायी। जब हिंदी के लगभग सभी छायावादी कवि स्वच्छंदतावाद की ललित छवि उभार कर भी स्वप्नों के हाथी-दांत वाले मीनारों में कल्पना की पुष्प-शैयायें बिछा रहे थे उस समय चतुर्वेदी जी अपनी कविता में कारागार के हृदय का ही नहीं, भारत की यथार्थता का चित्र खींचते हुए पराधीनता की कुरुपता और उसकी जलन को वाणी देते थे। उनकी संवेदना और भाव-प्रवणता शून्य में नहीं देश की मिट्टी, बलिदानी धरती पर थी।

राष्ट्रीयता की अवधारणा को आज भी अनेक राजनीति शास्त्र के अध्येता पश्चिम की देन मानते हैं जो वहां के छोटे-छोटे राष्ट्रों की भौगोलिक ऐतिहासिक और जातीय स्थितियों के कारण सहज जीवन उठान के रूप में स्वाभाविक गति से पनपती रही। पर यह भी उतना ही सत्य है कि विदेशी आक्रमणों के कारण भारतीय साहित्य में यह भावना पिछले एक हजार वर्ष से ही बलवती होती चली गई। किसी न किसी सुदृढ़ मानवीय आधार को लेकर सारे देश में उसकी अंतर्धारा धर्म का आवेश लिये व्याप्त होती रही। स्वधर्म की रक्षा और विधर्म द्वारा नित्य नये मताग्रही उन्माद से अधिकाधिक विदारक होते जाते अत्याचारों से मुक्ति पाने के लिये धर्म ही उन कठोर काल खण्डों में देश की एकता का बंटा-बंटा सूत्र बनता था। राष्ट्र की गरिमा और उसके प्रति बलिदान का भाव भगवान के माध्यम से ही फूटता फैलता था। भारत में राष्ट्रीयता की तीव्र अभिव्यक्ति अंग्रेजी सत्ता और उसके द्वारा चले औपनिवेशिक शोषण के विरोध से शुरू हुई। तत्कालीन परिस्थितियों से असंतोष, अपने गौरवपूर्ण इतिहास की वेदना, वर्तमान पराभव और सांस्कृतिक चरित्र-हनन के प्रकाश में तीक्ष्णतर होती गई। राष्ट्रीयता अनेक स्वरूप और अर्थ-समूह लेकर हमारी चेतना का एक हिस्सा बन गई। जो राष्ट्रीयता पहले बीर-पूजा और क्षेत्रीय वीरता के दर्प के रूप में प्रकट होती थी उसका स्वरूप अब जनवादी हो चला। वह आत्मत्याग कष्ट-सहन और देश के लिए सर्वस्व-त्याग का रूप ले चली।

ईस्ट इण्डिया कंपनी के शासन की साम्राज्यवादी दुर्भावनायें समझ में आते ही इस नये दासत्व के प्रति जो जनाक्रोश उभरा उसे भले सामंती सत्ताओं ने और उनके भौमिक राज्याधिकार बना रहना की व्यस्त स्वार्थवृत्ति ने उकसाया हो पर उसका जन्म और फैलाव प्रजा के मनों में घनीभूत होती जा रही थी। अशांति का वेग इस नये प्रकार की गुलामी को उखाड़ फेंकने की प्रेरणा में ही था। राष्ट्रीयता का अंतरंग आशय यहीं से उदित होता है। इस जनक्रांति ने भले तब अपनी ऊर्जा को न पहचाना हो पर समय की शक्तियों ने नब्बे वर्ष के भीतर ही देश को स्वाधीन बनाने की संभावना उसमें जान ली थी। भारतीय मानस में यहीं से क्रांति या राज्य परिवर्तन (स्वाधीन शासन की स्थापना) का उदय माना जाएगा।

राष्ट्र के महान व्यक्तित्व का पूर्ण स्वरुप जब जन मानस में बन जाता है तभी राष्ट्रीयता मूर्त होती है। देश में इसके बाद जो होता रहा और भीतर बाहर बगावत की आंच प्रखर होती गई उसने कविता को ही क्या संपूर्ण साहित्य को स्वाधीनता की ज्वलंत कामना का संवाहक बना दिया। माखनलाल जी उन्हीं संघर्षकामी संस्कारों में पले और किशोर से युवा हुए। माखनलाल की आयु तब सोलह वर्ष की रही हो पर उन्होंने उस युग की दहकीली हवा अपने तरुण फेफड़ों और अनुभूति-प्रवण प्राणों में भर ली थी जब पूरा बंगाल सैनिक रूप लेकर अद्‌भुत रणावेश से भर गया था। उस तरंगालोड़ित कालावधि में, उथल पुथल से उस विप्लवव्यापी परिवेश में और भी अनेक कवि युवापन की ओर प्रवृत हुए होंगे पर आत्मबलिदान की जो प्रेरक शक्ति एक भारतीय आत्मा की कविता में आई वह हिंदी जगत के लिए सर्वथा नई थी। बंगाल में बंकिमचंद्र, मराठी में तिलक और सावरकर, हिंदी में भारतेंदु और उनके युग के लेखन में जिस राष्ट्रीयता की लाक्षणिक सूचना मिल चुकी थी वह माखनलाल चतुर्वेदी जैसे कवियों में साकार होने लगी। उनके 'एक फूल की चाह' पूरे चमन की साध बन गई। केवल छः पंक्तियों की यह कविता राष्ट्रगीत की शक्ति रखती है जिसकी विश्वव्यापिनी प्रासंगिकता सारे देश के बलिदानियों पर लागू होती है—भूतल के ओर-छोर तक। इसी प्रकार युवा शहीद पर लिखी गई यह कविता, कवि का यह मर्मोच्छ्‌वास किसी भी हुतात्मा के प्रति उनकी आंतरिक श्रद्धा से ओतप्रोत है। तुम बढ़ते ही चले, मृदुलतर जीवन की घड़ियां भूले, कान छेदने लगे—सहस्त्र दल की दल पंखड़ियां भूले, मंद पवन संदेश दे रहा—हृदयकली पथ हेर रही, उड़ो मधुमय! नंदन की दिशि में ज्वाला में घर घेर रहीं, तरुण तपस्वी! आ तेरा कुटिया मे नव स्वागत होगा। दोषी! तेरे चरणों पर फिर मेरा मस्तक नत होगा।

खूनी इतिहास ऐसे दोषियों के प्रति सदैव मस्तक झुकाता आया है जिन्होंने अपने विश्वास के लिये अपनी बलि देकर राष्ट्र-अर्चना के स्वरों को प्राणोदीप्त किया है।

चतुर्वेदी जी की ऊपर उद्धृत कविता की अंतिम दो पंक्तियों द्वारा ही मेरा ओजस्वी काव्य-प्रेरणा से परिचय हुआ जो चांद के फांसी अंक (निकलने के पहले ही जब्त हो जाने वाले) में छपे खुदीराम बोस के चित्र के नीचे छपी थीं। उन्हीं दिनों 'सुधा' में उनकी कविता 'विदा' छपी जो मैंने इतनी बार पढ़ी होगी कि मुझे लगभग पूरी याद हो गई। यह सन् 1928 की बात है जब मैं नौवें दरजे में पढ़ता था। मेरे स्वर्गीय पिताजी 'माधुरी' के संपादन विभाग में काम करते थे।

बोल उठे क्या रूपराशि पर पनपे हुए दुलार विदा !
सूरजमुखी संभाल रही किरणों का उपसंहार विदा !

जिसकी हुंकारों पर गिन गिन सौ सौ सांसें बारीं
आज वही कह उठा विदा दो आई मेरी बारी

अपने उसी किशोर बचपन से मुझे लगने लगा था कि एक भारतीय आत्मा की कविताएं पंत और महादेवी की कविताओं से अलग हैं। हाथी दांत की मीनारों में रूपरस की शैया बिछाने वाला भक्ति-दर्शन, विरह की ज्वाला या पंत की 'पल्लव' की कविताओं वाली कल्पना की उड़ान सौंदर्य बोध उनमें नहीं है। धीरे-धीरे स्वयं कवि बनते बनते समझ म आने लगा कि पराधीनता के शोषण से छटपटाते जीवित, जाग्रत राष्ट्र की अर्चना उनमें है। यह कवि तो प्रेरणा, भावना और सूझों के सभी उपकरणों को लेकर कविता की कांटों भरी राह से या स्मृतियों के दाह से (नुस्खा दो प्यारे! स्मृतियों का दाह भूल जाने का) वहीं जाता है। इनमें सभी ओर प्राणवंत अशांत यौवन की लहक है जिसकी दिगदिगंत तक फैली सारी कल्पना-रेखा राष्ट्र-प्रेम की अभिव्यक्ति के सिवाय और कुछ नहीं है। सारा प्रणय-निवेदन, सारी प्रीति-सुकोमलता, सारा माधुर्य-पुंज वहीं जाकर एक बृहत्तर राष्ट्र भावोदीप्ति में पर्यवसित होता है। पराधीनता का काला समय बीत जाने पर भी यह देश पूजा-भाव पारंपरिक सीमा-रेखाओं से बड़ा तो है ही, स्थायी भी है। उन्हीं दिनों मनोरमा में उनकी कविता 'री सजनि वन राजि की श्रृंगार' कविता पढ़ी जो दोहरे अर्थ—गौरव से जगमगा रही है—

वृक्ष के अंतर्जगत की री मधुरतम शक्ति !
फलों की जननी, उमंगों की नवल अनुरक्ति ।
छोड़ री बड़भागिनी ! तू उभय लालच छोड़
री। लगानी है तुझे सर काटने की छोड़।
क्योंकि माता हिमकिरीटिनि माँगती है दान
ले अमर तारुण्य होना है तुझे बलिदान ।

पत्नीत्व और मातृत्व का प्रकृतिजात आकर्षण, नारी-धर्म छोड़कर पराधीन देश की प्रत्येक तरुणी को शीशदान को होड़ लगानी है। दमन के पैरो तले बार बार कुचली जाती और हर बार उठ खड़ी होती जवानी की दुर्निवार हरियाली को कवि को न जाने कितनी पंक्तियों में इसी प्रकार उद्बोधित कर स्वाधीनता के यज्ञ में चंदन की चौलियां बनने का आह्वान है।

8-9 वर्ष की आयु की बचपन की याद अब धुँधला चली है जब 'कर्मवीर' जबलपुर से चतुर्वेदी जी के संपादन में निकलता था। मेरे पिता स्वयं जबलपुर के एक हाईस्कूल के अध्यापक रहते हुए छात्र-सहोदर, अर्ध साप्ताहिक 'तिलक' और 'हितकारिणी' का संपादन करते हुए भी 'कर्मवीर' के साथ जुड़े थे। कर्मवीर में सिद्धनाथ माधव आगरकर और ठाकुर लक्ष्मणसिंह चौहान नियमित संपादन सहयोग प्रदान करते थे। देश की प्रथम महिला सत्याग्रही प्रख्यात कवयित्री सुभद्राकुमारी चौहान की प्रसिद्ध कवितायें जलियांवाला बाग में वसंत और 'राखी की चुनौती' कर्मवीर में ही छपी थीं। 'छात्र सहोदर' (मेरे पिता द्वारा संपादित मासिक)

को राष्ट्रीय कवि गुलाबरल वाजपेयी' 'गुलाब' 'रामधारी सिंह 'दिनकर' और राजाराम शुक्ल 'एक राष्ट्रीय आत्मा' की सर्वप्रथम कविता छापने का गौरव प्राप्त हुआ था। सन् 1923 में कर्मवीर का संचालन एवं संपादन उस समय के प्रमुख कांग्रेस नेता बैरिस्टर ई. राघवेंद्र राव और बैरिस्टर ठाकुर छेदीलाल के हाथ में आ गया। चतुर्वेदी जी जबलपुर छोड़कर चले गये। आगरकर जी उनके साथ गये। मेरे पिता, श्री कुलदीप सहाय और श्री यदुनंदन सहाय के संपादन में कर्मवीर दो वर्ष चला और उसी राष्ट्रीय ओज के साथ चला। बाद में बरसों बंद रहा। इसके बाद माखनलाल जी के खंडवा से उसे पुनः प्रकाशित किया और वह उसी वेग से चलता रहा।

सत्य की रक्षा के लिए कह दूं कि माखनलाल जी के पहले लिखी जाने वाली कविता में (राष्ट्रीय कही जाने वाली) और सब कुछ था—व्यवस्थित प्रवाह, सामान्य शुद्धता, सौष्ठवभरी भाषा और लोक हितकारी भाव। भारत माता की ग्रामवाहिनी छवि भी उभरती थी और समाज को शक्तिवान बनकर परार्थ जीने का उद्‌बोधन भी था। पर उसमें वह मर्मवेदना और अंतर्ज्वाला न थी जो आघातकारिणी कविता की पहली पहचान हुआ करती है। उसमें विदग्ध हृदय की प्रेरणा नहीं उपदेशवृत्ति और इतिवृत्तात्मकता थी। इसलिये कविता के नित्य नये बढ़ते जाने वाले प्रेमी पाठकों का मन उससे भरता न था। नवयुग के प्रखर प्रकाश में करवट लेती हुई तरुणाई कविता में बलिदान की दीपशिखा और कर्म की गतिमयी व्याकुलता मांगती थी। देश को त्याग, तप, आहुति और शीषदान का जयघोष सुनाने वालें आत्म-संताप से दीप्त बोलों की आवश्यकता थी। कविता को द्विवेदी कालीन नैतिक रीतिबद्धता और गतानुगति से बाहर निकाल कर जीवन की तपती ताजगी और स्फूर्ति की किरणों के बीच लाना था। हिंदी कविता में चारों ओर एक घुटाघुटापन सा फैला था। उस युग के कवियों के प्रति पूरी श्रद्धा होते हुए भी मैं कहूंगा कि कविता में जैसे प्राण न थे। राष्ट्र को जिस उगती भावोद्दीप्ति, ऊर्जा और आत्मविभोरता की आकांक्षा थी वह माखनलाल चतुर्वेदी ने प्रदान की। बालकृष्ण शर्मा नवीन, मिलिंद और हरिकृष्ण प्रेमी ने उसे पैनी धार दी। हिंदी कविता को नये भाव, नई भाषा जो लोक जीवन के कहीं अधिक निकट थी, नयी शैली, नया प्रवाह, नया जीवन-दर्शन और आत्मविसर्जक सामाजिक दृष्टि सभी तो उसमें मिली। इन कविताओं ने देश के यौवन के फूलों और कलिकाओं के मनों में स्वतंत्रता के लिये कष्ट सहन और आत्मदान की प्रबल पुकार पैदा की। किशोर किशोरियों ने उनकी कविताओं को पढ़-पढ़कर स्वाधीनता संग्राम में सर्वस्व-समपर्ण की, तनमन-आराधना की दीक्षा पाई। जीवन का सौंदर्य देश के तारुण्य की आंखों में मँडराने लगा—

मुझे भूलने में सुख पाती जग की काली स्याही
साधो! दूर कठिन सौदा है मैं हूं एक सिपाही
धीरज रोग प्रतीक्षा चिंता सपने बने तबाही
कह तैयार-द्वार खुलने दे, मैं हूं एक सिपाही

राष्ट्र-मंदिर की पूजा, राष्ट्र देवता की आराधना का प्रबल आग्रह आत्मोत्सर्ग का अपरिमेय बल प्रदान करने वाले देश के संक्रांति काल के इस राष्ट्रीय काव्य पुरुष को हम

याद कर लें यही शेष रह गया है। जीवन भर 'ददिया' 'ददिया' कर उसके नाम को जितना भुनाना था हमने भुना लिया और हर प्रकार की प्राध्यापकीय कमाई कर ली। पर उनके काव्य के व्यापक रसात्मक आवेग को देश के एक छोर से दूसरे छोर तक फैलने वाले चेतना से राष्ट्रीय प्रकाश को अपनी भावना के भीतर प्राणांदोलित रखना है। राष्ट्र के प्रति अशेष आत्मार्पण और एकोपासना के सत्य को हम भूल जायेंगे तो उस दिन साहित्य का यह संधि-युग भी मात्र पुरानी पूँजी और प्रतिक्रियाओं को दोहराने वाला बनकर रह जायगा।

यहां एक कटु सत्य लिखने को जी चाहता है। स्वाधीन भारत में राष्ट्रीयता एक विचित्र, एक बहुवर्णी अर्थव्यंजक शब्द बन गया है। शायद ही कोई अन्य शब्द इतना प्रचलित हो—बात बात में भगवान की कसम की तरह जिसकी कसम खाई जाती है। पर उसकी जो परिभाषा राजनीति शास्त्र की किताबों में मिलती है वह एक तरफ जाती है। आचरण और व्यवहार में सर्वथा दूसरी ओर जब किसी बाहरी देश से टकराव या युद्ध की आशंका होती है तब उस शब्द की, इसकी दुहाई की झड़ी लग जाती है। अन्यथा यह भावना एक सर्द तहखाने में डाल दी जाती है। पर राष्ट्रीयता कही जाने वाली स्वदेशनिष्ठ तीक्ष्ण सजगता भावना और विचार दोनों के स्तर पर समान रूप से अविराम प्रकाश देने वाली चेतना की पहचान, बाहरी खतरों में ही नहीं, भीतरी खतरों में भी होती है। भीतरी खतरों या आंतरिक विघटन के प्रकट-अप्रकट उत्पाती लक्षण तो हमारे देश में राष्ट्रीयता से जैसे कोई सरोकार ही नहीं रखते। हिंदी के देशव्यापी राष्ट्रभाषा रूप के आग्रह को हिंदी साम्राज्यवाद के स्थापन का प्रयत्न माना जाता है। आजकल चल रहे भांति-भांति के फैलाववादी और अलगाववादी आंदोलनों को क्षेत्रीय जागृति कहा जाता है। दक्षिण ही क्यों उत्तर पश्चिम, पूरब सभी ओर कमोवेश यही स्थिति है। धर्म के नाम पर योरोप में जो रक्तपात हुआ—विकराल युद्ध हुए। राष्ट्रीयता ने पैदा होकर उन्हें लगभग समाप्त कर दिया। जनता भी नहीं पसंद करती थी कि धर्म राज्य और राजनीतिक जीवन पर प्रभाव डाले। सब यही चाहने लगे कि जन साधारण को जो प्रेरणा धर्म से मिलती थी वह नये युग में राष्ट्रीयता से मिले। जातियों और धर्मों के बने रहने से राष्ट्रीयता का कतई कोई विरोध नहीं है। पर राष्ट्र को धार्मिक मतवाद और जातिवाद से बचाने के लिये क्या यह जरूरी नहीं है कि सारे देश में एक ही कानूनी और आर्थिक-पद्धति लागू की जाय। राष्ट्रीय आचरण संहिता एक हो साथ ही जिस विज्ञान का जन्म मनुष्यों की सुविधा और आराम के लिये हुआ है उसका पूंजीवादियों द्वारा दुरुपयोग न हो। न्याय का संघर्ष तब तक चलता रहे जब तक न्याय शब्द समानार्थी और श्रेणी-निरपेक्ष न हो जाय। मानसिक और भौतिक दोनों गुलामियों से मुक्ति वही राष्ट्रीयता दिला सकती है जो विश्वव्यापी सांस्कृतिक आंदोलन या समाजवादी राष्ट्र दर्शन का हिस्सा बने। तीक्ष्ण उग्र सामाजिक चेतना ही जन शक्ति का सच्चा आह्वान कर सकती है। वही राष्ट्रीय के नाम पर पैदा होने वाली या पैदा की जाने वाली स्वाभाविक और कृत्रिम समस्याओं में भेद कर सकती है। यह कम महत्व की बात नहीं है कि हमें राजनीतिक स्वतंत्रता ऐसे युग में मिली जब कि दशकों से चली आई राष्ट्रीय भावना जनतांत्रिक समाजवाद के द्वारा प्रभावित होने की प्रक्रिया से होकर गुजर रही थी। इसी प्रगतिशील राष्ट्रीयता की

प्रति हमारे यहां अनुरक्ति बढ़ती गई। समाज के आर्थिक ढांचे की विसंगतियां हमें बराबर टालती रहीं।

पर ये बातें शायद मूल विषय से हटकर जाती हों इसलिए चतुर्वेदी जी के राष्ट्रीय काव्य पुरुष के स्वरूप को ही स्पष्ट होने देना चाहिए। 'कैदी और कोकिला' कविता में—

बंदी सोते हैं, है घरघर श्वासों का
दिन के दुख का रोना है निश्वासों का
अथवा स्वर है लोहे के दरवाज़ों का
बूटों का या संत्री की आवाजों का

क्या हुई बावली अर्धरात्रि की चीखी कोकिल बोलो तो !
किस दावानल की ज्वालाएं है दीखी कोकिल बोलो तो !

'कीट्स' की बुलबुल (नाइटिंगेल) के प्रति, शैली की 'स्काईलार्क पक्षी के प्रति' लिखी गई कविता में कल्पना की उड़ान और आत्म भोगभरी वेदना की छलक दोनों दृष्टियों से बेजोड़ मानी जाती है। पर माखनलाल की 'कैदी और कोकिला' कविता पराधीनता से मुक्ति पाने के लिए कठोर जेल यातना भोगने वाले राजबंदी की न कटने वाली तमसा की करूणा भरी मर्मव्यथा है जो भुलाये नहीं भूलती। कोकिला के साथ एक अवचेतन एकात्म का बोध देश भर में जेलों में बंद पड़े राजद्रोह के अभियुक्त बंदी करते थे। यही नहींराज बंदियों के अधिकारों की मांग को लेकर चारों ओर अखण्ड प्राणांतक अनशन चल रहे थे। यतींद्र नाथ का हड़कंपी मरण हुआ था। 'मोमदीपों का मरण त्योहार' कविता जब पटना से प्रकाशित 'युवक' के प्रथम पृष्ठ पर छपी (बीच में बाक्स के भीतर दरजनों अनशनकारियों के चलते अनशन के दिनों की संख्या देते हुए) तो स्वातंत्र्य-चेतना और राज्य-परिवर्तन के गीत गाने वाले कवियों की पूरी की पूरी पीढ़ी थरथरा उठी थी।

जानती है जोर घर की वायु का
जानती है समय अपनी आयु का
जानती बाजार दर अपनी अहो।
जानती है वृष्टि के दिन मत कहो
जानती है सब सबल के साथ हैं
किंतु रवि के भी हजारों हाथ हैं
बेकलेजे ही कठिन तम लाद कर
श्मशानों को स्वयं आबाद कर
एक से लग एक हम जलती रहें
और बलि बहनें बढ़ें पलती रहें
सूर्य की किरणें कभी तो आयेंगी
जलन की घड़ियां उन्हें ले, ,जायेंगी

जम्बुकेश! चलो जहां संहार है
वन्य पशुओं का लगा बाजार है
आज सारी रात कूकेंगे वहां
मोमदीपों का मरण त्यौहार है

प्राणों की बलि लगाने वाले देश के यौवन के फूलों की यह कुर्बानी हमारे राष्ट्रीय संघर्ष के इतिहास के सब से गौरवमय परिच्छेदों में है। मानवता का यह महान मर्सिया लिखने वाले कवि का जलन और बैचेनी का अहसास कीजिये जिसने संपूर्ण राष्ट्र को 'जम्बुकेश' कह कर उसकी पराजित दास मनोवृत्ति के लिए उसे फटकारा है।

कहने की आवश्यकता नहीं कि जैसे-जैसे भारतीय राजनीति समझौतों और उदारपंथी अनुनयों से हटकर विद्रोह और राष्ट्रीय आंदोलनों के सशक्त बलिदानी रूपों की ओर बढ़ती गयी वैसे-वैसे शहादत की लुकाठी विस्फोटक होती गई। चतुर्वेदी जी इन सभी ओजस्वी कवियों के प्रेरणा स्रोत थे—बलिदान और गौरव का आत्मबोध जगाने वाले, राष्ट्र के लिये जीवन दान का दर्प जगाने वाले न जाने किस देश के किस काल खण्ड की एक सर्वश्रुत घटना को एक छंद में उन्होंने जीवंत कर दिया है:

"बिगुल बज गया, चल पड़ा सैन्य, धरा भी होने लगी अधीर, खाइयां खोदी रिपु में हाय! पार हो कैसे सैनिक वीर। पूर दें इनको मेरे सर शरीरों से दे दिये शरीर। इधर यों सेनापति ने कहा उधर बिछ गये सहस्रों वीर। समय पर किया शत्रु का नाश देश ने आह। पाया त्राण। शेष वीरों ने छेड़ी तान धन्य बलिदान! धन्य बलिदान।

अमर शहीद गणेश शंकर।

विद्यार्थी ने अपने द्वारा अनूदित विक्टर ह्यूगो के प्रसिद्ध उपन्यास 'नाइंटी थ्री' का नाम 'बलिदान' ही रखा था जिसमें फ्रांस की राज क्रांति के अमिट चित्र हैं। देशाराधना और आत्मार्पण का सारा नया भक्तिदर्शन हिंदी के लिये बिल्कुल नया था। वह जीवित जाग्रत राष्ट्र के प्रति भक्ति का अर्चन है जिसकी ओर जीवन के सभी उपादानों को लेकर कवि कविता की राह पर अलख जगाता है। 'वेदनागीत' से कवि का अनुरोध सुनिये—

आह! गा उठे हेमांचल पर तेरी हुई पुकार
बनने दे कल की कराह को परसों ही हुंकार
और जवानी को चढ़ने दे बलि के मीठे द्वार
सागर के धुलते चरणों से उठे प्रश्न इस बार
अंतस्तल से अतल वितल की क्यों न बेध जाते हो
अजी वेदनागीत। गगन को क्यों न छेद जाते हो।

माखनलाल जी की कविताओं में एक मधुर अंतः संगीत है जो अपने आप उठता है। उनके शब्दों का चयन ध्वनि के विशेष वातावरण को लेकर चलता है। शब्दों के साथ भाव और उन शब्दों से उत्पन्न ध्वनि जैसे एक दूसरे के पूरक हो जाते हैं। शैली की ऐसी विशेषता जिसमें राजनीति की ही प्रधानता दी गई हो पर फिर भी जिससे उग्र राष्ट्रीय चेतना की प्रभा फूट पड़ती हो उनकी कविता में मिलती है। राष्ट्र के प्रति अशेष आत्मार्पण और

एकोपासना का भाव उनमें है जो कड़ी-कड़ी, छंद-छंद में बोलता है। काव्यवस्तु और अभिव्यक्ति प्रकार के बीच एक सुखद सामंजस्य स्थापित कर उन्होंने भावों का ऐसा तीव्र धारा प्रवाह दिया जो कविता को वर्ण-वर्ण के रंगों और रुपों से भरता चला गया। अनुभूति की जीवित वास्तविकता आई जिसके पैर शून्य में नहीं, पृथ्वी की मिट्टी पर हों और जो पराधीनता के संताप से गीला हो। उन्होंने स्वयं लिखा है—

"मेरी इन तुकबंदियों में यदि राष्ट्र के नगाधिराज पर ऊंचे की ओर चढ़ने की प्रयास भर है तो कुछ में गंगा की तरह नीचे उतरने की और फिसल पड़ने की ओर अपनी फिसलन पर अनंत प्यार किये जाने की अदम्य इच्छा है। लगता है सामर्थ्य-सीमा, महत्वाकांक्षा, निराशा और आवश्यकता इनको भावों की अंजलि में संजोकर जब मैंने अभिमत के चरणों रखना चाहा और उससे जिस तरह कंपकपी आई, उस कंपकपी को लिख डालने का यह प्रयास मात्र है (आधुनिक कवि भूमिका का अंतिम गद्य खण्ड) इतनी सच्ची स्वीकारोक्ति वाला कवि ही लिख सकता था और हर परिस्थिति के लिये अपने को नया कर सकता था—

"वह एक वाणी है जो लोकजीवन के हृदय को सोच सोच कर चिल्ला रही है और चिल्ला-चिल्ला कर सोच रही है। एक भुजा है उनकी ओर से उठ रही है जिनकी भुजायें उठ नहीं पातीं....एक वाणी है जो राजाज्ञा नहीं है किंतु कोटि कोटि मानव जिससे बंधे हुए हैं। अनंत सेना नहीं है किंतु उसके विश्वास पर कोटि कोटि लोग ठहरे हुए हैं।"

इस नीराजन में सत्य के तेज को सहन करने वाला कौन सा अंतःकरण सम्मिलित न होगा? अपना अंतराशय इसमें बिंबित प्रतिबिंबित न पायेगा? चरित्र का पारदर्शी बल न देखेगा? तभी जो कवि राष्ट्र के आराध्य के चरणों पर लहराने वाली जीवन की नर्मदा को अर्चना का ऐसा व्यापक रुप देता था—

"जिस दिन रत्नाकर की लहरें उनके चरण भिगोने आयें, जिस दिन शैल-शिखरियां उनको रजत मुकुट पहनाने आये। लोग कहें मैं चढ़ न सकूंगी, बोझीली प्रण करती हूं सखि! मैं नर्मदा बनी उसके प्राणों पर नित्य लहराती हूं सखि ।

वही कवि आजादी के दस वर्ष बाद ही लिखने लगा था—

'उन नदियों को देख कि जिनका पानी खून बना बैठा है
दुखिया आज कहां बैठा है, तू बलवान कहां बैठा है
तू तो अमर शून्य है जिस पर विधि के अंक संवार रहा है
कागज का तू स्वयं और माता की बन पतवार रहा है।"

राष्ट्र धर्म राजनीति की एकता का नहीं, भावनाओं और संस्कारों की एकता का प्रतीक होता है, इसे कवि से अधिक और कौन जानेगा?

माखनलाल चतुर्वेदी को गये बीस साल हो चुके हैं पर आज भी नहीं लगता कि वे साहित्य समाज और अधिकाधिक दुष्ट होते जा रहे जमाने के बीच में नहीं है। किसी अतींद्रिय आकाशी लोक में हैं। उनका साहित्य प्राण व्यक्तित्व चारों ओर भराभरा भिदा भिदा प्रतीत होता है। वासनाओं की पूर्ति को जिंदगी की रहस्यमयी वास्तविकता या संत्रासमयी यथार्थता बताने वाली सृजन-बहुलता के बीच उनका प्रभविष्णु स्वरुप झलमलाता रहता है।

उनकी राष्ट्रीयता बौद्धिक न होकर भावनात्मक है आंतरिक है। किसी महान आकांक्षा की सृजनकारी शक्ति की तरह वे आज भी छाये हैं। यह गौरव हिंदी में केवल निराला को ही प्राप्त है—अन्य महान कवि भले अपनी जगह इतिहास में स्थायी रुप से घेरे हों। कवि की सतरंगी भावना में रंगकर यह आकांक्षा किरणोज्जवल हो गई है। जिस प्रकार प्रत्येक टिमटिमाता पीला तारा ऊषा के स्वागत के लिये आंखें बिछाये रहता है उसी प्रकार चतुर्वेदी जी की इस उत्पादक आकांक्षा की प्रत्येक लय, स्वर, गूंज प्रभात के विश्वास से भरी है।

इस जिजीविषाकुल आकांक्षा में आर्द्रता और उष्णता दोनों हैं। जैसे नदी समुद्र का गान गाती है उसी प्रकार यह आकांक्षा कवि की आंखों के सम्मुख लहराने वाले आलोक सिधु की रागिनी बनकर रह गई है। प्राण का अंत भले हो पर इस आकांक्षा का, इस आदर्श का अंत नहीं। सिरजन के आह्वानों से भरी यह आकांक्षा चिर अभियानवती है। संघर्षों के बीच बदलते युगों में वह अग्निसेतु बन जाती है। जिस पर होकर सामाजिक परिवर्तन गुजरते हैं। देश में जब जब युगांत हुए हैं अग्निसेतु बनते आये हैं। बीसवीं शताब्दी में हमारे भूगोल और इतिहास दोनों ने युगांतर देखे हैं और देखा है उत्पीड़न, दमन, मरण के बीच हमारी अदम्य जीवनशक्ति के राष्ट्रीय विश्वास को।

भूगोल का युगांतर होने के पहले इतिहास के खूनी बदलाव की प्रक्रिया प्रारम्भ हो चुकी थी। संहारक विद्रोह सुलग रहा था। यह युगांतर देशव्यापी था पर इसका 'डायनेमो' तो मध्यदेश ही था। एक भारतीय आत्मा के अग्निसेतु ने यहीं से त्याग के राष्ट्रयज्ञ में अपना सब कुछ अर्पित कर देने की राह बनाई। आहुति की यह कैसी दहकभरी उठान जिसने एक फूल की चाह को पूरे गुलिस्तां की साध बना दिया और घर-घर में आजाद होने की उमंग का मंजर छा गया। चारों ओर घहराते कुरबानी के लोहित समुद्र को 'एक भारतीय आत्मा' जैसे अग्रिम सेतु-बंध की दरकार थी जो सारे के सारे राहगीरों में ज्वाला सुलगाता चले। पर यह सेतुबंध अपने सारे जिंदा अनल-प्रवाह के बावजूद हिमाच्छादित है। हिम कवि के लिये हिमाचल से उठती साकार राष्ट्र-चेतना का ज्योतिर्मय स्वरुप है—

''वाणि वीणा और वेणी की त्रिवेणी धार बोले, नृत्य बोले, गीत बोले, मूर्ति बोले, प्यार बोले। आज हिमगिरि की पुकारो सिंधु सौ सो बार बोले। आज गंगा की लहर में प्रलय का व्यापार बोले।''

कवि के संकलनों के 'हिम किरीटिनी' हिमतरंगिनि जैसे शीषर्क उनकी इसी राष्ट्रीय आस्था के प्रतीक हैं। कवि को हिमाच्छादित अग्निसेतु न कहकर उसे केवल अग्निसेतु कहना उसकी इसी हिमानी आस्था से कट जाना होगा। दूसरी ओर यही हिमाच्छादन उसके तनमन को काव्यगत अंतः संगीत से भरता रहता है। उनके पोर-पोर में, मज्जा-मज्जा में व्याप्त विद्रोह की धधकन में प्रेमार्द्र रसमयी भावना का मर्मी मधुचक्र रचाता है।

सन् 1938 से लेकर पूरे तीस वर्ष जब जब मैं चतुर्वेदी जी के निकट बैठा वे मुझे और ठंढक से भरे अहसासों के अंबार जैसे लगे। आज न रहने पर भी लगते हैं और मुझ जैसे बहुतों को लगते होंगे। उनके भीतर की जलन ममत्व की, मानवीय करुणा की परतों से छनकर जलबूंदों की शुभ लड़ी बन जाती थी। अपने आराध्य के गीत की कोमल कड़ी न बन पाने की वेदना उनकी आत्मा अपने विषादरंजित गीतों में व्यक्त करती रही—उल्लास

और मतवाली निष्ठा के साथ। फिर सत्य तो स्वयं आग है। चाहे पराधीनता की आत्मग्लानि का, गुलामी की काली-काली वेदना का सत्य हो या शहादत की उठती झांकी का, शहीद के फूलों भरे जनाजे का। यह कवि उसकी तुषाराच्छन्न आंच को रचनात्मक ऊर्जा, सृजन की उत्कट जिजीविषा में बदलता चलता है। यही अमर आकांक्षा 'एक भारतीय आत्मा' द्वारा हमें छोड़ी गयी विरासत है। उनकी यह देन संतों की देन जैसी हृदय से सीधी जुड़ जाने वाली देन है। अपनी हिमकिरीटिनी मातृभूमि के प्रति कवि का प्रेम वैष्णव संतों के प्रेम जैसा सर्वाग्रही है जिसमें उसे आध्यात्मिक सौंदर्य (चाहे तो उसे कास्मिक कह लीजिए) की झलक मिलती है। उनकी कविता में किसी विराट अशेष की गोदी में विलीन हो जाने की ललक, रह रह कर भक्तिविस्मृत हो उठने की प्रवृति का उत्स इसी देशपूजा में है। वेदना का यही स्वर रह रह कर उनमें अकुलाहट भरता है।

अजब रुप धर कर आये हैं
छवि कह दूं या नाम कहूं!
रमा कहूं या रमणी कह दूं
रमण कहूं या राम कहूं !
तीर बने तम चीर रहे हो
सौदामिनि अभिराम कहूं....
हृदय प्रदेश उजाला सा है
चंद्र-चंद्रिका कह दूं क्या?

देश-पूजा के इसी जीवनव्यापी संस्कार ने उनकी प्रेमानुभूतियों को ऐसी उदात्तता प्रदान की है कि उनका प्रत्येक प्रिय विश्वरुप बन गया है। प्रत्येक अर्चना धूपदानी में सुलगती अगरुवर्तिका बन गई है। संतत्व की कैसी अपूर्व विधा है जिसमें समूची कायनात, जीवन का प्रत्येक अंकुर प्रिय लगने लगेः क्योंकि उसके भीतर देश की मिट्टी बोलती है। प्रत्येक बिरवे की हड्डियों में उन्हें देश की अग्नि का 'फास्फोरस' मिलता है। साधक की इसी आकांक्षा को चतुर्वेदी जी अग्निहोत्र की तरह तपाते रहे क्योंकि उसके पीछे अगणित शहीदों का भस्मकुंड है। □

माखनलाल चतुर्वेदी : शताब्दी-स्मरण

श्रीकांत जोशी

पं. माखनलाल चतुर्वेदी 'एक भारतीय आत्मा' भारतीय साहित्य, पत्रकारिता और स्वतंत्रता-संग्राम के इतिहास को अभिनवत्व, भविष्य और चरितार्थता देने वाले अप्रतिम शताब्दी-पुरूष का नाम है। उन्होंने अपना रचनात्मक जीवन, साहित्य से प्रारंभ किया। प्रारंभ में कुछ प्रार्थना-गीत रचे, कुछ प्रकृति-सौंदर्य का गायन किया, किंतु जैसे-जैसे वे आगे बढ़ते गये उनका साहित्य काव्य, नाटक, निबंध, कहानी, संस्मरण और रेखाचित्रों की अनेक विधाओं में अभिव्यक्ति पाता हुआ-युग संघर्ष और युग-चेतना को गति और मूल्यवत्ता प्रदान करने वाला ऊर्जा -स्रोत बनता चला गया।

पत्रकारिता के क्षेत्र में माखनलाल जी ने *प्रभा, कर्मवीर* और *प्रताप* जैसे पत्रों का संपादन कर उन्हें अखिल भारतीय शिखरता प्रदान की। उन्होंने स्वाधीनता, समानता और भ्रातृत्व के वैश्विक मूल्यों की स्थापना करते हुए, इन पत्रों के माध्यम से राष्ट्र, राष्ट्रभाषा, साहित्य और समाज की, प्रगतिशील वैज्ञानिक जीवन-दृष्टि को अपनाते हुए महान सेवा की।

भारत के स्वाधीनता समर में भी उन्होंने जो नेतृत्व प्रदान किया, लोकमान्य तिलक, महात्मा गांधी और पंडित मोतीलाल नेहरू से असीम प्रेरणा और मार्गदर्शन प्राप्त करते हुए जो अखिल भारतीय सफलताएं हासिल कीं, उनका महत्व आज भी कम नहीं है। जेल-यात्राओं ने उन्हें अटूट मनोबल प्रदान किया, अभावों और संघर्षों ने उनमें जिजीविषा पैदा की, चुनौतियों ने उनको संकल्पवान बनाया। पं. माखनलाल चतुर्वेदी के साहित्य में जो जीवनाकांक्षा है, जो भविष्य-दृष्टि है, जो युग-निर्माणकारी चेतना है उसके मूल में उनकी अपनी अपराजेय जिंदगी ही रही है। देश के सहस्रों नवयुवकों ने उनके साहित्य से, सृजन से, उनके अपने जीवन से, स्वाधीनता, स्वाभिमान, निर्भीकता और आत्म-निर्भरता की दिशा ग्रहण की है, यही नहीं साहित्य, कला, संस्कृति, पत्रकारिता और देशसेवा के क्षेत्रों में भी भारत की नयी पीढ़ी ने माखनलाल जी को ही अपना प्रेरणा-पुरुष स्वीकार किया, और वह उनके प्रति अपनी आस्था अनवरत व्यक्त करती रही।

भारत के ऐसे अप्रतिम बहुआयामी व्यक्तित्व को जन्म देने का गौरव मध्यप्रदेश के होशंगाबाद जिले के बाबई नामक ग्राम को प्राप्त हुआ, जहाँ एक स्वाभिमानी, निर्भीक ज्ञान-विज्ञान के प्रति समर्पित, राधा-वल्लभ संप्रदाय में दीक्षित, गौड़ ब्राह्मण परिवार में, चैत्र शुक्ल एकादशी संवत 1945 तदनुसार 12 अप्रैल 1889 को बालक माखनलाल ने जन्म लिया। पिता पं. नंदलालजी चतुर्वेदी प्रायमरी शाला के प्रधानाध्यापक थे। उनके व्यक्तित्व में कर्त्तव्य-भावना, निर्भीकता, स्वाभिमान असांप्रदायिकता और न्याय-भावना का प्रगाढ़ समन्वय था। वे चमत्कारपूर्ण उक्तियों और प्रभावशील अभिव्यंजना के धनी थे। इसी तरह माता सुन्दरबाई ऊंचे, संपन्न, खानदान की थीं पर स्नेह और शौर्य का जीवंत प्रतीक थीं।

पिता और माता के अतिरिक्त माखनलाल जी के व्यक्तित्व-निर्माण में उनकी बुआ

पार्वतीबाई का विशेष योगदान था। वे परम भक्त थीं और बालक माखनलाल पर उनकी असीम-स्नेह-छाया थी। वे दिन-रात वैष्णव पदों का गायन करती रहती। एक दिन जब वे अपनी चिर-परिचित 'प्रभाती' गा रही थीं तो उन्होंने प्रातः बेला में अपने माखन को भी उन्हीं के लहजे में कुछ गुनगुनाते हुए अनुभव किया। उन्होंने पास जाकर सुना—'जागिये रघुनाथ कुंवर भोर भयो प्यारे'. . . पर नहीं यह तो कुछ और ही पद मालूम पड़ता है उन्होंने कमर झुकाकर और कान लगाकर सुना :-

उठो मेरे दोनों बैल
जंगल तम करो सेल-भोर भयो प्यारे
जंगल तुम चरो घास
अब तो छोड़ो घर की आस-भोर भयो प्यारे (वर्ष 1896-97)

अरे यह तो मखौल कर रहा है, और इसके पहले कि बुआ के हाथो इस शरारती पद का कोई 'प्रसाद' मिलता, माखनलाल रजाई छोड़कर भाग खड़े हुए, शरारती पदों के अभ्यास बढ़ते गये वे शास्त्र का काम करने लगे। द्रौपदी नामक एक बालिका से कुछ झगड़ा-वगड़ा, हो जाने पर हमारे नन्हें पैरोडीकार ने लिखा :

धनीराम की पोली पाई, उसमें से निकली द्रौपदी बाई
द्रौपदी बाई ने बिछाई खाट, उसमें से निकला काशी भाट
काशी भाट की लंबी दाढ़ी, उसमें से निकला मुल्ला बाढ़ी

बालक माखनलाल इन्हीं कवितामयी शरारतों के सहारे अपना बचपन गुजारते चले गये और अपना प्रायमरी प्रशिक्षण भी प्राप्त करते रहे। क्रमशः वे प्रार्थना-गीत लिखने लगे—

श्याम-लोचन मन बस गयो री
मधुर बैन कर सैन नैन सों छीन लीन मन चैन ऐन सों
कछु न सुहावत सुधि न रैन सों जब हरि हंसगयो री
श्याम-लोचन मन बस गयो री।

प्रार्थना-पदों की इस परंपरा में एक दिन प्रकृति ने हस्तक्षेप किया। परिस्थिति वश उसे एक भादोगांव नामक स्थान पर जाना पड़ा। यहां गंजाल नदी के तट पर उसने वसंत की आगवानी इन पंक्तियों में की—

बेल की बहक और द्रुम की लटक / चिड़िया की चहक देख शोभा सरसाई है
गोमुख में अंग धोय, शांत-कांति को संजोय / भौरन के कुंजन में भीर सी लगाई है
अति मदमाते दोऊ कूल नदिया के बहें / फूले-फूले वृक्षण की लोनी छटा छायी है
धन्य गंजाल दोऊ पाल हैं निहाल— / आज, तेरे घर प्यारे ऋतुराज की अवाई है

माखनलाल पढ़ने में तेज थे। उनकी स्मरण-शक्ति अद्भुत थी। विनोद-वृत्ति भी किसी से कम न थी। बाबई में शिक्षा प्राप्त करते हुए उन्होंने आल्हा शैली में वीर हरदौल की चरित्र-कथा के गायन सुने और इस तरह 'वीरत्व' की, अपने दुर्बल काया में, अनुभूति

प्राप्त की। बाबई ही में, वहां होने वाली रामलीलाओं में भाग लेकर उन्होंने अभिनय और नाट्य में अपनी विशेष रुचि पल्लवित की। इस बीच पिता की बदली छिदगांव (हरदा तहसील में) होने पर वे छिदगांव चले आये। यहां उन्होंने प्रायमरी पास की और परिवार की परंपरा के अनुसार संस्कृत विद्या का अध्ययन भी किया। पिता की इच्छा थी प्राइमरी के बाद कुछ अंग्रेजी शिक्षा भी अपने पुत्र को दें। इसके लिए सिवनी-मालवा भेजना जरूरी था पर सिवनी-मालवा का उन दिनों का खर्च भी परिवार की आय-सीमा से परे था। अतः यह निर्णय लेना पड़ा कि उन्हें शिक्षकीय नार्मल-मिडिल ट्रेनिंग परीक्षा पास करने के लिए जबलपुर भेज दिया जाये ताकि वे शिक्षक बनें और परिवार को मदद दे सकें। बाबई में जबलपुर यात्रा से पूर्व ही उनका विवाह संपन्न हो गया। पत्नी 'ग्यारसी' बाई शील-स्नेह और धैर्य का प्रतीक थीं।

वर्ष 1905 में नार्मल मिडिल ट्रेनिंग के लिए किशोर माखनलाल जबलपुर पहुंचे। संभवतः उनके जीवन में नियति अपना पार्ट खेल रही थीं। अनेक बार समय ही अपनी अभिव्यक्ति के लिए किसी को चुन लेता है। शायद ऐसा ही कुछ हुआ। जबलपुर में वे कुछ बंगाली क्रांतिकारियों के संपर्क में आये। उनका केंद्र-स्थल काशी था। माखनलाल के व्यक्तित्व से वे इतने अभिभूत हो उठे कि उन्होंने उसे अपना विश्वास-पात्र बना लिया। एक दिन उन्होंने बम के कुछ गोले माखनलाल को सौंपे और कहा कि इन्हें सुरक्षित रखना है। माखनलाल ने अपनी जिम्मेदारी पर उन गोलों को एक थैली में उठाया और अपने होस्टल ले आए। होस्टल के उद्यान में वहां के माली ने कुछ गड्ढे खोद कर रख छोड़े थे। उनमें वह कुछ नये पौधे लगाने की तैयारी में था, कुछ पौधे लगा चुका था। माखनलाल अपने एक साथी के साथ वहां पहुंचे और पौधे वाले गड्ढों से पौधों को निकाल-निकाल कर, उनमें गोलों को छुपाकर, ऊपर से मिट्टी और पानी डाल कर चले आये। दो महीने तक वे गोले वहीं दबे रहे—बाद में उन्हें उपयुक्त स्थान पर पहुंचा दिया गया। क्रांतिकारी तरूणों ने माखनलाल का नाम अपने गुरू के पास काशी भिजवा दिया वे काशी बुलवाये गये। अपने साथी असित बाबू के साथ वे काशी पहुंचे, वहां एक गुप्त स्थान पर उनका परिचय क्रांतिकारी गुरू श्री गणेश सखाराम देवस्कर से करवाया गया। श्री देवस्कर ने उन्हें समझाया कि भारत क्या है, उसकी पराधीनता क्या है, पराधीनता से मुक्त होने के लिए कैसी क्रांति की आवश्यकता है। काशी में माखनलाल का देवस्कर-वृत्त के अन्य क्रांतिकारियों से संपर्क हुआ। वे सभी आस्तिक थे, कृष्ण-भक्त थे, गीता का पाठ करने वाले थे, यश की भूख से मुक्त थे, मृत्यु-भय जीत चुके थे। बंकिम के आनंद-मठ से दिशा-निर्देश पाते थे। रहस्यों को गुप्त रखने में सिद्धि प्राप्त कर चुके थे। माखनलाल को यह सभी अपने वैष्णव संस्कारों के अनुकूल प्रतीत हुआ। उस किशोर अवस्था में भी उन्होंने अनुभव किया कि वैष्णव-धर्म को इसी नूतन क्रांतिमय जीवन-स्पर्श की जरूरत है। वे सहर्ष गीता और आनंद-मठ और पिस्तौल लेकर क्रांतिकारी दल में सम्मिलित हो गये। एक वर्ष पूर्व जिस बालक ने केवल प्रायमरी शिक्षा की सीमाओं में अपने को समेट रखा था, जो भारत की पराधीनता के संदर्भ को भी ठीक-ठीक नहीं समझ पा रहा था वह देखते देखते क्या से क्या हो गया। वर्ष 1906 में अपने क्रांतिप्रेमी मित्रों के साथ उन्हें कलकत्ता कांग्रेस में सम्मिलित

होने के लिए कलकत्ता की यात्रा करनी पड़ी। यह एक ऐसी यात्रा थी जिसने वैष्णव-भक्त माखनलाल को, स्वाधीनता प्राप्ति के संकल्प से प्रदीप्त वास्तविक क्रांतिकारी-व्यक्तित्व में रूपांतरित कर दिया। कलकत्ता कांग्रेस 1905 के बंगाल के विभाजन की रोमांचक पृष्ठभूमि पर संपन्न हुई थी। वर्ष 1905 में गोपालकृष्ण गोखले की अध्यक्षता में बनारस में कांग्रेस का इक्कीसवां अधिवेशन हुआ था। बनारस ही में लोकमान्य ने अपना शाश्वत मंत्र उद्घोषित किया था 'स्वतंत्रता हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है और हम इसे लेकर ही रहेंगे'। कलकत्ता कांग्रेस में माखनलाल जी ने एक ही मंच पर कांग्रेस के अध्यक्ष दादाभाई नौरोजी के साथ सर्वश्री लोकमान्य तिलक, फिरोजशाह मेहता, गोपालकृष्ण गोखले, सुरेंद्रनाथ बेनर्जी, महादेव गोविंद रानाडे, मोतीलाल नेहरू और चितरंजनदास को देखा। उन्होंने वहां वह चेतना प्राप्त की जो किसी विश्वविद्यालय की ज्ञान-संपदा से किसी भी तरह कम नहीं थी। लोकमान्य तिलक ने उन्हें सर्वाधिक प्रभावित किया, वे उनके भक्त हो उठे, वे उनके साथ प्रयाग तक चले आये और उनके सम्मान में आयोजित सभा में सम्मिलित भी हुए।

1906 की समाप्ति पर जब माखनलाल पुनः अपने ग्राम पहुंचे तो उनका व्यक्तित्व पूर्णतः परिवतर्तित हो चुका था वे 'स्वाधीनता' के मंत्र से दीक्षित थे और यह समझ गये थे कि भारत की गरीबी, अशिक्षा, भारत के रूढ़िवाद और भारत की समस्त बुराइयों के मूल में एक ही बात है—"भारत की पराधीनता"—देश को हर अवस्था में पराधीनता से मुक्त होना है। गीता में वे पढ़ चुके थे कि जब-जब देश में धर्म की ग्लानि होती है तब तब प्रभु जन्म लेते हैं उन्होंने लौटकर अपनी कविता में अपने प्रभु को आमंत्रण भेजा।

पधारो एक बा फिर सुनें / धनुष की वह अद्भुत टंकार
पधारो मेघनाथ दब जाय / हो पड़े जहां कठिन हुँकार
मातृ-भू कौशल्या की गोद, आज हरि, हरी-हरी हो उठे
कष्ट में लेता हूं अवतार तुम्हारी बात खरी हो उठे
नगारों में नगरों में नाथ मुबारक बादी सी सुन पड़े
कटीली जंजीरें कट जाएं जरा आजादी सी सुन पड़े (1906)
(मा.ला. रचनावली पृष्ठ 20)

आजादी शब्द का उच्चारण करने में असमर्थ वातावरण में किशोर माखनलाल ने आजादी का निर्भीकतापूर्वक आवाहन किया। उन्होंने गहरी वेदना से लिखा :-

लगा सागर पार अशोक हाय भारत-लक्ष्मी जा पड़ी
देश ने छोड़े हैं निज स्वत्व विश्व कर रहा दुखों की झड़ी। (1906)
(मा.ला. रचनावली पृष्ठ 20)

टीचर्स ट्रेनिंग लेकर जबलपुर से लौटने पर माखनलाल की नियुक्ति खण्डवा के बंबई-बाजार-स्कूल में सहायक शिक्षक के पद पर हुई। इस बीच परीक्षा फल की प्रतीक्षा में कुछ समय खाली भी रहा, जिसका उपयोग उन्होंने हरदा नामक कस्बे में किया। यहां उन्होंने इंदर-प्रभा-खुदादाद और संगीत-शारदा (मराठी) आदि, कुछ नाटक देखे। इन नाटकों

ने कृष्णार्जुन युद्ध के भावी नाटककार को नाट्यकला की सीख दी, किंतु खण्डवा में नियुक्ति के पश्चात जिंदगी ने अनेक मोड़ लिए और पाठक यानी शिक्षक माखनलाल ने अपने आपको चारो तरफ चुनौतियों और उत्तरदायित्वों से घिरा पाया। उनके सामने शिक्षार्थी नन्हें बच्चे थे जिनमें से अधिकांश दरिद्र जीवन के शिकार थे। उनके एक ओर क्रांतिकारी सहयोगी थे जो आये दिन कोई न कोई कर्त्तव्य-भार उन्हें सौप जाते थे, दूसरी ओर खण्डवा नगर की सामाजिक सांस्कृतिक और राजनैतिक हलचलें थीं जिनसे न वे बच सकते थे, न बचना चाहते थे। 1907 की नवागत पीढ़ी के बालकों को देख कर उनका निश्छल कवि चीत्कार कर ,ठा :-

अन्न नहीं है, फीस नहीं है, पुस्तक है न सहायक हाय
जी में आता है पढ़ लिख लें पर इसका है नहीं उपाय
कोई हमें पढ़ाओ भाई हुए हमारे व्याकुल प्राण
हा-हा यों रोते-फिरते हैं भारत के भावी विद्वान (1907)
(मा.ला. रचनावली पृष्ठ 21)

क्रमशः नगर की गतिविधियों में माखनलाल जी की हिस्सेदारी बढ़ती चली गयी। वे रामलीलाओं के कथानक लिखने लगे, उनमें स्वयं भी भाग लेने लगे। उनकी लोकप्रियता बढ़ती चली गयी। वे नगर के ख्याति-नाम व्यक्तियों के संपर्क में आ गये। इनमें सैयद अमीर अली 'मीर' प्रमुख थे। इस बीच एक दिलचस्प घटना घटी—पं. माधवराव सप्रे पूना क मराठी केसरी की तर्ज पर 'हिंदी-केसरी' पत्र निकालते थे। आपने एक विज्ञापन प्रकाशित किया कि जो व्यक्ति 'राष्ट्रीय आंदोलन और बहिष्कार' विषय पर उनके पत्र द्वारा आयोजित निबंध-लेखन प्रतियोगिता में प्रथम आयेगा उसे पुरस्कृत किया जावेगा। माखनलाल 'सखाराम देवस्कर' की 'देशेर कथा' पढ़ चुके थे, उन्होंने निबंध लिख भेजा। परिणामतः उन्हें ही प्रथम पुरस्कार से सम्मानित किया गया। स्वयं सप्रे जी तो उनसे इतने प्रभावित हुए कि खंडवा ही चले आये और माखनलाल जी से मिले। यह भेंट बाद में ऐतिहासिक महत्व की सिद्ध हुई।

पुरस्कृत होने का एक सुफल यह हुआ कि माखनलाल एक लेखक के रूप में समादृत हो गये। उन्होंने एक अन्य लेख लिखा—यह खंडवा से ही प्रकाशित होने वाले सुबोध-सिंधु पत्र में प्रकाशित हुआ। प्रकाशित होने की देर थी कि उस पर उस युग के शासन की नजर पड़ गयी। माखनलाल पर राजद्रोह का अपराध लगाया गया। उन्हें एस.पी. फेयरवेदर ने बुलवाया। सुबोध-सिंधु खंडवा नगर के सुप्रसिद्ध वकील, समाजसेवी, श्री माणिकचंद जैन के परामर्श से हिंदी-भाषा में निकलने लगा था। मिलने की देर थी कि फेयरवेदर ने धमकी दी 'टुम सिडीशन लिखता है, हम टुमको कुचल देगा' पर लेख विद्रोह-पूर्ण भावनओं के बावजूद चतुराई से लिखा गया था। माखनलालजी ने अपना पक्ष दृढ़ता से रखा। अंततः एस.पी. ने चतुर्वेदी जी से कहा 'टुम बहुत अच्छा आदमी है, टुमारा अक्ल अच्छा है, टुमको ऐसा लेख नहीं लिखना चाहिए'। पर माखनलाल पुलिस की नज़रों में आ चुके थे। उन पर निगाह रखी जाने लगी थी। इस बीच वे खंडवा नगर के एक अन्य

महापुरुष श्री कालूरामजी गंगराडे के संपर्क में भी आये।

श्री कालूराम गंगराडे विश्वासों से थियोसॉफिस्ट थे। स्वभाव से दबंग थे। वे हिंदी भाषा की उन्नति चाहते थे और 'जाति-सुधार' नामक अखबार के प्रकाशक थे, उनकी इच्छा थी कि विश्व-विख्यात पत्रकार डब्लू.टी. स्टेड के सिद्धांतों के अनुकूल ही कोई पत्र हिंदी में भी प्रकाशित हो। उस समय तक की हिंदी पत्रकारिता सत्ता की अनुगामिनी थी—उन्हें माखनलालजी के व्यक्तित्व में वह तेजस्विता दिखाई दी जो उनके आदर्शों को पत्रकारिता में ढाल सकती थी। उधर माखनलाल जी भी समझ रहे थे कि शासकीय चाकरी करते हुए वे न भारत के स्वतंत्रता संघर्ष में अपना योग दे सकेंगे, न स्वतंत्र लेखन ही कर सकेंगे। अतः कालूरामजी का आमंत्रण मिलते ही वे उनके साथ हो गये और दोनों ने जिस पत्रिका का डिक्लेरेशन प्राप्त किया उसका नाम 'प्रभा' रखा गया। प्रारंभ में माखनलाल सहयोगी-संपादक बने। प्रभा का प्रथम अंक 7 अप्रैल 1913 को प्रकाशित हुआ और देखते-देखते प्रभा ने अपनी अखिल भारतीय श्रेष्ठता प्रमाणित कर दिखायी। जब इस मासिक के 6 अंक निकल गये तो 26 सितंबर 1913 को माखनलाल जी ने शासकीय पाठकी से इस्तीफा देकर अपने आपको मुक्त कर लिया, एक जमी-जमायी नौकरी को छोड़कर संघर्ष-पथ को पूर्णतः स्वीकार करना बहुत खतरे को आमंत्रित करना था। समस्त खंडवा शहर उनकी इस साहसिकता पर दंग रह गया।

प्रभा को अपने युग के सभी प्रतिष्ठित और लोकप्रिय, बड़े और नये लेखकों का उन्मुक्त सहयोग मिला। उसके परिवार में सर्वश्री बदरीनाथ भट्ट, महावीर प्रसाद द्विवेदी, माधवराव सप्रे, कामताप्रसाद गुरू, विष्णुदत्त शुक्ल, महात्मा मुंशीराम, मैथिलीशरण गुप्त, श्यामबिहारी मिश्र, लोचनप्रसाद पांडेय, बनारसीदास चतुर्वेदी, सियाराम शरण गुप्त, वृंदावनलाल वर्मा, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी प्रेमचंद और गणेश शंकर विद्यार्थी जैसे महिमा-संपन्न रचनाकार सम्मिलित हो गये थे। मैथिलीशरण गुप्त ने तो प्रभा का आदर्श-वाक्य इन पंक्तियों में लिख भेजा था—

मिटे सर्वदा को अविद्या-निशा
प्रभापूर्ण हो जाये प्राची दिशा

किंतु गणेश शंकर विद्यार्थी माखनलालजी से इतना अधिक प्रभावित हो गये कि प्रताप में प्रकाशनार्थ भेजी गयी उनकी 'चेतावनी' शीर्षक कविता को पाकर स्वयं ही खंडवा आ गये गणेश जी और माखनलाल जी की इसी मित्रता ने साहित्य और संग्राम का यशस्वी इतिहास रचा। गणेश शंकरजी 'प्रभा' में सत्येंद्र और आदित्य नामों से लिखते थे। मुंशी प्रेमचंद की विख्यात कहानी 'शंखनाद' भी सर्वप्रथम 'प्रभा' में छपी थी। मध्यप्रदेश शासन की एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट में उसका ससम्मान उल्लेख किया गया था। स्वयं महावीर प्रसादजी द्विवेदी ने 'प्रभा' को अपना आशीर्वाद प्रदान किया। सामग्री की दृष्टि से साहित्य की सभी विधाओं से प्रभा समृद्ध थी। वह सचित्र पत्रिका थी और युग की विषमताओं पर उसकी टिप्पणियों का प्रभाव पाठकों पर अंकित होता था। प्रभा के प्रथम संपादकीय में माखनलालजी ने स्पष्ट घोषणा की थी, 'हम कमजोरियों के शत्रु होंगे पर कमज़ोर हमारे होंगे और हम

उनके. . . हमारी दृष्टि में सब भारतीय एक होंगे, हमारी आंखों में घूमेंगे वे भोले-भाले भाई जो निरक्षर होकर भी हमारे अन्नदाता हैं. . .पर जिस गरीब को हम भूखा मरने से नहीं बचा रहे। 'प्रभा' घोषित रूप से सांस्कृतिक पत्रिका थी पर इसमें भी माखनलालजी का निर्भीक चुनौती भरा व्यक्तित्व दबाया न जा सका। चैत्र 1912 के अंक में अपनी एक प्रदीर्घ कविता के मध्य उन्होंने राष्ट्र की तरफ से अपनी यह कामना व्यक्त की—

'श्रेष्ठतमता' का होवे नशा। दमकता हो समानता तत्व
देश के अंग न मारे जायं। प्राप्त हो पूरा-पूरा स्वत्व

सन् 1906 के पश्चात (शासकीय सेवा में रहकर भी) 1912 में पुनः 'प्राप्त हो पूरा-पूरा स्वत्व' कहना सहज नहीं था। माखनलाल जी ने संपूर्ण हिंदी कविता की ओर से ब्रिटिश शासन को यह सूचना दे दी थी कि अब इस देश में राजभक्ति की कविता नहीं लिखी जायेगी। अब जो कविताएँ लिखी जावेंगी उनमें स्वाधीनता और सामाजिक समानता का उद्घोष होगा'। दुर्भाग्य से प्रभा 1913-14 से 1914-15 तक और फिर एक वर्ष बाद 1916-17 से1917-18 तक निकली और बंद हो गयी।

अब खंडवा में माखनलाल जी जिंदगी के आरोपित ठहरावों से मुक्त हो चुके थे। वे तेजी से सृजन और संघर्ष के रास्तों पर दौड़ चले। वर्ष 1916 में जबलपुर में अखिल भारतीय हिंदी साहित्य सम्मेलन को उन्होंने ही पं. विष्णुदत्तजी शुक्ल के साथ आमंत्रित कर डाला। 'कृष्णार्जुन-युद्ध' इसी अवसर पर खेलने के लिए लिखा गया था। नाटक खेला गया और उसकी धूम मच गयी। सर्वश्री जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी, पुरूषोत्तमदास टंडन, लक्ष्मीधर वाजपेयी, शिवप्रसाद गुप्त और श्री प्रकाशजी जैसे दर्शकों को उसने अभिभूत कर दिया। कार्यकारी अध्यक्ष डा. श्यामसुंदर दास ने तो यहां तक कहा कि मध्यप्रदेश अतीव सौभाग्यशाली है जो उसने पं. माखनलाल चतुर्वेदी के रूप में एक अत्यंत प्रतिभा- संपन्न व्यक्तित्व प्रदान किया है. . . जो दिनों-दिन हिंदी संसार को गौरवान्वित करेगा। 'मंच-बोध, नायकत्व, न्याय-चेतना, स्वातंत्र्य-बोध, प्रगतिशील समाज का स्वप्न, श्रम-निष्ठा, ईश्वरत्व का मानवीकरण, अंतर्द्वंद्व, मनोवैज्ञानिक चरित्र-चित्रण, स्वस्थ सार्थक हास्य, भाषा-सौष्ठव, संप्रेषण सामर्थ्य, वैज्ञानिक चिंतन, संकलनत्रय, कथानक की कसावट और वैश्विक उदात्त जीवन-दृष्टि के समवेत प्रस्तुतीकरण ने इस नाटक के द्वारा समय की एक बड़ी जरूरत को संतुष्ट किया। डा. धीरेंद्र वर्मा के शब्दों में—'इसके मुझ पर दो प्रभाव पड़े. . . एक यह कि प्राचीन कथानकों को लेकर आधुनिक काल की समस्याओं पर किस प्रकार प्रकाश डाला जा सकता है, दूसरे यह कि हिंदी में साहित्यिक नाटक भी रंगमंच की दृष्टि से सफलता के साथ लिखा जा सकता है. । यह वास्तव में खेद का विषय है कि इस परंपरा को हिंदी नाटक साहित्य के अंतर्गत आगे विकसित नहीं किया गया।'

1916 में ही माखनलाल जी लखनऊ कांग्रेस में सम्मिलित हुए। यहाँ उनकी गणेशशंकरजी के प्रताप प्रेस में महात्मा गांधी से प्रथम भेंट हुई, यहीं उन्होंने सर्वप्रथम मैथिलीशरण जी गुप्त के दर्शन किये जिन्हें वे गुरू तुल्य मानते थे। इस बीच वे गंभीर रूप से बीमार पड़ गये। दो वर्ष तक उनका उपचार चल रहा था। क्रमशः चतुर्वेदी जी स्वस्थ

होने लगे। उन्होंने अपने स्वास्थ्य-लाभ के दौर में ही महात्मा गांधी की अध्यक्षता में इंदौर ही में संपन्न अखिल भारतीय हिंदी साहित्य सम्मेलन को सर्वश्री संपूर्णानंद एवं बनारसीदास चतुर्वेदी के साथ अपना रचनात्मक सहयोग प्रदान किया, साथ ही सम्मेलन की लेखमाला का संपादन भी किया। इन्ही दिनों गांधी जी के परामर्श से वे सशस्त्र क्रांति से विरत होने पर भी क्रांतिकारियों के त्याग और देश-प्रेम के प्रति उनकी निष्ठा आजीवन बनी रही। यह बहुत उल्लेखनीय तथ्य है कि कृष्णार्जुन युद्ध नाटक में माखनलाल ने वर्ष 1915-16 में यानी रूस की क्रांति से भी काफी पूर्व यह कुबेर के शब्दों में यह स्वप्न देखा था—'मनुष्य ने कारणवश ऐसे सामाजिक और राजकीय नियम बना रखे हैं। जिनके कारण धूर्त और अयोग्य भी अपार संपत्ति के स्वामी बन जाते हैं और धनवान तथा गरीब का भेदभाव सदा के लिए दृढ़ होता रहता है किंतु आगे चलकर पृथ्वी पर समष्टिवाद का बल बढ़ेगा। लोग प्रयत्न करेंगे कि धनवान और धनहीन का भेद मिटे, सुवर्ण और ऐश्वर्य से दमकते हुए महल और पास ही में छप्पर रहित झोपड़ी दिखाई न देगी, महल तोड़े जाएंगे, झोपड़ियां हवेलियों में परिणत की जावेंगी। धन और धरती का संसार के सभी मनुष्यों में बराबर बंटवारा होगा, सब सुख से रहेंगे, केवल धन के कारण किसी को बड़प्पन नहीं मिल सकेगा क्योंकि एक के पास दूसरे से अधिक धन रहेगा ही नहीं। (कृष्णार्जुन युद्ध पृ. 40-41)

भारत में प्रगतिवादी विचारधारा के आगमन से लगभग 20-21 वर्ष पूर्व देखा गया यह चिंतन-स्वप्न चतुर्वेदी जी की भविष्य दृष्टि का अचूक प्रमाण देता है। समय से बहुत आगे देख सकने की क्षमता ने माखनलालजी के समग्र सृजन को अनवरत प्रासंगिक बने रहने की दुर्लभ शक्ति प्रदान की।

कर्मवीर का प्रकाशन : जेल-यात्राएं

स्वतंत्रता संग्राम की गतिविधियों को प्रकाशन प्रचार देने की दृष्टि से पं. माधवराव सप्रे और विष्णुदत्त जी शुक्ल जैसी उस युग की विभूतियों ने यह अनुभव किया कि कोई पत्र प्रकाशित किया जाना चाहिए। 'कर्मवीर' इसी जरूरत में से पैदा हुआ था। पं. माखनलाल चतुर्वेदी उसके संपादक नियुक्त किये गये। कर्मवीर का पहला अंक 17 जनवरी 1920 को जबलपुर (मध्यप्रदेश) से प्रकाशित हुआ। उसे अखिल भारतीय ख्याति और व्याप्ति प्राप्त करने में अधिक समय नहीं लगा। उत्तर-प्रदेश से प्रताप और मध्यप्रदेश से कर्मवीर ने समस्त हिंदी-भाषी-विश्व को ही नहीं शेष भारत को भी आयत्त कर डाला। सर्वश्री महात्मागांधी और सुभाषचंद्र बोस जैसे राष्ट्र-व्यक्तित्व कर्मवीर के नियमित पाठकों में से थे, उधर वह जन-जन का अपना लाड़ला था। राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय विषयों पर समान अधिकार से चलने वाली संपादक माखनलाल की लेखनी हिंदी को सोच की भाषा देने वाली थी और युग-बोध को भविष्य का परिप्रेक्ष्य देने वाली थी। डाक्टर हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं—"मुझे बाल्यकाल की बात याद आ रही है जब 'कर्मवीर' पढ़ने के लिए लोग लालायित रहते थे। माखनलालजी की कलम में अद्भुत शक्ति थी। जहां एक ओर उससे शक्तिशाली ब्रिटिश शासन कांपता रहता था वहां दूसरी ओर युवकों में वह उत्साह और प्रेरणा भरती रहती थी। "कर्मवीर का उर्दू के महान साहित्यकार 'श्री रघुपतिसहाय फिराक' का उत्तेजक

आकलन भी कम महत्वपूर्ण नहीं। वे लिखते हैं, ''मुझे याद आता है जब देश गुलाम था तो कर्मवीर में पं. माखनलाल चतुर्वेदी के लेख मेरे जैसे लाखों देशवासियों के दिलों में गुलामी के खिलाफ़ ऐसा जोश पैदा कर देते थे जिसे भुलाया नहीं जा सकता। कम से कम मैं तो तब से अब तक भुला नहीं सका हूं। जब से देश गुलाम हुआ तब से सत्तर-अस्सी बरसों तक, अंग्रेजी भाषा में और भारतीय भाषा में, देशप्रेम के समर्थन और गुलामी के विरोध में कई करोड़ शब्द बोले और लिखे गये, लेकिन वे सब हवा में विलीन होकर रह गये और आज किसी के कानों या दिलों में गूंज नहीं रहे हैं। माखनलालजी के लेख अब तक दिलों और कानों में गूंज रहे हैं। उनके लेखों को पढ़ते वक्त ऐसा मालूम होता था कि आदि शक्ति शब्दों के रूप में अवतरित हो रही है, या गंगा स्वर्ग से उतर रही है यह शैली हिंदी ही में हीं नहीं भारत की दूसरी भाषाओं में भी बिरले ही लोगों को नसीब हुई। मुझ जैसे हजारों लोगों ने अपनी भाषा लिखने की कला माखनलाल जी से सीखी।'' इसी संदर्भ में हिंदी के प्रख्यात प्रगतिवादी समीक्षक 'डॉ. रामविलास शर्मा' की कुछ पंक्तियां भी दृष्टव्य है जो कर्मवीर में प्रकाशित माखनलालजी के गद्य सामर्थ्य को व्यक्त करती हैं वे लिखते हैं। ''पत्रकार माखनलाल चतुर्वेदी का गद्य लोकमानस का इतिहास है। वह ऐसा इतिहास है, जो पाठ्य-पुस्तकों में नहीं मिलता। माखनलाल चतुर्वेदी ने स्वाधीनता आंदोलन के अनेक पक्षों की ओर ध्यान दिया। उन्होंने देशी राज्यों की प्रजा के आंदोलनों का समर्थन किया उसे राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन का एक अंग माना, उन्होंने सांप्रदायिकता को उकसावा पैदा करने वालों की तीखी आलोचना की। उन्होंने साम्राज्यवादी युद्ध नीति का पर्दाफाश किया. . . माखनलाल ने स्त्रियों को सामंती सदियों से मुक्त करने पर जोर दिया। उन्होंने देश के पिछले आदिवासी जन की ओर भी ध्यान दिया. . .उन्हें देश की प्रगति के लिए सबसे ज्यादा भरोसा युवाशक्ति का था, अपने जीवन की हर मंजिल में वे देश के तरूणों के प्रवक्ता बने रहे—उनकी सहानुभूति मजदूरों और किसानों के प्रति अटूट बनी रही। उनके राजनीतिक चिंतन का जितना महत्व अतीत के लिये था उससे अधिक भविष्य लिये है''।

इसमें संदेह नहीं कि माखनलाल जी का सुनिश्चित राजनैतिक चिंतन था। किंतु उनकी विशेषता यह थी कि उन्होंने इस चिंतन को कर्म की भाषा भी प्रदान की और वे 1921 के असहयोग आंदोलन में तथा 1930 के सविनय अवज्ञा आंदोलन में जेल भी गये। इन जेलयात्राओं में उन्हें हथकड़ी बेड़ी पहनाकर कालकोठरी में भी रखा गया। गिट्टी तुड़वायी गयी, पर माखनलाल विचलित नहीं हुए, उन्हें जेल-जीवन के अनेक भय दिखलाये गये। उनसे बार-बार कहा गया कि क्षमा मांग लीजिए अन्यथा सन के ढेरों की रस्सी बुनते-बुनते तमाम उम्र बरबाद हो जायेगी। जेल में उन्हें सन का ढेरा ही रस्सी बुनने के श्रम-दण्ड स्वरूप दिया भी गया, जब एक सुबह जेलर 'राउंड' पर निकला तो सन के ढेरे से रस्सी बुनते हुए कैदी माखनलाल को देखकर उसने व्यंग्य में कहा, 'आखिर ढेरा लेकर ही माने न?' इस प्रश्न का उत्तर देते हुए पं. माखनलाल चतुर्वेदी ने अपने अंतः करण में निहित कवि-सुलभ विश्व-भाव को व्यक्त करते हुए ये पंक्तियां जेल की दीवार पर कोयले से लिखीं—

ढेरा मत बोलो यह मेरा व्रत-पूजन है
सन नहीं तन भारतीयों का मिलाता हूं
यों चक्कर लगाते हुए अलख जगाता हूं
यो विश्व बांधने को प्रेम-बंधन बनाता हूं
नाम ही को पाता हूं बिलासपुर वासियों में
मैं तो तीर्थराज इन सीखंचों में पाता हूं
स्वेद की कालिंदजा मस्ती की सरस्वती ले
नयनों की गंगा बहा त्रिवेणी नहाता हूं
(रचनावली पृष्ठ 74)

यही नहीं उन्होंने अंग्रेजों द्वारा स्थापित किये जाने वाले रतौना के कसाई खाने को बंद करवाने के आंदोलन में, और फिर ऐतिहासिक झंडा सत्याग्रह में न सिर्फ प्रांत का और फिर देश का सफल नेतृत्व किया अपितु इन आंदोलनों में ब्रिटिश शासन को परास्त भी किया। मध्यप्रदेश के (1926 के) केंद्रीय असेंबली के चुनाव चतुर्वेदी जी के ही नेतृत्व में सफलतापूर्वक लड़े गये थे और 1935 के चुनावों में मध्यप्रदेश संसदीय बोर्ड के अध्यक्ष के रूप में भी उन्होंने ऐतिहासिक भूमिका का निर्वाह करते हुए कांग्रेस को विजयी बनाया। स्वतंत्रता संग्राम में माखनलाल जी का प्रदेय अनेक अखिल भारतीय शिखरों से बढ़कर था।

महात्मा गांधी का सान्निध्य

1921 में जब माखनलाल जी प्रथम बार ब्रिटिश शासन की कूटनीति द्वारा पं. सुंदरलाल के साथ गिरफ्तार किये गये तो महात्मा गांधी ने 'यंग-इंडिया' में लिखा था—'पं. सुंदरलाल और अब पं. माखनलाल चतुर्वेदी स्वतंत्र रहने की अपेक्षा अपनी आत्मा के लिए जेल जाकर अपने देश की अधिक सेवा कर रहे हैं। जिनका यह ख्याल नहीं वे सहयोग की शक्ति का सिद्धांत नहीं समझते।' 'महात्मा गांधी का माखनलाल जी के प्रति जो विशेष स्नेह था वह उनकी 1933 में संपन्न अखिल भारतीय हरिजन-यात्रा में अधिक प्रखरता के साथ व्यक्त हुआ। इस यात्रा के मध्य जब गांधी जी महाकौशल में पधारे तो प्रायः सर्वत्र ही उन्होंने माखनलाल जी को अपने साथ रखा, और उनके बाधाओं के बावजूद वे होशंगाबाद जिले में (मध्यप्रदेश में) उनकी जन्मभूमि बाबई स्वेच्छा से पहुंचे। बाबई में उन्होंने अपने भाषण में कहा, 'मैं तारीख 30 नवंबर को जब इटारसी आया तब लोगों ने मुझसे तवा नदी के बारे में कहा कि रास्ता खराब है, खराब रास्ता होने से, मेरा शरीर कमजोर होने से, बाबई आने का प्रोग्राम बदल दिया, बदल तो दिया पर मगर मेरा मन यहीं लगा हुआ था, मुझे इरादा बदलने की दिलगिरी थी। भाई माखनलाल की जन्मभूमि होते हुए भी उन्होंने मेरे शरीर की हालत जानकर ही मुझे रोका, किंतु उसकी जन्मभूमि और आप लोगों को देखने को मेरा मन बाबई ही में लगा हुआ था। यह बात आप जान लें—कि मैं यहाँ पैसा लेने नहीं मैं तो आप भाइयों के प्रेम के कारण आया हूं।' महात्मा गांधी हरिजनों के लिए चंदा

एकत्रित करने समस्त भारत की यात्रा पर निकले थे। पर बाबई-यात्रा को उन्होंने प्रेमयात्रा के रूप में लेकर विशेष सम्मान प्रदान किया था।

पं. माखनलाल चतुर्वेदी का पूज्य बापू से अनेक वर्षों का सक्रिय संबंध रहा। वे नमक सत्याग्रह 1930 में और अखिल भारतीय हिंदी सा. सम्मेलन इंदौर के 24 वें अधिवेशन में भी उनके सान्निध्य में रहे। माखनलाल जी की जेल-यात्राएं उनके साहित्य-सृजन की दृष्टि से भी बहुत महत्वपूर्ण रहीं। अपनी विख्यात कविता 'पुष्प की अभिलाषा' का सृजन उन्होंने अपनी प्रथम जेलयात्रा में गणेश शंकर जी विद्यार्थी के अनुरोध पर जेल से छूटते समय दिये जाने वाले संदेश के रूप में ही किया था :-

मुझे तोड़ लेना वनमाली, उस पथ में देना तुम फेंक
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने, जिस पथ जावें वीर अनेक

यह महान् रचना बलिदान के शाश्वत तत्व की ओर संकेत करती है और स्वातंत्र्य समर के वीरों को अक्षय-प्रेरणा देती रही है। जेल में लिखी गयी अन्य रचनाओं में भी माखनलाल विश्व-चेतना की अभिव्यक्ति द्वारा काव्य को प्रासंगिकता और वैश्विक ऊंचाई प्रदान करते हैं। जबलपुर जेल में भी जिसमें वे वर्ष 1930-31 में सविनय अवज्ञा आंदोलन के अंतर्गत रखे गये थे उन्होंने 'कैदी और कोकिला', 'मुझे कहते हैं माता', 'झरना' और 'हिमकिरीटिनी' जैसी अप्रतिम रचनाएं दीं। कैदी और कोकिला में उन्होंने गर्जना की :-

हूं मोट खींचता लगा पेट पर जूआ
खाली करता हूं ब्रिटिश अकड़ का कूआ

माखनलाल जी पूर्व मध्यप्रदेश (महाकौशल में) अखिल भारतीय कांग्रेस के संस्थापकों में से थे और स्वाधीनता में जेल जाने वाले प्रथम सत्याग्रही थे। मूलतः साहित्यकार होते हुए भी उन्होंने स्वाधीनता संघर्ष में मात्र इसलिए भाग लिया था कि वे पराधीन भारतवर्ष को स्वीकार नहीं करना चाहते थे। उनकी स्वाधीनता, समता और भ्रातृत्व के मूल्यों में दृढ़ आस्था थी। *मूल्यहीन जीवन को वे निकृष्ट मानते थे। भारत ही नहीं वे समस्त एशिया और विश्व की मुक्ति कामना से स्वातंत्र्य-समर की संकट धर्मी राजनीति में सम्मिलित हुए थे। उनके एक प्रसिद्ध मित्र* श्री बनारसीदास चतुर्वेदी ने जब उनसे राजनीति पथ त्याग कर केवल साहित्य-पथ पर चलने का आग्रह किया तो उन्होंने नम्रतापूर्वक उन्हें लिखा—

सखे बता दे कैसे गाऊं अमृत मौत के दाम न हो
जगे एशिया, हिले विश्व, और राजनीति का नाम न हो (1917)

इसी प्रकार विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने जब कहा था बंशी (याने साहित्य कला आदि) केवल बजाने की चीज है, उसमें स्वर है दिशाओं में उन्माद भर देने वाला, उसका उपयोग केवल बजाने में ही करो' तो इस परामर्श का प्रत्युत्तर देते हुए माखनलाल जी ने लिखा था, 'हम मानते हैं कि बंशी केवल बजाने की चीज है. . .यदि काबू में चले तो हम यही, केवल यही, करना चाहते हैं। इससे भिन्न करना हमें श्राप हो रहा है, किंतु जब

रण-घोषणा हो उठेगी, जब भगवान का संकेत आपके हृदय में स्फुरण पैदा करने लगेगा, जब आपकी पुकार हो उठेगी। तब आप क्या करेंगे? प्यारी बंशी फेंकी नहीं जाती। हम संध्या को लौटकर उसे बजाते हैं और सवेरे जब संग्राम में आते हैं। तब सैनिकों को एकत्र करने के लिए उसी छः छेद वाली बंशी से नगाड़े पर चोट लगाते हैं। यह अपराध गरीब देशवासियों को करना पड़ रहा है और न जाने कब तक करना पड़े। आप देश में स्वाधीनता दीजिए और फिर देखिये कि बंशी किस तरह वैन से बजाने ही के काम में आ रही है।'

यही वजह है, जब 22 सितंबर 1932 को श्री बनारसीदास जी चतुर्वेदी और जैनेंद्र के साथ माखनलाल जी ने स्वयं शांति निकेतन पहुंचकर रवींद्रनाथ से भेंट की तो उन्होंने उनसे एक ही प्रश्न पूछा ''हम सैनिकों के लिये आपका क्या संदेश है?' यानी हम लोग जो बांसुरी से युद्ध-क्षेत्र में नगाड़े बजाने का काम ले रहे हैं। उनसे आप क्या कहना चाहते हैं? रवींद्रनाथ माखनलाल जी का अभिप्राय तत्काल समझ गये और उन्होंने प्रत्युत्तर में कहा, 'मेरा श्री-निकेतन ही आपके प्रश्न का उत्तर है, ब्रिटिश शासन मेरे प्रति बहुत अन्यायशील रहा है क्योंकि अपने विचारों को स्पष्ट अभिव्यक्ति देते रहने पर भी उसने मुझे कभी जेल नहीं भेजा।' रवींद्र का उत्तर माखनलाल जी के स्वाधीनतावादी एवं मूल्यार्पित दृष्टिकोण की बहुत बड़ी विजय है। वे यह दृढ़ता से मानते थे कि जीवन के कुछ मूल्य अस्तित्व के मूल्य ही होते हैं। और उनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती—प्राण देकर भी उनकी रक्षा करना प्रत्येक जन का कर्त्तव्य हैं। उन्हीं के शब्दों में :-

देह? प्रिय यहां कहां परवाह
टंगे शूली पर चर्म-क्षेत्र,
गेह? छोटा सा हो तो कहूं
विश्व का प्यारा धर्म-क्षेत्र

और जब भारत स्वतंत्र हुआ तब उन्हें महसूस हुआ कि यह क्षण उल्लास का उतना नहीं है जितना उत्तरदायित्वों का है, उन्हीं के शब्दों में :-

उठ पूरब के प्रहरी पश्चिम जांच रहा घर तेरा,
साबित कर तेरे घर पहिले होता विश्व-सवेरा।
वह नेपाल प्रलय का प्रहरी, वह तिब्बत सुरधामी
वह गांधार युगों का स्वामी, वीर सोवियत नामी
तुझे देख, उन्मुक्त आज ये उन्नत बोल रहे हैं
चीन, निपन, बर्मा जावा के मस्तक डोल रहे हैं।

उनका ध्यान राष्ट्र-भाषा हिंदी की तरफ गया—

'आज हो गयी धन्य प्रबल हिंदी वीरों की भाषा' उनका ध्यान गरीबों और असहायों की ओर गया, उन्होंने नेतृत्व से कहा—

'तोड़ अमीरों के मनसूबे गिन न दिनों की घड़ियां
बुला रही हैं तुझे देश की कोटि-कोटि झोपड़ियां'

उनकी कामना थी कि स्वाधीनता का क्षण राष्ट्र की नयी पीढ़ियों का गौरव-क्षण हो, वह नूतन सफलताओं का प्रारंभ सिद्ध हो। क्योंकि आने वाले समय में राष्ट्र-युवकों को अनेक ऊंची-नीची सीढ़ियों पर चढ़ना होगा, दायित्व से, वज्र-संकल्प से, नेत्रों में प्राण-ज्योति भरते हुए—

हो नन्हीं दुनिया के हाथों कोटि-कोटि जयमाला
मस्तक पर दायित्व, हृदय में वज्र, दृगों में ज्वाला।

स्वाधीनता प्राप्ति के बाद माखनलाल जी ने अपनी बांसुरी वहीं से पुनः ग्रहण की, जहाँ वे 1906 में उसे छोड़कर चले गये थे। वे सत्ता प्राप्ति की दिशा में नहीं बढ़े, वे बृहस्पति के आसन को सबसे बड़ा मानते थे। उन्होंने उसी आसन को ग्रहण किया। एक ओर वे राष्ट्र के नेतृत्व को उसकी मर्यादा और उत्तरदायित्वों का स्मरण दिलाते रहे तो दूसरी ओर अपनी जन-भाषा की बांसुरी पर अपने आराध्य को आमंत्रित करते रहे, ताकि उसकी प्रणय-रागिनी से भारत के साथ ही वह धरा-धाम भी गूंजता रहे :

वेणु लो गूंजे धरा मेरे सलौने श्याम,
नष्ट होने दो सखे संहार के सौ काम

वे आजीवन लक्ष्य-सिद्धि के लिये तड़पते रहे पर साथ ही अपने अर्जित मनोबल पर स्थिर भी रहे, वे स्वजन अर्थात् सामान्य जन के लिए गाने लगे :

बदरिया थम थम कर झर री
सागर पर मत मरे अभागिन
गागर को भर री

माखनलाल का स्वातंत्र्योत्तर सृजन अनेक नूतन उपलब्धियों के क्षितिजों को उजागर करने वाला है। प्रार्थना और प्रकृति का यह सिद्ध कवि कालपुरुष के आवाहन पर स्वातंत्र्य-समर के योद्धा का कर्त्तव्य-निर्वाह करने स्वाधीनता समता और भ्रातृत्व के मूल्यों के नूतन अर्थ और भाषा को लोकोन्मुख सहजता प्रदान करते हुए युद्ध-स्थल की तरफ चला गया था। विजयोपलब्धि के उपरांत वह फिर प्रकृति की बांसुरी बजाने लगा, पराधीनोत्तर संघर्षों के साथ-साथ ही वह स्वतंत्र दिशाओं में और संपूर्ण की मनोनुकूल भावभूमि पर थिरकने लगा :

रूप के कर की सुनहरी बांसुरी सोई नहीं है
बिंदुलख कर रंध्र ही से फूटते तरू-बेलि हंस कर
यह फसल बोई नहीं है
रूप के कर की सुनहरी बांसुरी सोई नहीं है।

स्वाधीनता के पूर्व माखनलालजी की कुछ ही कृतियां प्रकाशित हुई थीं-कृष्णार्जुन युद्ध, हिमकिरीटिनी, साहित्य देवता आदि। पर 1947 के पश्चात अनेक काव्य-कृतियां प्रकाशित हुईं—हिमतंरगिनी, माता, युगचरण, समर्पण, मरण-ज्वार, आधुनिक कवि, वेणु लो गूंजे धरा, बीजुरी काजर आंज रही, वधुभ्र-वलय आदि। कुछ गद्य-कृतियां भी निकलीं—

कला का अनुवाद, कहानी अमीर इरादे गरीब इरादे, समय के पांव, चिंतक की लाचारी पांव पांव, रंगों की बोली। एक जीवनी का अंश भी आया। माखनलाल शैशव और के शोर्य वर्ष 1983 में उनकी समस्त रचनाओं का एक बड़ा भाग 'माखनलाल चतुर्वेदी रचनावली' के रूप में दस भागों में प्रकाशित हुआ। अभी बहुत कार्य शेष है। पर माखनलाल चतुर्वेदी साहित्य और स्वाधीनता के दृढ़ पृष्ठों से कभी शेष न होंगे। उनका उदात्त स्वर अक्षितिज गूंजता रहेगा, उनका चित्र कभी धूमिल नहीं हो सकेगा।

मधुर तुम्हारा चित्र बन गया
कुछ नीले कुछ श्वेत गगन पर
हरे-हरे घनश्यामल वन पर
द्रुत असीम उद्दंड पवन पर
चुंबन आज पवित्र बन गया।
मधुर! तुम्हारा चित्र बन गया।

□

माखनलाल चतुर्वेदी : युगदृष्टा और युग सृष्टा पत्रकार

जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी

आज का हिंदी पढ़ने वाला माखनलाल चतुर्वेदी को कम, 'एक भारतीय आत्मा' को अधिक जानता है। अगर दूरदर्शन की दृष्टि से नापें तो 'एक फूल की चाह' कविता ही माखनलाल चतुर्वेदी का राष्ट्र के लिए और भाषा के लिए सबसे बड़ा योगदान था, परंतु स्वाधीनता से पहले यह नहीं समझा जाता था। उस समय श्री माखनलाल चतुर्वेदी एक प्रसिद्ध कवि, सशक्त लेखक, प्रमुख राजनीतिक नेता व हिंदी साहित्य सम्मेलन के एक अध्यक्ष ही नहीं माने जाते थे, वे देश के श्रेष्ठतम पत्रकारों में गिने जाते थे। आज हम लोग प्रायः यह समझ बैठते हैं कि उस समय देश में जो राष्ट्रवादी पत्रकारिता थी, जिसका श्रीगणेश लोकमान्य तिलक ने किया था, उसी तरह की पत्रकारिता माखनलाल चतुर्वेदी की होगी और जब देश स्वाधीन हो गया तो अन्य राष्ट्र भक्त पत्रकारों की भांति वे भी अप्रासंगिक हो गये। परंतु कम-से-कम माखनलाल चतुर्वेदी के जीवन के सौ वर्ष के उपरांत उनकी सक्रिय पत्रकारिता के 55 वर्षों का यथोचित मूल्यांकन होना चाहिए। उसका कारण यह है कि राजनीतिक पत्रकारिता में अत्यंत सक्रिय होते हुए भी माखनलाल चतुर्वेदी मूलतः कवि थे। अगर वे कवि न होते तो उनकी राजनीतिक वरीयता इतनी ऊंची थी कि वे मध्यप्रदेश के प्रथम कांग्रेसी मुख्यमंत्री बन सकते थे परंतु उन्होंने राजनीति के स्थान पर साहित्य सेवा और पत्रकारिता का वरण किया। राजनीति में उन जैसा व्यक्ति कितना संतोष पा सकता था, इसका उन्हें अनुमान हो गया था और स्वाधीन भारत की राजनीति में उस व्यक्ति ने, जो 1936 में मध्यप्रदेश कांग्रेस के संसदीय मण्डल का अध्यक्ष रहा हो और जिसने 1937 में सारे मध्यप्रदेश के चुनाव में कांग्रेस दल का नेतृत्व कर उसे विजयी बनाया हो, कोई दिलचस्पी नहीं ली। उन्होंने अपना ध्यान रचना-धर्मिता और पत्रकारिता की ओर ही लगाया। उनके इस जीवन में राजनीति का एक छोटा-सा अंश उस समय आया जब 1967 में भारतीय संसद द्वारा राजभाषा विधेयक पारित होने के बाद उन्होंने राष्ट्रपति को वह 'पद्मभूषण' अलंकरण लौटा दिया, जो उन्हें 1963 में प्रदान किया गया था।

संभवतः यदि माखनलाल चतुर्वेदी सक्रिय राजनीति में न होते तो हिंदी के निर्माण में उनका स्थान उस सूची में लिखा जाता, जिसमें सबसे पहले भारतेंदु हरिश्चंद्र को यह अवसर मिला, जिसका उन्होंने भरपूर उपयोग किया कि अपने पत्र के माध्यम से हिंदी की विभिन्न विधाओं में लेखकों को प्रोत्साहित करें। अगर हम अपना ध्यान उन कवियों और रचनाकारों की ओर दें, जो 'प्रभा' और 'कर्मवीर' के माध्यम से हिंदी जगत में स्थापित हुए, तो उनमें अनेक मूर्धन्य नाम आते हैं। उनमें नाम आता है—श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान का, उनके पति श्री लक्ष्मण सिंह का, (जिनका कुली प्रथा नाटक भारत सरकार ने ज़ब्त

कर लिया था) हरिकृष्ण प्रेमी का, गजानन माधव मुक्तिबोध का, वीरेंद्र कुमार जैन का, गिरिजाकुमार माथुर का, भवानी प्रसाद मिश्र का, निरंकारदेव 'सेवक' का, प्रभागचंद्र शर्मा का, प्रभाकर माचवे का। और भी बहुत से नये लेखक थे जो मध्यप्रदेश तक ही सीमित नहीं थे, जिन्हें श्री माखनलाल चतुर्वेदी की लेखनी ने प्रोत्साहित किया था। केवल पांच कवियों को प्रोत्साहन देने के कारण श्री महावीर प्रसाद द्विवेदी के नाम से ही बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक चरण का नाम द्विवेदी काल हो गया। द्विवेदी जी तो 17 वर्ष तक ही 'सरस्वती' के संपादक रहे, परंतु माखनलाल चतुर्वेदी का कार्यकाल उनसे तिगुना था और उन्होंने भी कालजयी साहित्यकारों को प्रेरणा देकर उंगली पकड़कर आगे बढ़ाया।

माखनलाल चतुर्वेदी की पत्रकारिता को हम कई दृष्टियों से देख सकते हैं। उन्होंने 1913 में, रामनवमी के दिन अप्रैल, 1913 में 'प्रभा' का प्रथम अंक निकाला था। इसके संचालक थे श्री कालूराम गंगराडे और संपादक थे माखनलाल चतुर्वेदी। उससे भी पहले वे 'सुबोध सिंधु' नामक पत्रिका का संपादन कर चुके थे। यह पत्र मासिक रूप में जबलपुर से 1884 में प्रकाशित हुआ था और हिंदी तथा मराठी दोनों भाषाओं में छपता था। बाद में श्री लक्ष्मण राव ने 1912 में इसे खण्डवा से प्रकाशित किया और श्री माखनलाल चतुर्वेदी जी इसके हिंदी संस्करण के संपादक बने। उस समय भी जबकि उनकी उम्र केवल 23 वर्ष की थी, वह कितना अच्छा लिखते थे, इसका प्रमाण यही है कि 'प्रभा' के प्रकाशन से पूर्व जब वह खण्डवा में मात्र अध्यापक थे, उन्होंने नागपुर से प्रकाशित 'हिंदी केसरी' के लिए एक लेख 'बहिष्कार' (बायकाट) लिखा था। श्री माधव राव सप्रे, जो मध्यप्रदेश की पत्रकारिता के पितामह कहे जाते हैं, उससे इतने प्रभावित हुए कि वे उस लेख के लेखक से मिलने के लिए नागपुर से खण्डवा आये। बाद में माखनलाल जी ने शिक्षक का पद त्याग दिया और अगले वर्ष 'प्रभा' का प्रकाशन शुरू कर दिया। उस समय खण्डवा में कोई ऐसा प्रेस नहीं था जहां पर 'प्रभा' की छपाई हो सके, इसलिये पहले वर्ष 'प्रभा' का प्रकाशन पूना के चित्रशाला प्रेस में हुआ। उसी वर्ष कानपुर से श्री गणेशशंकर विद्यार्थी ने साप्ताहिक 'प्रताप' का भी प्रकाशन प्रारंभ किया और माखनलाल जी गणेशजी के संपर्क में आये। 'प्रभा' की छपाई 'प्रताप प्रेस' में होने लगी और 'प्रताप' में 'एक भारतीय आत्मा' के नाम से माखनलाल चतुर्वेदी की कविताएं छपने लगीं। वर्ष 1916 में जब माखनलाल जी लखनऊ कांग्रेस में सम्मिलित होने आये तो वहीं पर उनकी श्री गणेशशंकर विद्यार्थी और श्री मैथिलीशरण गुप्त से भेंट हुई। श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' रेलगाड़ी में माखनलाल जी के साथ ही आये थे परंतु उन्हें मालूम नहीं था कि 'एक भारतीय आत्मा' के नाम से लिखने वाले राष्ट्रीय कवि वही हैं। लेकिन जब उन्होंने कहा कि आज मैं अपने गुरु से भी मिल लिया और उनका तात्पर्य मैथिलीशरण गुप्त से था तो 'नवीन' जी ने तत्काल ताड़कर कहा कि फिर 'एक भारतीय आत्मा' के नाम से आप ही कविताएं लिखते हैं। नवीन जी एंट्रेस पास कर अगले वर्ष कानपुर में गणेशजी के साथ आ गये। माखनलाल जी भी वापस चले गये यद्यपि बाद में गणेशजी के साथ आ गये। परंतु 'नवीन' जी की कविता माखनलाल चतुर्वेदी की कविता से प्रभावित थी और उसने वही तेवर रखा जो माखनलाल जी का था न कि मैथिलीशरण गुप्त वाला। जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द तथा श्री रामधारी सिंह

दिनकर भी माखनलाल जी की धारा के ही कवि बने।

माखनलाल चतुर्वेदी जी अत्यंत निराभिमानी थे। यद्यपि वे उम्र में श्री गणेशशंकर विद्यार्थी से कुछ बड़े थे परंतु वे गणेशजी को अपने से बड़ा मानते थे जबकि गणेशजी उन्हें बड़ा समझते थे और गहरे अंतरद्वंद्व के समय भी माखनलाल जी के सानिध्य में सुख और सुरक्षा अनुभव करते थे। इस तरह यद्यपि माखनलाल जी को मैथिलीशरण गुप्त का शिष्यत्व करने का कोई अवसर प्राप्त नहीं हुआ परंतु 'भारत भारती' ने उनको जो प्रभावित किया तो उन्होंने 'भारत भारती' जैसी राष्ट्रीय कविता को अपना आदर्श बना लिया और इसीलिये वे मैथिलीशरण गुप्त जी को वे अपना गुरू कहते थे। आज का समीक्षक जब इन दोनों कवियों को आमने-सामने रखता है तो वह माखनलाल चतुर्वेदी को श्रेष्ठ कवि पाता है, यद्यपि कीर्ति मैथिलीशरण जी को अधिक प्राप्त हुई। डा. रामविलास शर्मा का मत है, 'मैथिलीशरण जी की काव्य धारा की जन-जागरण में अविस्मरणीय भूमिका है, किंतु वह काव्य धारा उन युवकों को अधिक प्रेरणा नहीं दे सकी जो ब्रिटिश साम्राज्यवाद से उग्र संघर्ष करने के पक्ष में थे : जो राष्ट्रीय नेतृत्व के ढुलमुलपन से असंतुष्ट थे। इन लोगों को माखनलाल जी से प्रेरणा मिली। उन्होंने स्वयं लिखा था—

'अमर राष्ट्र, उद्दण्ड राष्ट्र,
उन्मुक्त राष्ट्र, यह मेरी बोली,
यह सुधार समझौतों वाली,
मुझको भाती नहीं ठिठोली।'

पहले 'प्रभा' प्रताप प्रेस में छपती थी। बाद में गणेशजी ने माखनलाल जी को 'प्रताप' में ही बुला लिया और फिर 'प्रभा' कानपुर में प्रकाशित होने लगी। यह 1919 की बात है। अगले वर्ष जब श्री माधवराव सप्रे और श्री विष्णुदत्त शुक्ल ने जबलपुर से 'प्रताप' की टक्कर का एक साप्ताहिक पत्र निकालना चाहा तो उन्होंने इस कार्य के लिए माखनलाल जी को चुना। उन दिनों महात्मा गांधी को देश में 'कर्मवीर मोहनदास कर्मचंद गांधी' के रूप से पुकारा जाता था। इसलिए पत्र का नाम भी 'कर्मवीर' रखा गया। माखनलाल जी का कार्य क्षेत्र कानपुर के स्थान पर जबलपुर हो गया।

'कर्मवीर' की स्थापना के साथ माखनलाल जी ने जिस पत्रकारिता का श्रीगणेश किया, वह गणेशजी की पत्रकारिता का ही एक स्वरूप था और उसका श्रीगणेश एक ऐसे आंदोलन से प्रारंभ हुआ, जिसे आज की भाषा में 'खोजी पत्रकारिता' कहेंगे। माखनलाल जी को यह पता लगा कि छिंदवाड़ा के पास रतोना में प्रांतीय सरकार ने सेंट्रल प्रोविंसेज़ ट्रेनिंग एण्ड ट्रेडिंग कंपनी को, जो अंग्रेज़ों की कंपनी थी, 843 एकड़ भूमि बरायनाम लगान पर दी है और कंपनी को तीस वर्ष तक चमड़े का व्यापार करने का लाइसेंस दिया है जो तीस वर्ष के लिए और बढ़ाया जा सकता है। इस कारखाने का मुख्य काम कसाईखाना से प्राप्त जानवरों की खाल को पकाकर उनका निर्यात करना था। जहां पर कसाईखाना बनना था उस स्थान का विकास करने और 1 लाख 75 हज़ार रुपये की लागत से आधुनिक कसाईखाना बनाने का प्रबंध सरकार ने अपने हाथो लिया और साथ ही उसी अहाते में एक

बड़ा तालाब और सड़कें बनाने का काम भी। इस योजना की सूचना श्री माखनलाल चतुर्वेदी को सागर के प्रसिद्ध हिंदी लेखक श्री अमीर अली से मिली और उन्होंने नागपुर में संबंधित जानकारी एकत्र कर 'कर्मवीर' के अनेक अंकों में अग्रलेख छापे और यह आंदोलन साल भर चलाया। इसका परिणाम यह हुआ कि सरकार को यह योजना ठप्प करनी पड़ी।

उस समय माखनलाल जी किस प्रकार की शैली का प्रयोग करते थे, इसके लिए 'कर्मवीर' के 17 जून, 1920 के अग्रलेख का एक अंश उद्धृत करते हैं—बीमारी, अकाल, महंगाई और खेती के जानवरों की कमी के समय देश के खेती के जानवर काटने वाली कंपनी को प्रांतीय सरकार द्वारा सहायता देना, एक प्रकार से प्रांतीय प्रजा का गला काटने और उसके धन का दुरुपयोग तथा विश्वासघात करना है। प्रजा का धन उसकी इच्छा के विरुद्ध कभी और कहीं खर्च नहीं होना चाहिए, इसीलिए हम चाहते हैं कि इस विषय पर प्रजा अपना मत साफ-साफ प्रकट करे। यदि वह हिंदू-मूसलमान-ईसाई सभी को धन देकर केवल दूसरों के लिए अपना गोवंश कटवाना चाहती है, तो कह दे कि हम कसाईखानों और चमड़े की कंपनी का स्वागत करते हैं, उसे सहायता देने को तैयार है। परंतु यदि वह अपने खेती के लिए अच्छे बैलों की आवश्यकता समझती है, अपनी संतानों को हृष्ट-पुष्ट तथा बलवान बनाना चाहती है, और चाहती है कि उसकी संतान के समान प्यारे बछड़े, जिन्हें अपने बचपन से प्यार से पाला है, कई बार प्रेम से उन्हें चूमा है, शाम को उनको लौटकर घर आने में देरी होते देख उनका हृदय व्याकुल हुआ है, ऐसे प्यारे बछड़े इन व्यापारी कसाइयों के कारखाने में कटने न पावें तथा वह सरकार की इस नीति की निंदा करें, कठिन विरोध करें और इस कार्य को असंभव कर दें।

'कर्मवीर' 1920 में जब जबलपुर में स्थापित हुआ तो उसने अनेकों प्रसिद्ध पत्रकारों को जन्म दिया, जिनमें दैनिक हिंदुस्तान के भूतपूर्व संपादक श्री मुकुट बिहारी वर्मा अभी भी माखनलाल जी की संपादकीय प्रतिभा का परिचय देने के लिए जीवित हैं। 1925 से जब माखनलाल जी जेल काटकर आ गये थे तो खण्डवा में इसका पुनः प्रकाशन प्रारंभ हुआ। जबलपुर में जब 'कर्मवीर' का प्रकाशन हुआ था। तो उसकी प्रसार संख्या पांच हजार प्रतियां हो गयी थीं लेकिन उसके अधिकांश कार्यकर्ताओं के असहयोग आंदोलन में शामिल होने के कारण 'कर्मवीर' प्रभावित हुआ। खण्डवा में प्रकाशित होने के बाद 'कर्मवीर' ने पुनः अपना स्थान बना लिया था। अक्तूबर, 1933 में 'विशाल भारत' के एक अंक में प्रकाशित एक विज्ञापन में 'कर्मवीर' की उस समय की स्थिति का पता लगता है। उस पर लिखा हुआ था—'मध्यप्रदेश का सबसे पुराना, सबसे प्रतिष्ठित, राष्ट्रीयता का अनन्य उपासक साप्ताहिक पत्र अपनी निर्भीक लेखन-शैली के कारण कितनी बार सरकार का कोपभाजन बन चुका है। देशी रियासतों की प्रजा का पक्ष लेने के कारण अपना जीवन कण्टक में डाल चुका है। निरंतर देश की ओर से लड़ते रहने वाला, संकट के समय नेतृत्व करने वाला 'कर्मवीर' के समान कौन है? यही कारण है कि वह न केवल मध्यप्रदेश, बरार, मध्य-भारत व राजपूताना में ही सबसे अधिक प्रचार कर सका है, वरन सारे भारत में आदर के साथ पढ़ा जाता है।'

स्वाधीनता संग्राम में 'कर्मवीर' की क्या भूमिका थी और 'कर्मवीर' की पत्रकारिता

कितनी प्रखर थी, इसके लिए नेताजी सुभाष चंद्र बोस की वह सम्मति जो उन्होंने हरिपुरा कांग्रेस के अध्यक्ष पद संभालने के बाद 17 फरवरी, 1938 में दी थी, महत्वपूर्ण है। उन्होंने कहा था—'पिछले चौदह वर्षों से 'कर्मवीर' राष्ट्रीय महासभा के झण्डे को ऊंचा रखे है और प्रति सप्ताह हमारे देशवासियों को प्रेरणात्मक संदेशों से अनुप्रेरित करता रहा है।''

माखनलाल चतुर्वेदी की पत्रकारिता का साहित्यिक पक्ष उनकी राष्ट्रीय पत्रकारिता से किसी कदर कम नहीं है। शायद साहित्यिक पत्रकारिता का काल अधिक ही होगा क्योंकि वह 1912 से प्रारंभ होता है और जीवन पर्यंत यानी 30 जनवरी 1968 तक यथावत बना रहा। यह सही है कि उनकी राष्ट्रीय कविता और राष्ट्रीय पत्रकारिता से मेरा परिचय अपने छात्र जीवन और पत्रकारिता के प्रारंभिक दिनों से हुआ था। मैं कानपुर में छात्र रहा और उस समय मेरे ऐसे अनेको मित्र थे, जो माखनलाल चतुर्वेदी के साथ काम कर चुके थे। श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' का जो प्रेम छात्र जीवन में छात्र संघ और कांग्रेस संगठन का कार्यकर्ता होने के नाते मुझे प्राप्त हुआ, वह बाद में दिल्ली में जब तक वे जीवित रहे, बरकरार रहा। लेकिन जब मैं जनवरी 1943 में टीकमगढ़ में पं. बनारसीदास चतुर्वेदी के पास मधुकर कार्यालय में पहुंचा तो मुझे साप्ताहिक कर्मवीर के बराबर दर्शन होते रहे और यह अनुभव होता रहा कि कर्मवीर का उस समय की साहित्यिक दुनिया में क्या स्थान था। कुछ ऐसा हुआ कि मेरे पहुंचने के थोड़े ही दिनों बाद श्री बनारसीदास चतुर्वेदी को यह विचार आया कि श्री गणेशशंकर विद्यार्थी की पुण्यतिथि हिंदी सेवी संस्थाओं और समाचारपत्रों द्वारा मनायी जाये। चूंकि मेरा संबंध साहित्यिक संस्थाओं और हिंदी पत्रकार संगठन से स्थापित हो चुका था, इसलिए उन्होंने मुझे आदेश दिया कि इस संबंध में मैं संगठनों को और पत्रों से लिखा-पढ़ी करूं। इस प्रसंग में मुझे माखनलाल चतुर्वेदी का उत्तर प्राप्त हुआ, जिसमें उन्होंने सूचना दी कि 'कर्मवीर' में संपादकीय टिप्पणी में इस अवसर को स्मरण किया जाये। हिंदी साहित्य सम्मेलन ने इस अवसर पर सहयोग करने से इनकार कर दिया था, जिसके उत्तर में श्री बनारसीदास चतुर्वेदी ने विकेंद्रीकरण और जनपद आंदोलन प्रारंभ किया। उसी वर्ष गर्मियों में हरिद्वार में हिंदी साहित्य सम्मेलन हुआ और उसकी अध्यक्षता की माखनलाल चतुर्वेदी ने। उनका भाषण बड़ा ओजस्वी था और उसने श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर दिया। उस समय उन्होंने अपने भाषण में उस आंदोलन की चर्चा की। उनकी अध्यक्षता में जनपदीय कार्यक्रम आयोजित करने के लिए हिंदी साहित्य सम्मेलन ने एक समिति भी नियुक्त की। यद्यपि वह समिति संयोजक श्री चंद्रबली पाण्डे के दृष्टिकोण के कारण एक बार भी नहीं मिल सकी, परंतु उस मंच से जनपदीय आंदोलन की पुष्टि हो जाने के कारण आगामी वर्षों में हिंदी की विभिन्न बोलियों के विविध क्षेत्रों के बारे में बहुत सी पुस्तकें लिखी गयीं और स्वयं हिंदी साहित्य सम्मेलन ने भी प्रकाशित कीं। इस कारण श्री माखनलाल चतुर्वेदी के साहित्यिक विचारों और साहित्यिक पत्रकारिता को कुछ अधिक निकट से देखने का अवसर मिला।

यही वह समय था जब टीकमगढ़ की श्री वीरेंद्र केशव साहित्य परिषद् ने माखनलाल जी की प्रसिद्ध पुस्तक 'हिम किरीटनी' को दो हज़ार रुपये का देव पुरस्कार प्रदान किया, जो उस समय हिंदी का सबसे बड़ा पुरस्कार था। पुरस्कार की दृष्टि से अथवा साहित्यकार की

दृष्टि से श्री माखनलाल चतुर्वेदी उस समय हिंदी के सर्वोच्च शिखर पर थे। परंतु वे अकेले नहीं रहे, उन्होंने नये-नये कवियों और लेखकों का एक नया परिसर ही तैयार कर दिया।

श्री महावीर प्रसाद द्विवेदी कवियों और लेखकों को किस प्रकार प्रोत्साहन देते थे, उसकी बहुत चर्चा हुई है, परंतु श्री माखनलाल चतुर्वेदी ने किस प्रकार नवोदित कवियों और लेखकों को प्रोत्साहित किया, इसका विवरण साधारणतया उपलब्ध नहीं होता। वर्ष 1933 की बात है जब माखनलाल जी खण्डवा से 'कर्मवीर' का प्रकाशन कर रहे थे। उस समय उन्होंने श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान और श्री लक्ष्मण सिंह चौहान की दो कविताओं को एक साथ जिस प्रकार छापा, उससे दोनों कवियों का व्यक्तिगत दृष्टिकोण और उनकी काव्य शैली और भाव प्रवणता प्रकट हुई। यह वह समय था जब समुद्रा कुमारी चौहान हिंदी की सर्वश्रेष्ठ कवयित्री मानी जाती थीं। आज उन्हें 'झांसी वाली रानी लक्ष्मी बाई' कविता से ही याद किया जाता है। परंतु वे कितनी सरस कविताएं लिखती थीं या लिख सकती थीं, इसकी क्षमता माखनलाल चतुर्वेदी को अपने जबलपुर प्रवास में प्रकट हो चुकी थी और उन्होंने उनके स्वरूप को प्रकट किया। उन्होंने कविता प्रकाशित करने से पहले जो टिप्पणी लिखी, वह महत्वपूर्ण है। उसमें उन्होंने लिखा—'हिंदी भाषा की प्रसिद्ध कवयित्री श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान अपनी कविता के क्षेत्र में जितनी ही भावपूर्ण, वीर, कोमल और समय की संदेशवाहिका हैं, उससे कम उनके जीवन में निर्द्वंद्वता और आनंद नहीं है। उनका काव्य-जीवन अपने आराध्य की आराधना के भावों से मस्ताना, बलवान और उन्नत हैं। श्रीमती सुभद्रा कुमारी जी के पति हिंदी के सुलेखक तथा मध्यप्रांत के निर्भीक जनसेवक ठाकुर लक्ष्मण सिंह चौहान के मनोगगन पर जब काव्य के बादल मंडराते हैं, तब मयूर की तरह उन्हें आनंद नहीं होता। वे काव्य की दुनिया में रोने को एक कला मानते हैं और इस बात पर पछतावा करते हैं कि बिना रोये उन्होंने अपनी ज़िन्दगी क्यों गुजार दी। कदाचित कवि के नाते ही उनका यह पश्चाताप होगा। मजा तो यह है कि ठाकुर साहब ने अपने रुदन की प्रेरणा 'छायावादी कविता पढ़ते-पढ़ते' पाई है। आशा है, निर्णायक इन कविताओं पर अपना निर्णय करेंगे और हंसने एवं रोने के संप्रदाय के भावुक मस्ताने अपनी-अपनी जाति में अपना स्थान पा लेंगे।

इन कविताओं के कुछ अंश इस प्रकार थे—श्रीमती सुभद्रा कुमारी की कविता प्रारंभ होती थी—

> मैंने हंसना सीखा है, मैं नहीं जानती रोना,
> बरसा करता पल-पल पर मेरे जीवन में सोना।

और अंत होता था—

> सुख भरे सुनहले बादल रहते हैं मुझको घेरे,
> विश्वास, प्रेम, साहस हैं, जीवन के साथी मेरे।

श्री लक्ष्मण सिंह चौहान की कविता इस प्रकार प्रारंभ होती थी—

> मैं अभी-अभी समझा हूं

रोना भी एक कला है, मैं उसको सीख रहा हूं।
यह प्रथम अश्रु निकला है, कितना मीठा लगता है।
आंखों का खारा पानी, है स्वच्छ किंतु रच देता।
अनुरंजित करुण कहानी।

उस समय के हिंदी संपादक अपना कर्त्तव्य मानते थे कि नये कवियों और लेखकों को हिंदी जगत में आगे बढ़ाया जाये। माखनलाल जी ने इस दिशा में बड़ा काम किया। अगर आज हम हिंदी साहित्य के क्षेत्र में कुछ बड़े-बड़े नाम देख रहे हैं तो उसके पीछे माखनलाल चतुर्वेदी की ही प्रेरणा थी। उन्होंने इस कवि युगल को प्रकाशित किया और 'विशाल भारत' के संपादक श्री बनारसी दास चतुर्वेदी ने तत्काल इन दोनों कविताओं और टिप्पणी को 'विशाल भारत' के एक अंक में छाप दिया और सुभद्रा कुमारी चौहान के साथ-साथ लक्ष्मण सिंह चौहान भी तत्काल अखिल भारतीय साहित्य जगत में प्रचलित हो गये।

गिरिजा कुमार माथुर, गजानन माधव मुक्तिबोध और प्रभाकर माचवे जैसे अनेक युवा कवि माखनलाल चतुर्वेदी के प्रोत्साहन से दिनोंदिन काव्य क्षेत्र में बढ़ते गये। डा. प्रभाकर माचवे का तो यह कहना है कि उनकी पहली कविता 1934 में 'कर्मवीर' में छपी और इसके बाद माखनलाल जी ने उनसे गद्य-काव्य, रेखा-चित्र, कहानियां, पुस्तक समीक्षाएं आदि अनेक रचनाएं 1934 से लेकर 1948 तक लिखवायीं जब तक वे मध्यप्रदेश में थे। यही कारण था कि वर्ष 1941-42 तक जब डा. प्रभाकर माचवे 23 वर्ष के ही थे और माधव कालेज उज्जैन में अध्यापन करने लगे थे, कहानीकार के रूप में वे प्रसिद्ध हो चुके थे और मैंने उस समय उनसे इलाहाबाद की 'माया' में प्रकाशित होने के लिए कहानियां मंगायी थीं। श्री माथुर ने भी 1936 में 'कर्मवीर' से लिखना प्रारंभ किया। लेकिन यह ख्याति या प्रोत्साहन दो-एक लेखकों तक ही सीमित नहीं था। उनसे प्रभावित होने वाले श्री वीरेंद्र कुमार जैन, श्री भानुकुमार जैन, डा. विनयमोहन शर्मा, श्री ज्वालाप्रसाद ज्योतिषी, डा. जगदीश गुप्त, श्री भवानी प्रसाद तिवारी, डा. शिवमंगल सिंह 'सुमन', श्री सुकुमार पगारे, श्री श्रीकांत जोशी, श्री अनोखे लाल, श्री श्याम परमार न जाने कितने लेखक और कवि हैं जो उनसे प्रभावित हुए। उनमें कुछ तो ऐसे हैं जो प्रतिष्ठा में उनसे कम नहीं रहे, जैसे, पं. बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' और श्रीमती महादेवी वर्मा। 'प्रभा' हो या 'प्रताप', जब माखनलाल जी कानपुर में थे तो उसका साहित्य अंश उन्हीं की देखरेख में था।

उन्होंने अपने को 'एक भारतीय आत्मा' कहा। वर्ष 1912 से ही मैथिलीशरण जी को अपना गुरू मान लिया था और कविता में भी उनको स्मरण किया था। मैथिलीशरण जी की 'मातृभूमि' तथा 'भूमि भाग्य सा भारतवर्ष', सबसे पहले 'प्रभा' में प्रकाशित हुई। अलीगढ़ के प्रसिद्ध कवि श्री गोकुलचंद शर्मा 'परंतप' की रचनाएं भी 'प्रभा' में छपीं और सुभद्रा कुमारी चौहान की रचनाएं 'वीरों का कैसा हो बसंत' और 'झांसी की रानी' 'कर्मवीर' में छपीं।

माखनलाल जी चतुर्वेदी के लिए हिंदी की उन्नति राष्ट्रीयता की एक आवश्यक शर्त बन गयी थी और उन्होंने यह विचार उस समय बना लिये थे जबकि महात्मा गांधी ने

राष्ट्रभाषा के प्रचार का काम उठाया भी नहीं था। उन्होंने 1913 में 'प्रभा' के संपादकीय में लिखा था—'राष्ट्रभाषा की गौरवरक्षा के हेतु अब हमें बैठे मुंह न देखना चाहिए। व्यर्थ के झगड़ों से हानि के सिवा लाभ नहीं है। अतएव उन्हें छोड़कर यह सोचना चाहिए कि इस संबंध में वर्ष में कितना कार्य होता है। हम साहित्य सम्मेलन से प्रार्थना करते हैं कि वह एक ऐसी रिपोर्ट प्रतिवर्ष पेश करे कि अमुक प्रदेश ने राष्ट्रभाषा की आवश्यकता को इतने ग्रंथों से पूर्ण किया। इस प्रकार कार्य होने से प्रतिवर्ष यह तो विदित हो जायेगा कि राष्ट्रभाषा के कर्मवीर पुत्र कौन है और अकर्मण्य कौन?'

माखनलाल चतुर्वेदी ने 'प्रभा' निकालते समय ही यह तय कर लिया था कि एक साहित्यिक पत्रिका की क्या भूमिका होनी चाहिए और वे उसी पर चलते रहे। उन्होंने 1915 में लिखा और वह टिप्पणी आज भी सटीक है—'हिंदी भाषा का मासिक साहित्य एक बेढंगे और गये-बीते ज़माने की चाल चल रहा है। यहां बरसाती कीड़ों की तरह पत्र पैदा होते हैं। फिर यह आश्चर्य नहीं कि वे शीघ्र ही क्यों मर जाते हैं। यूरोप में हरएक पत्र अपनी निश्चित नीति रखता है। हिंदी वालों को इस मार्ग में नीति की गंध नहीं लगी। यहां वाले जी में आते ही, हमारे समान, चार पन्ने निकाल बैठने वाले हुआ करते हैं। उनका न कोई आदर्श और उद्देश्य होता है, न दायित्व। हमारा अनुरोध है कि तुम अन्यायों, अत्याचारों, और भूलों के संबंध में जो कुछ लिखना है वह दबकर नहीं, खुलकर लिखो। तुम्हारे पत्रों के संपादकों की विद्वत्ता का ज्वर तभी शायद उतरेगा।

माखनलाल जी की कवियों के प्रति सहानुभूति उन्हीं स्थानों के कवियों तक सीमित नहीं थी, जहां वे रह रहे थे, खण्डवा हो, जबलपुर हो या कानपुर। उनकी एक कविता ने बरेली स्थित एक कवि श्री निरंकारदेव 'सेवक' को प्रेरणा दी और उन्होंने भी एक कविता लिखी तथा एक पत्र भी लिखा, जिसमें उन्हें बरेली आने का निमंत्रण दिया था। इसके उत्तर में उन्होंने एक बड़ा मार्मिक पत्र लिखा तथा कविताएं लिखने का आमंत्रण किया। उसकी कुछ पंक्तियां दृष्टव्य हैं—'यदि मैं भूलता नहीं हूं तो शायद आप विहग कुमार हैं। हैं न? तो भई इतना मोह नहीं बढ़ाया करते विहगकुमार। पहाड़ दूर से जितना सुहावना होता है, निकट से उतना विद्रूप। विहगों से यह बात छुपी नहीं, क्योंकि उन्हें तो वस्तु के ऊंचे से देखने का अभ्यास होता है। वे मनोरम से मनोरम देवत्व के वृक्ष की डाली की अपेक्षा अपने पंखों की हिलन-डुलन पर अधिक भरोसा करते हैं।

बरेली आने की बात अभी अलग रखिए। घर आ जाता हूं, तब बाहर निकलने की तबीयत नहीं होती। मित्रों पर बोझीला होना कठोर दण्ड-सा प्रतीत होता है। हां, अब पत्र लिख सकते हैं। और लिख सकते हैं मेरे पास, अपनी कविता। उस मीठी रिश्त पर तो मैं चिट्ठी के जवाब भी कभी-कभी दे दूंगा। और अवकाश होने पर, अपने कार्य की बिना हानि किये, कभी किसी समय यहां खण्डवा भी आ सकते हैं। आपकी विहगकुमार कविता, आप ही से सुनने की तबीयत रहती है।

30 मार्च, 1927 को भरतपुर में हुए हिंदी संपादक सम्मेलन की अध्यक्षता करते हुए उन्होंने कहा था—'युग की घटनाओं के नियंत्रक, संचालक, आलोचक और लेखक को पत्रकार कहेंगे। नवीन युग का निर्माण करना भी पत्रकार की जिम्मेदारी हैं।'

'हम अपने समाचारपत्रों को ऐसा बना दें कि जिससे हम पर ज्ञान की कमी का लांछन न लग जाये।

'पत्र संपादक की दृष्टि परिणाम पर सतत लगी रहनी चाहिए। वह समस्त देश के सामने उत्तरदायी होता है।

हिंदी संसार और हिंदी-प्रांतों के नेतृत्व, रक्षा, पोषण और नियमन की भावना का निर्वाह आवश्यक है। हम हिंदी-संसार को अविभाज्य मानें। अन्यान्य प्रांतों में ही नहीं ब्रह्म प्रदेश में उपनिवेशों में और विदेशों में जो भाई हिंदी पत्र निकाल रहे हैं, उन पर हमारी नज़र होनी चाहिए और हमसे उन्हें प्रोत्साहन मिलना चाहिए।'

वे इन्हीं आदर्शों के लिए जिये थे। 'कर्मवीर' अपने समय का अत्यंत लोकप्रिय और प्रतिष्ठित पत्र था परंतु स्वाधीनता के बाद धीरे-धीरे तिरोहित हो गया, क्यों, इसलिए कि उसने व्यापारिकता के आधुनिक मापदण्ड स्वीकार नहीं किये। माखनलाल जी चतुर्वेदी ने अपने लिये एक आचारसंहिता तैयार की थी जो इस प्रकार थी—

(क) 'कर्मवीर' में, संपादन और 'कर्मवीर' परिवार की कठिनाइयों का उल्लेख न करना।
(ख) कभी धन के लिए अपील न करना।
(ग) ग्राहक संख्या बढ़ाने के लिए 'कर्मवीर' के कालमों में न लिखना।
(घ) क्रांतिकारी पार्टी के खिलाफ गांधीजी के वक्तव्य छापने से इंकार करना।
(च) सनसनी पूर्ण खबरें कभी न छापना।
(छ) विज्ञापन जुटाने के लिए किसी आदमी की नियुक्ति न करना और न विज्ञापन वाली पार्टी के पास जाना।

ये आदर्श थे माखनलाल चतुर्वेदी जी की पत्रकारिता के। वे गणेशशंकर विद्यार्थी के सहयोगी थे, भले ही गणेशजी की तरह उन्हें अपना जीवन बलिदान करने का अवसर न मिला हो, परंतु उनके सिद्धांतों पर वे सारे जीवन चले और उन्होंने एक ऐसा प्रभामण्डल बनाया, जिसे न केवल हिंदी की राष्ट्रीय कविता प्रेरणा पाई थी बल्कि जिसने राष्ट्रीय पत्रकारिता के लिए अनोखे मानदंड स्थापित किये। □

‘दादा’ माखनलाल चतुर्वेदी

डॉ. प्रभाकर माचवे

1934 में खंडवा में माखनलाल चतुर्वेदी ‘एक भारतीय आत्मा’ का साप्ताहिक ‘कर्मवीर’ का कार्यालय और आवास एक ही स्थान था। मध्यप्रदेश की उगती हुई प्रतिभाओं का वह एक जमघट था। वीरेंद्र कुमार जैन, गजानन माधव मुक्तिबोध, प्रभागचंद्र शर्मा आदि की आरंभिक कविताएं माखनलाल जी ने ही छापीं। मेरी पहली कविता भी उन्होंने ही ‘कर्मवीर’ में प्रकाशित की। कई पुस्तकों की समीक्षाएं वे हमसे करवाते। ‘गोर्की के अवसर पर’ लेख तब ‘कर्मवीर’ में मैंने लिखा। हरिकृष्ण ‘प्रेमी’ विनयमोहन शर्मा, रामवृक्ष बेनीपुरी जैसे लेखक माखनलाल जी के सहायक संपादक थे। इंदौर में तब हम क्रिश्चियन कालेज में पढ़ते थे, वीरेंद्र और मुक्तिबोध होलकर कालेज में। खंडवा में तुलसी जयंती पर कवि सम्मेलन में हमें बुलाया जाता। तब वीरेंद्र कुमार जैन ‘ताजमहल के प्रति’ कविता गा-गाकर पढ़ते थे, मुक्तिबोध भी गीत लिखते थे, मैं जरूर कुछ गद्य काव्य जैसी, कुछ रूपक कथा जैसी रचनाएं भी लिखता था। पहला रेखाचित्र ‘दानिश’ सिनेमाघर में मूंगफली बेचने वाले पर लिखा था। जो कर्मवीर में छपा।

‘दादा’ जैसा कि सब लोग उन्हें कहते थे, नवयुवकों की काव्य प्रतिभा के अंकुर की एक कुशल ‘वनमाली’ की तरह साज-संभाल करते। अपने पत्रों में ‘माखनलाल’ शब्द आद्याक्षर ‘मां’ लिखा करते। और किसी वात्सल्यभरी माता की तरह इन नौजवानों को लाड़ से खिलाते-डांटते, फटकारते, दुलारते और सिर चढ़ा लेते थे। देखिए उनकी कविता ‘मुझको कहते हैं माता’। वे मानते थे कि प्रतिभा एक तंत्री या वीणा की तरह है, जिसकी साज-संभाल जरूरी है। गोद में रखकर उसके कान उमेठना भी जरूरी है, तार कसना भी जरूरी है। तब की बातें याद आती हैं कि इंदौर क्रिश्चियन कालेज के मेरे कमरे में तब मैं बी.ए. प्रथम वर्ष का छात्र था, वीरेंद्र और मुक्तिबोध नयी नयी हिंदी की कविता पुस्तकें ले आते। और बड़ी तन्मयता से जिनके परायण हम लोग करते। वे कविता पुस्तकें थीं—मैथलीशरण गुप्त की ‘यशोधरा’, महादेवी की ‘रश्मि’, पंत की गुंजन, हरिकृष्ण प्रेमी की ‘आंखों में’। तब तक अज्ञेय’ की कोई पुस्तक नहीं छपी थी। कुल मिलाकर तब तक न कविता में मार्क्सवाद था, न गांधीवाद। राष्ट्रीय कविता की धारा में एक ओर सीधी सपाट संग्रामातुर पद्य रचना थी, जैसे सुभद्राकुमारी चौहान की ‘खूब लड़ी मरदानी वह तो झांसी वाली रानी थी’, या बालकृष्ण शर्मा ‘नवीन’ का ‘हम अनिकेतन’ छायावाद का मध्याह्न था। ‘निराला’ की ‘तुम और मैं’ कंठस्थ थी। रामनरेश त्रिपाठी के कविता ‘कौमुदी’ का सातवां भाग (बांग्ला) हम लोगों ने पढ़ा। रामवृक्ष बेनीपुरी ने नज़रूल इस्लाम की ‘विद्रोही’ सुनाई। हमने उसका मराठी अनुवाद किया जो 1938 में पूना के तिलक महाराज के ‘केसरी’ कार्यालय से छपने वाले ‘सहस्राब्दि’ में छपा। उसी वर्ष ‘विद्रोही’ का डॉ. रामविलास शर्मा द्वारा किया गया अनुवाद पंत के ‘रूपाभ’ में छपा।

माखनलाल चतुर्वेदी की कविता में हमें एक साथ तीन रंगों की त्रिवेणी मिल गई : व्यक्तिगत प्रेम कविता, त्याग बलिदान की देश भक्तिपूर्ण कविता और रहस्यवाद की पुट वाली अध्यात्म छटा की कविता। मानों कविता यहां 'एक', 'भारतीय' और 'आत्मा' एक साथ बन गई। माखनलाल जी के मुंह से हमने कोमल ताक 'लिरिक' सुने, जैसे 'आज छियाछी हो अंतर में, जोड़ी टूट गई,' और 'कैदी और कोकिला' और 'मोमबत्तियों का मरण त्यौहार' भी सुना। उनकी काली रजनी भारत की अमावस्या भी थी और सूफियों की 'डार्कनाइट आफ दि सोल' भी, जिसमें से गुजर कर आत्मा सात मुकाम पार कर के 'मारीफत' तक पहुंचती थी, 'कैदी और कोकिला' में 'तू भी काली, यह रजनी भी काली' में हमें संत नामदेव की मराठी 'विराणी' (विराहिणी) की प्रतिगूंज सुनाई दी—'रात काली है, गगरी भी काली है, जमुना का जल भी काला है, आंखों में काजल भी काला है, गले में मणिमाला भी काली है और मेरे मन की मूर्ति भी काली-सांवली ही है मां ?

एक दिन सवेरे दाढ़ी बनाते हुए, माखनलाल जी ने एक शेर सुनाया था, जो आज भी याद आता है :

कहीं आप न अपनी सूरत पै आशिक हो जाएं
आईना मुकाबिल से चुप कैसे हटा दे कोई ।।

वीरेंद्र, मुक्तिबोध, प्रभाग, नेमिचंद्र जैन (मरानीपुर और उबरुआसागर में हमारे बड़े भाई स्टेशन मास्टर थे, वहां एक कोयले के ठेकेदार के पुत्र हमसे छोटे थे आयु में और पढ़ाई में भी) इन सब की 'नारासिक्षिस्ट' उम्र थी। लखनऊ से लौटकर शाजापुर के ही बड़े नफासत पसंद नव युवक कवि गिरिजाकुमार माथुर अपना संग्रह 'मंजीर' (जिसकी भूमिका 'निराला' ने लिखी थी) लेकर आए और बड़े मीठे सुर में गीत सुनाने लगे तो हमें लगा कि छायावाद रहस्यवाद और राष्ट्रीयता समाजवाद का स्वर मानो एक ही कविता के दो पहलू हैं। माखनलाल जी ने बारबार लिखा है कि चांदनी रात में अकेले में जिस वेणु पर कोमल गीत गुनगुनाता हूं वही भोर होने पर डंका बजाने के लिए डंडी की तरह काम में लाता हूं—'वेणु लो, गूंजे धरा।

तब हम लोगों के मन में बच्चन की तरह प्रश्न नहीं था कि 'गाऊं मैं युग की वाणी या गाऊं में युग-युग की वाणी?' अंतर्मुखी और बहिर्मुखी कविता का द्वंद्व तो मार्क्सवाद ने हमारे मन में भरा। 1934 में बंबई में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की पहली बैठक में मैं एक विद्यार्थी कार्यकर्त्ता की तरह गया था। मराठी के प्रयोगशील लेखक पत्रकार प्र.म. देशपांडे की तब 'निर्माल्य-माला' नामक गज़लों की पुस्तक छपी थी, जिसके अंतिम पृष्ठ पर 'गालिब' की एक गजल भी दी गई थी। हमने उनसे भोले भाव से पूछा था—'आप ऐसी प्रणयोत्कट कविता लिखते हैं। और राजनीति में समाजवादी क्रांति का कार्य करते हैं। क्या इसमें परस्पर विरोध नहीं है? वे बोले—बिल्कुल नहीं। महान क्रांति भी उत्कट प्रेम में से ही पैदा होती है।'

तब वीरेंद्र कुमार जैन 'आत्म परिचय' की कहानियो लिख रहे थे। ग.मा. मुक्तिबोध ग्वालियर से घर से भागकर शांताबाई के प्रेम में आकर मेरे उज्जैन में एक कमरे में छिपकर रहते थे। माइकोवस्की का नाम तब हमने पहली बार सुना। माधन वाचनालय, उज्जैन से

रेने फुलप मिलर का' माईड एंड फेस बोल्शेविजम' मैं ले आया। मुक्तिबोध ने पढ़ा। एक अध्याय था 'कविता का कारखाना'। मुक्तिबोध विद्रूप हंसे तो उन दिनों हम लोग अन्य भाषाओं की कविताएं भी पढ़ते थे। यह सब व्यापक और उदार दृष्टिकोण हमने माखनलाल जी से सीखा था। माखनलाल जी ने सबसे पहले 'अफ्रीका' पर, भारत से सुदूर द्वीपों में बंधुआ मजदूर बन कर गए' कुली पर कविता लिखी थी।

माखनलाल के खंडवे के ग्रंथ संग्रहालय में केवल पत्रकारों के उपयोग के राजनीति, इतिहास, अर्थशास्त्र के संदर्भ ग्रंथ ही नहीं होते थे। रवींद्र नाथ की 'गीतांजलि', ईरान के सूफी कवि, स्वामी रामतीर्थ की 'राम-वर्षा, मराठी 'वाग्वैजयंती' आदि होती थी। मुझसे वे पूछते रहते—'मराठी में नया क्या छपा है?' तब 'माधव ज्यूलियन' (मराठी फारसी-संस्कृत के पंडित कवि डा. मा. त्रि. पटवर्धन) की 'गज्जलांजली' छपी थी। उसकी ये पंक्तियां मैंने सुनाई—

असली सुरई जरी इराणी
आहे यातिल हरा मराठी।

(इसकी सुराही ईरानी हो, शराब तो मराठी है) इस पर 'दादा' खूब हंसे और कवियों की मैं नहीं जानता, पर 'दादा' से हमने पांच काव्यानुशासन सीखे।

पहली बात, हर चीज जो हम लिखते हैं, वह सब छपने योग्य नहीं होती। 'दादा' ने स्वयम् अपना पहला कविता संग्रह बावन वर्ष की आयु में प्रकाशित किया। उनकी कई उत्तम कविताएं संग्रहाकार आई ही नहीं। मरणोपरांत पंद्रह बरस बाद दस खंडों में रचना छपी। दादा कहते थे कि यह 'काता और ले भागे' गलत है। एक कुशल माली जैसे अपने ही लगाए पौधे में फूल अच्छे आएं इसलिए अनावश्यक पत्तियां काट डालता है, वैसे ही कवि को अपनी रचना दुबारा पढ़नी चाहिए। 'दादा' को हमने अपनी कई आरंभिक रचनाएं सुनाई। उन्हें अच्छी नहीं लगी, हमने फाड़कर फेंक दी।

दूसरी बात प्रकाशन के लिये अधीरता उचित नहीं। माखनलाल जी ने बताया कि योगी अरविंद घोष ने अपनी फ्यूचर पोयट्री में बाल्मीकि का 'कवि' के लिये दिया एक विशेषण कितना सार्थक है। वह है 'धीर'। उसका अर्थ है जो 'धी' में रता होता है। उसका व्रत धियोयोनः प्रचोदयात वाला गायत्री मंत्र है। इसे माखनलाल जी कलाकार का ब्रहमचर्य कहते थे।

तीसरी बात जो हमने उनसे सीखी, जो 'साहित्य देवता' वाले उनके गद्यकाव्य उनके मुंह से सुनकर जाना कि कविता की निर्मिति माता की प्रसव पीड़ा से कम नहीं होती। भाव को हृदय में उसी तरह संजोना, पालना और बड़ा करना होता है जैसे बीज मिट्टी में गलकर अंकुर बनता है। उस 'सृष्टि' की प्रक्रिया जिंदगी की 'कसक-मुसुक' के सारे अनुभव संसार का सार होती है। गुणचंद्र ने इसीलिए 'सुख दुःख मिश्रित' भावदशा को रस दशा तक परिपक्व करने की बात कही है।

चौथा अनुशासन दादा ने हमें सिखाया कि नाम की भूख सच्चे कवि की सबसे बड़ी दुश्मन होती है। 'दादा' कई रचनाकारों को अपने उपनाम देकर छापते थे। कोई 'विजय

कुमार' तो कोई 'क्रांतिकुमार'। हमारा नाम उन्होंने 'विंध्य-कुमार' रखा था। इसी भय से 'कर्मवीर' में बहुत सी चीजें छपीं। कीर्ति कविता की अनुगामिनी होती है। उसकी सहागामिनी भी हो सकती है। परंतु आज के नये कवियों की तरह अनुगामिनी नहीं। वह जो मोहिनी की तरह मृग-मरीचिका की माया दिखाकर कवि को पीछे-पीछे भागने को बाध्य करती है, वह सच्ची अंतः प्रेरणा नहीं, केवल क्षणिक 'मंद यश प्रार्थिनी' प्रतिभा है। कविता वक्ती, मौसमी, प्रासंगिक प्रेरणा से शायद लिखी जाए, परंतु वह निरी पत्रकारिता नहीं है। निरा गद्य नहीं है।

इसलिए सबसे बड़ी चीज जो माखनलाल जी से हम सीखे वह यह बात है कि कविता में वक्तृता या भाषण कला की सीमा और सामर्थ्य है। माखनलाल जी एक उत्कृष्ट वक्ता थे। गांधी जी ने उनके लिए ठीक ही कहा था—'हम लोग तो लेक्चर देते हैं, माखनलाल कविता बोलते हैं।' मैंने मदनमोहन मालवीय को सुना है। उनके बाद दूसरा मंत्र मुग्ध कर देने वाला हिंदी वक्ता कोई था तो माखनलाल। उनके बाद हजारीप्रसाद या महादेवी याद आते हैं। माखनलाल की भाषण शैली में माधुर्य, ओज और प्रसाद का मार्मिक संगम था। जन-जन तक पहुंचने वाली उनकी वाणी दूर से या ऊपर से नहीं बोलती थी, वह अभ्यंतर तक पैठ जाती थी। वह पता नहीं कैसे और कब रस सिक्त कर देती थी। वह वक्तृता ऐसी रागिणी की तरह थी जो स्वर यंत्र से निकल कर अंतरिक्ष तक, अपना आरोह अवरोह अनजाने में आकर्षण के अलग जाल बुनती चली जाती थी। मधुमक्खी अपना छत्ता कैसे बनाती है? बया अपना घोंसला कैसे बनाती है? वह एक विक्षुब्ध रचना संसार होता है? वह मैथिलीशरण वाला मास्टरी या मुदर्रिसी का मसनवी वाला मुहावरा नहीं था। वह दिनकर का आतंकित करने वाला 'रेटरिक' नहीं था, न सुमन-नरेंद्र शर्मा वाला 'आल्हा' जैसा आख्यात्मक आलाप-विस्तार। माखनलाल की कविता और भाषण में 'वागर्थ' के 'पार्वती परमेश्वर' महामिलन का, अमूर्त और मूर्त का विलक्षण संश्लेष था।

यह काव्यानुशासन तो सीखा ही। परंतु माखनलाल जी के व्यक्तित्व में और भी कई खूबियां थीं, तो आज बहुत मानी खेज़ लगती हैं। नये-नये लोगों को प्रोत्साहन देना। अपने से उम्र में छोटे लोगों पर एकांत विश्वास। उन्होंने मुझसे उसे छोटी उम्र में 'कृष्णायन' और 'कुरुक्षेत्र' की रिव्यू करवाई। और जस की तस छापी। मेरे लेखन में तब बहुत तीखापन और विवादास्पद बातें होती थीं। परंतु संपादक माखनलाल ने हमें पूरी विचार स्वतंत्रता दी।

दादा स्वयं अनेक विषयों का अध्ययन करते, और अपने शिष्यों से भी कराते। 'ईरान के सूफी कवि' (संपादक-बांके बिहारी, प्रकाशन किताबघर) मुझे उन्होंने पढ़ने को ही नहीं दी, सप्रेम उपहार दे दी। इसमें खैयाम जामी, निजामी शब्दसतरी रुपी आदि की मूल फारसी कविताएं देवनागरी अक्षरों में और नीचे हिंदी अनुवाद दिए हैं, मैंने पढ़ी। 1935 में मेरा एक लेख क्रिश्चियन कालेज पत्रिका में छपा। 'श्री मिस्टिक्स कबीर, टैगोर, खय्याम'। 'दादा' के संपर्क के कारण ही तुलनात्मक साहित्य में हमारी रुचि बढ़ी।

माखनलाल जी की टोली के साथ ही मैंने दिल्ली का हिंदी साहित्य सम्मेलन, बंबई का कांग्रेस अधिवेशन, इलाहाबाद में हिंदुस्तानी एकेडेमी का अधिवेशन, 1934 से 1936 के बीच देखा। तब मेरे पास यात्रा को तो दूर पढ़ाई के खर्चे के लिए भी पैसे नहीं थे।

दादा ने ही हम सब लोगों का प्रवास व्यय किया। इन यात्राओं के कारण हमारा संपर्क प्रेमचंद और जैनेंद्र और कई कई साहित्यकारों के साथ तब सबसे बढ़ा।

माखनलाल जी केवल कांग्रेस के तपे हुए राष्ट्रीय नेता नहीं थे। केवल मध्यप्रदेश के नहीं थे केवल चतुर्वेदी उपजाति के नहीं थे। केवल कुछ युवकों के 'दादा' गुरु नहीं थे। तमिल या बंगला के वे कवि होते तो अब तक शताब्दी वर्ष में उनके नाम की कई चीजें अन्य प्रदेशों में विश्वविद्यालयों में बहाल होती, उनकी प्रतिमाएं लग जाती बड़े-बड़े महानगरों में। सुब्रहयमण्य भारती की आदमकद ब्रौंज प्रतिमा मद्रास के मुख्यमंत्री ने बंगाल के मुख्यमंत्री ज्योति बसु को शताब्दी वर्ष में दी, जो कलकत्ता में लगी है। भाई वीरसिंह के नाम से अन्य प्रदेशों में यूनिवर्सिटियों में अर्स हैं। दुर्भाग्य से दादा का ऐसा कोई बड़ा स्मारक नहीं बना। 'एक भारतीय आत्मा' संस्थाओं में नहीं बंधती। वह 'पांव-पांव, चलकर, हिमतरंगिणी में विलीन हो जाती है। भोपाल में उनके नाम से राष्ट्रीय पत्रकारिता विश्वविद्यालय बन रहा है। जिससे बड़ी आशाएं हैं। परंतु उतना ही काफी नहीं है। सब भाषाओं में उनकी चुनी हुई रचनाओं के अनुवाद भी छपे। उनकी स्मृति को शत शत अभिवादन। □

भारतीय कांव्यात्मा का विराट फलक

प्रभाकर श्रोत्रिय

माखनलाल चतुर्वेदी की कविता खड़ीबोली में रस की पहली फुहार थी। शायद सबसे पहले वे ही यह भ्रम तोड़ सकीं कि खड़ी बोली में ब्रज जैसी मिठास नहीं आ सकती। इसे आप समकालीन आलोचना की भूल भी कह सकते हैं और स्वयं माखनलाल जी की उन्मुक्त सृजन-चेतना परिणाम भी कि न तो वे द्विवेदी युग में शुष्क आदर्शवाद, स्थूल भाषा और इतिवृत्तपरकता का जवाब माने गए, न छायावाद-युग के प्रणेता—जब कि इन दोनों ही रूपों में बाद में उन्हें पहचाना गया। कुछ ने तो इस बात पर आश्चर्य और दुःख भी व्यक्त किया कि द्विवेदी युग में ही मार्मिक राष्ट्रीय कविताएं लिखने वाले माखनलाल जी की भयंकर उपेक्षा की गई। लेकिन यह सब बहुत बाद में कहा गया, उस समय तो उन्हें लेकर निरी खामोशी थी। लेकिन सवाल यह भी है कि क्या इसमें स्वयं कवि की अपने बारे में उदासीनता और लापरवाही का कम योगदान है? जिस कवि ने 1904 में लिखना प्रारंभ कर दिया हो; जिसकी कविता में 1913-14 में धार आने लगी हो और जो सतत कविता, पत्रकारिता और राष्ट्रीय संग्राम के फलक पर चमचमाता रहा हो; उसका पहला कविता संग्रह (हिम किरीटिनी 1943) यदि सृजन के तीन-तीन युग बीत जाने के बाद प्रकाशित हो तो क्या इसका सारा अपराध आप मूल्यांकन के मत्थे मढ़ना चाहेंगे? कवि की बीमारी से चिंतित होकर अगर गणेशशंकर विद्यार्थी 1918 में उनका नाटक ''कृष्णार्जुन युद्ध '' न छपवा देते तो 1943 तक माखनलाल चतुर्वेदी की एक भी संपूर्ण कृति का मुंह देख पाना हिंदी साहित्य को नसीब नहीं होता। इस विलंब को आप प्रकाशन-क्षेत्र की लापरवाही और उपेक्षा भी कैसे कहेंगे, जबकि इसी बीच अनेक महत्वपूर्ण और महत्वहीन कवियों के संग्रह धड़ल्ले से बाज़ार में आ रहे थे। फिर, माखनलालजी भी प्रकाशन-व्यवसाय के लिए कम कीमती न थे, वे स्वयं इतने प्रभावशाली और समर्थ थे कि खुद की तो क्या अनेक रचनाकारों की कृतियां छपवा सकते थे—और छपवाई भी थीं। हरिकृष्ण प्रेमी ने 'आज के हिंदी कवि' (मा.च.) की भूमिका में लिखा है कि—'दुनियादारी के लिहाज़ से हिंदी साहित्यकारों में तीन प्राणी महामूर्ख रहे—एक मुंशी प्रेमचंद, दूसरे पंडित माखनलाल चतुर्वेदी और तीसरा मैं।' मेरे विचार से (जहां तक प्रकाशन का संबंध है) प्रेमी जी ने इस मामले में अपने को और प्रेमचंद को नाहक घसीटा! स्वयं उन्होंने और प्रेमचंद ने जब जो लिखा वह यथा समय पुस्तक रूप में प्रकाशित हुआ; जबकि माखनलाल जी इस लिहाज़ से (उनके शब्दों में) वाकई महामूर्ख रहे। मूर्ख रहे या अत्यधिक आत्मविश्वास से भरे हुए, लापरवाह या आत्म-बलिदानी-अभी इन बातों का बारीकी से परीक्षण करना बाकी है।

कभी-कभी इतिहास की या स्वयं की भूलें रचनाकार के लिए वरदान हो जाती हैं। फ़र्ज कीजिए कि तब अगर माखनलाल जी को छायावाद का प्रवर्तक या प्रेरक मान लिया गया होता और वे सचमुच उस दिशा में मुड़ जाते या आलोचना के द्वारा उससे नत्थी कर

दिए जाते तो क्या हम चार-चार युगों में छलकते उनके सर्जक व्यक्तित्व को देख पाते? और अगर द्विवेदी युग की राष्ट्रीयता में (एक अलग व्यक्तित्व के रूप में ही सही) उन्हें रेखांकित कर दिया जाता तो क्या उनकी रूमानियत, रहस्यपरकता, मुक्त भाषिक लालित्य और स्वच्छंदता पर उस युग में पहरा नहीं बिठा दिया जाता? दोनों ही धाराओं में अपने समय में 'बद्ध' न होने के कारण वे साहित्यिक आसमान नापते रहे। इतिहास ने उन्हें अपने में न ठहरा कर प्रगति-प्रयोग युग तक और नवगीत परंपरा में भी उनके अवदान को बिखरते रहने में मदद ही पहुंचाई। मुझे लगता है कि स्वयं कवि की और इतिहास की इस 'मूर्खता' पर हमें खुश होना चाहिए।

किसी भी धारा में न बंधने और हमेशा अतिक्रमण का अधिकार अपने पास सुरक्षित रखने वाले रचनाकार को हानियां और लाभ दोनों होते हैं। हर धारा को अतिक्रमित करने के कारण माखनलाल जी हमेशा आलोचना को असमंजस में डाले रहे। मुख्य धारा से विरल रहने पर कई बार अतिविशिष्ट रचनाकार भी तात्कालिक रूप से अनपहचान का अंधेरा भोगता है, केशव के साथ भक्तिकाल में और माखनलाल जी के साथ आधुनिक काल में यही हुआ (यह बात केवल एक संदर्भ में कही जा रही है, इसे कृपया इससे ज्यादा न खींचें।) परंतु तात्कालिक अवहेलना से लेखक को यह लाभ होता है कि उसका मूल्यांकन अपेक्षाकृत अगले विकसित युग में, अवांछित लगावों से परे, निरपेक्ष और स्पष्ट रूप में हो पाता है। मुझे लगता है कि माखनलाल जी के संदर्भ में 'यह' समय अब शुरू हुआ है।

आचार्य विनयमोहन शर्मा ने अवंतिका के काव्यालोचनांक में लिखते हुए 'अंतर की अनुभूति' और 'उसे प्रकाशित करने की वक्रशैली' को प्रसाद से भी पहले माखनलालजी में रेखांकित करते हुए उन्हें 'छायावादी प्रवृत्ति का सूत्रपात' करने और उसे 'पुरस्सर करने' का श्रेय दिया था। फिर आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने उनकी कविता को 'छायावाद की वैयक्तिकता प्रधान काव्य-भूमि तैयार करने वाली कहा। सुमित्रानंदन पंत ने छायावाद का पुनर्मूल्यांकन करते हुए माखनलाल जी को उससे इसलिए जोड़ा कि उनकी कविताओं में 'रहस्य भावना, सूक्ष्म-अभिव्यंजना' प्रकृति का जीवंत स्पर्श, हृदय का तारूण्य और सौंदर्यमूलक स्वीकृति है।' सगुण-प्रेम को छायावाद के ढांचे में बैठता न पाकर उन्होंने कहा कि 'सगुण के प्रति प्रेम होने पर भी उनका निराकार के प्रति आकर्षण है।'

ये सब बातें अपनी जगह सही हो सकती हैं, और यह भी सच है कि माखनलाल जी के समृद्ध काव्य में अनेक युगों के लक्षण और प्रेरक तत्व विद्यमान हैं; जाने-अनजाने उनसे कई परवर्ती पीढ़ियों ने प्रेरणा ली है। न सिर्फ राष्ट्रीय काव्य-धारा और छायावाद बल्कि प्रगति और प्रयोग युग में भी उनकी सर्जक चेतना जाग्रत रही है। उनके भीतर अक्षुण्ण ऊर्जा और अनवरत गतिशीलता थी। खड़ी बोली के तो वे पहले गीतकार थे जो लगातार पांच दशकों को लांघते हुए गीत की नई भूमि पर खड़े हुए। फिर भी उन्हें किसी धारा से नत्थी करना या उसके प्रेरक और प्रवर्तक का दर्ज़ा देना उनकी सतत प्रवहमान काव्य-चेतना का अवमूल्यन करना है।

माखनलाल जी में छायावाद के जिन तत्वों को गिनाया गया है, एक तो वे उनमें छायावाद की भांति मौजूद नहीं थे। दूसरी बात यह है कि जिन कवियों में छायावाद परिणति

तक पहुंचा है उनमें प्रारंभ से ही वे तत्व विपुल परिमाण में थे। इसलिए उन्होंने माखनलाल जी से इनकी सीख ली होगी यह मानना तर्कसंगत नहीं है और न सृजन में प्रवर्तन पूर्वापर का सपाट परिगणन होता है। प्रवर्तन का श्रेय उसी रचनाकार को दिया जा सकता है जो उस प्रवृत्ति का प्रभावशाली निर्वाह भी करता है। इसीलिए मुझे माखनलाल चतुर्वेदी या मुकुटधर पांडे को छायावाद के प्रवर्तन का श्रेय देना अयुक्तियुक्त लगता है। खैर, माखनलाल जी के जिन तत्वों पर ज़ोर दिया जाता है वे छायावादियों ने उनसे नहीं सीखे, यहां तक कि वे उनसे दरअसल जो सीख सकते थे, वह भी उन्होंने शायद नहीं सीखा। मसलन उनकी सगुण-साकार रागपरकता और मिट्टी का जीवित अनुभव। अगर माखनलाल जी की प्रकृति और छायावाद की प्रकृति को एक साथ रखकर देखें तो हमें लगेगा कि छायावाद की प्रकृति अत्यंत परिशुद्ध, महीन, आसमान में तैरती कल्पना जैसी है जबकि माखनलाल जी की प्रकृति मिट्टी में लथपथ, उसका स्वाद और गुण लिए हुए है, उसको मटियालेपन और शरीर की लुनाई में इतना अपनापन है कि आप उसे प्रगाढ़ आलिंगन में बांध सकते हैं, जबकि छायावादी प्रकृति से विशिष्ट शिष्टाचार से भेंट करनी होती है और डर लगता है कि अगर आप उससे हाथ भी मिलाएं तो कहीं उसकी हथेली मैली न हो जाए! निर्गुण और निराकार को उनके काव्य में जो अलग हस्ती दी जाती है, वह भी भ्रांत है, क्योंकि निराकार माखनलाल जी में साकार का आंतरिक स्पर्श है; ऐसी कोई निराकार रहस्यपरकता उनमें नहीं है जो साकार से अलग अनुभूति देती हो। उनकी कविता 'मेरा उपास्य' जिसे कुछ लोग छायावाद की पहली कविता कहते हैं, रहस्यमयी-सी लगती है लेकिन उसमें भी मांसल स्पर्श के अनुभव कितने प्रगाढ़ हैं—

"अर्द्धरात्रि, विद्युत-प्रकाश घन
गर्जन करता घिर आया
जो जो बीते सहूं, कहूं क्या
कौन कहेगा 'लो आया'

'लो आया' छप्पर टूटा है
वातायन दीवारें हैं
पल-पल में विह्वल होता हूं
कैसी निर्दय मारें हैं।"

माखनलाल जी की कविता में जो 'वैयक्तिकता' है, उसका मूल तत्व है विद्रोहमूलक स्वाधीनता या 'व्यक्तित्ववाद'; जो प्रणाली, धारा, बंधन और विपणन को अस्वीकार करता है, क्योंकि उनमें 'व्यक्तिवाद' का उस तरह विकास नहीं हुआ जैसा व्यक्तिवादियों में होता है (कवि ने खुद कहा है—'गगन सी खाली न मेरी कसक, इसमें बस्तियां हैं) जो कवि राष्ट्र के व्यापक उद्वेलन और संघर्ष में अपने व्यक्तित्व और कविता दोनों को झोंक रहा हो उसे वैसे भी व्यक्तिवादी नहीं कहा जा सकता। इसलिए माखनलाल ये आगामी व्यक्तिवाद की प्रेरणा हैं यह कहना बहुत प्रामाणिक नहीं लगता। (व्यक्तिवादियों की प्रेरणा के और भी अनेक स्रोत थे।) लेकिन माखनलाल जी की संपूर्ण कविताओं का सार एक ओर चरम

विद्रोह है और दूसरी ओर चरम आत्मबलिदान। यह आत्म-बलिदान किसके लिए? अपनी प्रेमिका या अपने अमूर्त प्रियतम के लिए या अपने आवेग के लिए? नहीं, वह है राष्ट्र के लिए; राष्ट्र के संघर्ष और संकल्प के लिए; असंख्य उत्पीड़ित जनता के लिए :

"वह कली के गर्भ से फल रूप में अरमान आया
देख लो मीठा इरादा किस तरह सिरतान आया
डालियों ने भूमि-रुख लटका दिए फल देख आली
मस्तकों को दे रही संकेत कैसे वृक्ष डाली?"

ये पंक्तियां यहां इसलिए उद्धृत की गई हैं कि इनमें माखनलाल जी का विद्रोह, ऊर्जा और आत्मबलिदान संश्लिष्ट होकर आया है। किसी ने उनके गीत 'बदरिया थम-थम कर झर री! सागर पर मत मरे अभागिन गागर को भर री!—को उनकी व्यक्तिवादी प्रवृत्ति के उदाहरण-स्वरूप पेश किया है जबकि यहां कहा यह गया है कि जो पहले से ही भरा है लबरेस, उसे क्या भरना; भरना तो उस गागर को है जो खाली है। इस व्यंजना में जो चिढ़ है वह भी इसी बात को लेकर है कि वह भरे हुए पर 'मर' रही है और इधर जो प्यासी है, खाली है वह उपेक्षित है। व्यक्तिवादी शायद गागर की नहीं सीप के खुले मुंह की बात करता।

माखनलाल जी की कविता में जो लोच, व्यंजना, रागपरकता, प्रकृति-राग, भक्ति-भावना है उसे लेकर जो तरह तरह की बातें कही जाती हैं, उनके निराकरण का संकेत देने के लिए मैंने उपर्युक्त बहस उठाई है। सच तो यह है कि माखनलाल जी में निहित गतिशील प्रेरणा और आभ्यंतरिक आवेग उन्हें अनेक युगों के भीतर संचरित होने की शक्ति देता है। उनकी प्रेरणाएं बांधी नहीं जा सकतीं; खुली रखकर ही उनकी शक्ति और आभ्यंतर-संचार को आंका जा सकता है। अनेक युगों के अनेक कवियों ने माखनलाल जी के इसी गतिमान सृजन से प्रेरणा ली है। नए कवि गिरिजाकुमार माथुर ने माखनलाल जी को पीढ़ियों का 'ज्योति-केंद्र' कहा है न केवल 'राष्ट्रीय सांस्कृतिक उन्मेष' का, बल्कि 'नई प्रवृत्ति की काव्यधारा' का भी उन्हें प्रेरणा-स्रोत कहा गया है कवि का यह स्वीकार माखनलाल जी के गत्यात्मक अवदान को एक आदरांजलि है। इसीलिए मैंने कहा है कि माखनलाल जी को किसी खूंटे से न बांधा जाए, बल्कि उनके व्यापक राष्ट्रीय, सांस्कृतिक, मानवीय और सर्जक व्यक्तित्व द्वारा, युगों की धरती में प्रवाहित धारा के आप्लावन को महसूस किया जाए।

माखनलाल जी की राष्ट्रीय कविताएं अन्य समकालीनों से अलग हैं—इस माने में कि वे महज़ उपदेश, आह्वान, हुंकार और आत्म-पीड़न नहीं हैं-इनके भीतर अपूर्व रागतत्व समाया हुआ है, वह आक्रोश से अधिक आत्म-बलिदान का आह्लाद है, देश पर ऐसे मरा जाता है गोया प्रेम किया जा रहा हो या अभिमानी भक्त का समर्पण हो। ये कविताएं विद्रूप से अधिक वेदना और सुंदर-कर्म का बोध जगाती हैं, इनके ओज में भी लोच है। पुष्प की चाह, जवानी, कैदी और कोकिला जैसी प्रसिद्ध कविताएं तो हैं ही; लघुमानव के विद्रोह का यह तेवर घास-पात के प्रतीक में गौर करने लायक है:

"लोहे के फरसे आते हैं
हमको खोद बहाने
पागल *अपने* महाजोर की
महिमा वे क्या जानें?
ज्वाला जगी की अपनी बलि
हम पहले दें प्यारे
हमसे ही बनते देखे हैं
दुनिया के अंगारे

मिट्टी में मिलना हरियाना
फिर होना अंगारे
विद्रोही हैं—ये सब कुछ
होते हैं *अवतार* हमारे।"

'विद्रोही' में अत्याचारों के प्रति आक्रोश, हिक़ारत और यातना को लेकर पीड़ा नहीं है, एक गरिमा, एक उत्सव और ज़बरदस्त जीवट है। कहीं आप इसमें सत्याग्रही के संकल्प और भारतीय सांस्कृतिक जन्मांतर की प्रेरणा देख सकते हैं (विश्व है असि का नहीं संकल्प का है/हर प्रलय का कोण कायाकल्प का है।) परंतु यह मूलतः माखनलाल जी की *राग में पगी उत्सर्ग भावना* है जो हर कविता को विलक्षण सर्जनात्मकता देती है।

माखनलाल जी ने प्रारंभ में और बाद में भी प्रेम और भक्ति के गीत-कविताएं कम नहीं लिखीं—उन कठिन दिनों में भी जब वे जेल में रहे या क्रांतिकारियों के साथ जूझते, छिपते रहे। उनके हृदय में हमेशा कृष्ण की बांसुरी, महाभारत का समर और प्रेयसी (पत्नी) का वियोग एक साथ हिलोरें लेता रहा। इन्हीं समवेत हिलोरों में उन्होंने पचास वर्ष तक पत्नी का दाह, राग का मिठास और विद्रोह की आग एक साथ साधे रखी।

कृष्ण उनके लिए श्रृंगार और भक्ति का आलंबन तो थे, लेकिन इससे ज्यादा वे कर्म, संघर्ष, वैविध्य, संगीत और आत्म-रस का प्रतीक भी थे। विलंबित मीटर में लिखी गई उनकी कविता की ये पंक्तियां देखें :-

"प्रेम की जन्मगांठें जगीं मंगला राग वीणा-प्रवीणा सखी भारती
आज ब्रह्मांड की गोपिका गा उठी, सूर्य की रश्मियां श्याम की आरती।"

ये पक्तियां कविता के जन्म की मूल प्रेरणा और उसकी उदात्तता के आयामों को बखूबी खोल देती हैं। यह कृष्ण, यह विराट् पुरुष माखनलाल के भीतर एक विराट् भारत, बल्कि विराट् सृष्टि बन जाता है और इस तरह भक्ति की भावधारा का आधुनिक लोक व्यापीकरण होकर उनकी राष्ट्रीयता भाव-भीनी हो उठती है :-

'देख लो/प्राण में एक तूफान-सा
लोटता-सा चला जा रहा है कहां?
व्यक्ति-वामन उठा आ रहा पैर ले

एक रक्खे यहां, एक रक्खे वहां।
श्रृंखला सागरों को पिन्हाता हुआ
गगन खेल घर का बनाता हुआ।'

(शायद दो पहाड़ों को कुहनियों से ठेलता हुआ शमशेर का विराट् मनुष्य इस कल्पना का परवर्ती है।)

माखनलाल चतुर्वेदी ने कविता के बेहिसाब क्षितिज खोले। छायावाद और राष्ट्रीयता की चर्चा तो उन्हें लेकर खूब हुई है लेकिन उनका एक प्रगतिशील और प्रयोगवादी स्वरूप भी है—हालांकि वे न इन धाराओं में परिगणित किए जा सकते हैं न बांधे जा सकते हैं। क्योंकि उनकी उदात्त प्रतिभा किसी में बांधने की स्वीकृति नहीं देती। यहां मैं उनकी प्रगतिशील रचना का उदाहरण देकर लेख समाप्त करूंगा :

"तोड़ अमीरों के मनसूबे
गिन न दिनों की घड़ियां
बुला रही हैं तुझे देश की
कोटि कोटि झोपड़ियां।"

□

युग सत्य का अनुगायन

डॉ. गंगा प्रसाद विमल

माखनलाल चतुर्वेदी बीसवीं शताब्दी के महत्वपूर्ण कवियों में एक हैं। छायावादी व कालांतर उत्तरछायावादी काव्यधाराओं में फैला उनका काव्य सृजन प्रचलित काव्यांदोलनों से अलग प्रतीत होता है। स्वाधीनता संग्राम के दौरान युवा उन्मेष के रुप में उनके काव्य का जो व्यक्तित्व उभरता है उसे सहज ही में युगांतकारी कहा जा सकता है। एक सरल, सहज, देश प्रेमी का जो बिंब उनका निजी जीवन संप्रेषित करता है उससे उनके काव्य व्यक्तित्व में कोई ऐसा अंतर नहीं उभरता जिसे रेखांकित किया जा सकता है। निष्कर्षतः उनके निजी व्यक्तित्व और उनके सृजेता व्यक्तित्व में जो विलक्षण तालमेल है वह अन्यत्र दुर्लभ है। इसलिए कहा जा सकता है कि माखनलाल चतुर्वेदी निश्चित ही एक ऐसे कवि हैं जो अपने समय के दूसरे कवियों से तो भिन्न हैं ही, वे स्पष्टतः अपने ही ढंग की काव्य परंपरा निर्मित करने वाले भी हैं। अतः अब तक परिव्याप्त भ्रांतियों के निराकरण के लिए मान लेना चाहिए कि मैथिलीशरण जी या कालांत में लोकप्रिय कविता के सृजेता हरिवंशराय बच्चन जैसे काव्यगुण उनकी कविता में नहीं मिलते। ऐसा स्वीकार कर लेना केवल इसलिए आवश्यक है कि अधिकांश हिंदी आलोचक उन्हें जिस परंपरा में जोड़ लेते हैं उससे अर्थ निकलता है कि माखनलाल चतुर्वेदी एक अनुकर्ता कवि हैं। जबकि सत्य यह है कि वे अपनी नितांत निजी शैली के तो जनक हैं ही, वे अपनी एक अलग कवि-व्यक्तित्व की पहचान बताने वाले साहित्यिक हैं। उनकी कविता में ओज और माधुर्य के जो शिखर मिलते हैं....वे स्वयं साक्ष्य जुटाते हैं कि भाषा में ऐसे प्रयोग दूसरे कवियों ने नहीं किए हैं और यदि माखनलाल चतुर्वेदी के समकालीन अन्य कवियों में कविता का ऐसा गुणधर्म मिलता है तो कहना पड़ेगा उन अन्य कवियों पर माखनलाल चतुर्वेदी का भरपूर प्रभाव है।

किसी ने ठीक ही कहा है कि उनकी कविता में ओजपूर्ण माधुर्य है। 'ओज' उनकी कविता का मुख्य गुण धर्म सकारण बना है। जिस काल खंड में उन्होंने अपनी कवि यात्रा आरंभ की उस काल का सामान्य वातावरण ओज के स्फुलिंग से पहले ही चमत्कृत था। गाँधी के सत्याग्रह में हीनता का दीनतापूर्ण स्वीकार नहीं था। वह सविनय आन्दोलन था। विनय की दर्पमयता से ओत-प्रोत। छायावादी काव्य इसीलिए कभी-कभी अप्रामाणिक दीखने लगता है। क्योंकि उसमें माधुर्य की कल्पनामय निजतापूर्ण अंतरंगता थी जो कालांतर में अवसाद और रहस्य के घटाटोप में विलुप्त हो जाती थी। गांधी जी के मनोभाव में माधुर्यमय ओज था जबकि माखनलाल जी के काव्य व्यक्तित्व में ओजपूर्ण माधुर्य। माखनलाल जी की राष्ट्र भावना मूल रुप में एक आत्मोत्सर्गी सेनानी की राष्ट्र भावना थी। उसमें किसी प्रकार का समझौता नहीं था इसी कारण उनके काव्य में एक खास प्रकार की स्पष्टवादिता है। यह स्पष्टवादिता एक आधार है जो उन्हें उन अन्य कवियों से अलग कर देता है जिन्हें उनके साथ रखा जाता है। 'ओजपूर्ण माधुर्य' के वे एक विलक्षण कवि हैं। रुमान और

उत्साह उनके आरंभिक काव्य के दो स्थायी आधार हैं। छायावादी काव्य दौर में उन्होंने जो रचनाएं लिखीं वे उपरोक्त कथन का साक्ष्य हैं। उनकी आरंभिक कृतियों में वह नैसर्गिक रूप में मिलता है। अपनी नैसर्गिकता के कारण वह ओज कविताओं में रचा-बसा है। वह किसी भी रूप में कविताओं पर आरोपण नहीं लगता। न वह कृत्रिम उत्साह का आवेगात्मक रुप है। ओज...एकांततः ओजत्व को संप्रेषित करने वाला माध्यम भी है। परंतु उसे मात्र उत्साहधर्मी और उत्सवधर्मी नहीं मानना चाहिए। वहां केवल रुपायन की दृष्टि से ओज का आश्रय कविगण लेते हैं। समझना चाहिए कि वह मात्र एक प्रचारात्मक कार्य है। 'ओज' में एक निर्वैयक्तिक वस्तुनिष्ठता होती है। ऐसा माना गया है परंतु माखनलाल चतुर्वेदी की ओज-भंगिमाओं में हमें निरंतर एक संलग्नता मिलेगी। वह संलग्नता केवल सांकेतिक नहीं अपितु संबोधन के स्तर पर तक अपनी आत्मीयता को व्यक्त करती है। दृष्टांत के लिए उनकी प्रसिद्ध काव्य पंक्तियां दृष्टव्य हैं—

चल रही घड़ियां
चले नभ के सितारे
चल रही नदियां
चले हिम खंड सारे।
चल रही है सांस
फिर तू ठहर जाए?
दो सदी पीछे कि
तेरी लहर जाये?

यहां उनका उपालंभ किसी व्यंग्य बोध से ग्रस्त नहीं है अपितु यौवन के प्रति स्वर विश्वास में सधी उनकी वाणी की उद्घोषणा है जिसमें माखनलाल जी के व्यक्तित्व की वह आरंभिक झांकी है जिसने उन्हें ओज में माधुर्य का परिपाक करने की प्रेरणा दी है। माखनलाल के काव्य में युवकोचित उल्लास का जो अद्भुत भाव है उसे देखना चाहिए। इसलिए कि वह एक ऐसा आधार है जो उन्हें मात्र एक दल विशेष या लक्ष्य विशेष का कवि घोषित नहीं करता। उनमें 'राष्ट्रवाद' का अंध भक्ति वाला भाव नहीं है। अपितु एक उदार, उदात्त राष्ट्रवाद उनका लक्ष्य है। गांधीवादी 'विश्ववाद' से वे केवल प्रभावित ही नहीं हैं बल्कि विचारधारा के परिदृश्य में इस मूल भावना का भी वे अपनी कविता में अनुवाद करते चलते हैं जो राष्ट्रीयता की संकुचित भ्रांत और जातिवादी आग्रहों से अलग है। उनके 'राष्ट्रवाद' में यौवनचित आक्रामकता है और यह यौवन की बानगी के रूप में, एक आह्वान के रुप में उनकी कविता में अवतरित होती है पर यह 'आक्रामकता' कहीं भी उनके उदारतावाद के मार्ग में बाधा नहीं है।

आधी शताब्दी से अधिक रचनारत माखनलाल चतुर्वेदी आरंभ में छायावाद के उन्नायकों में एक कवि के रुप में देखे जा सकते हैं। परंतु गहराई से पड़ताल करें तो पायेंगे कि एक छायावादी कवि के रुप में वे एक ऐसे विद्रोही कवि दीख पड़ते हैं जो जन जन की आंकाक्षाओं को वाणी देने के लिए विह्वल हैं। प्रवृत्यात्मक रुप से उनकी कविता में एक

तत्व है जो उन्हें तत्कालीन मुख्य धारा से जोड़ता है। वह मुख्य धारा है स्वाधीनता संग्राम और उस संग्राम की तात्विक स्थिति में राजनीति एक प्रबल आधार है जिसकी ओर माखनलाल जी जैसे संवेदनशील कवि आकृष्ट होते हैं। कभी-कभी लगता है कि वे अपने समय की सक्रिय राजनीति के एक सांस्कृतिक प्रवक्ता हैं। क्योंकि स्वाधीनता संग्राम के दौरान घटी महत्वपूर्ण घटनाओं पर वे अपनी काव्यात्मक प्रतिक्रिया प्रस्तुत करते हैं। वास्तव में यह वह दौर था जब कविता एक संचार-साधन थी और कविता के द्वारा अपने समय के घटनात्मक माहौल को व्यक्त करना उपदेशात्मकता नहीं थी बल्कि वह एक प्रकार की राजनीति थी। विश्व भर के क्रांतिकारियों ने कविता के द्वारा अपनी बातें जन-जन तक पहुंचाई थी। कदाचित यही एक आधार है जिस पर हम कह सकते हैं कि माखनलाल जी एक संवदेनशील आदर्श की प्रतिक्रिया के रुप में कविता का इस्तेमाल नहीं कर रहे थे बल्कि वे अपनी राजनीति को स्पष्ट करने के लिए वैसा कर रहे थे। जब देश में निहत्थे लोगों पर अंग्रेज अत्याचार कर रहे थे, दमन का नंगा नाच जारी था तब भारतवासी अत्याचार न होने देने के लिए एक जुट थे।

''नहीं लिया हथियार हाथ में, नहीं किया कोई प्रतिकार
अत्याचार न होने देंगे, बस इतनी ही थी मनुहार''

भारतीय राजनीति में गांधी जी केंद्र थे। उस समय गांधीजी का प्रभाव उनके समर्थकों पर ही नहीं पड़ता था बल्कि उनके विरोधियों और शत्रुओं पर भी पड़ता था। माखनलाल जी के अंतर्हृदय में एक ओर आक्रामक सी स्थिति के प्रति सहानुभूती थी तो दूसरी ओर अहिंसक सहिष्णुता के प्रति आकर्षण था। यह एक प्रकार का द्वंद्व है। गांधी और क्रांति इन दो ध्रुवों ने जो तनाव पैदा किया था उसके शिकार माखनलाल जी जैसे लोग थे। कुछ लोग 'गरमदल' के विकट आकर्षण के कारण गांधी जी से अलग भी हो गये थे। परंतु माखनलाल जी ने बोध के स्तर पर यह पाया कि गांधी और क्रांति दोनों साथ-साथ ले जाने योग्य चीजें हैं। इसलिए वे दोनों से विमुख नहीं हुए। भारतीय स्वतंत्रता के इतिहास में गांधीवादी राजनीति बाद में उनकी कविता का अपरिहार्य अंग बन गया। इसके बहुत से कारण रहे हैं परंतु दो कारणों का उल्लेख आवश्यक लगता है। एक तो सामान्य राजनीति से संस्कृति का अलगाव गांधी जी में नहीं था। वे संस्कृति को मूल्याधार मानते थे। मानवमात्र के लिए मानवमूल्यों के हिमायती गांधीजी नीति और संस्कृति के बीच गहरे संबंध की उपस्थिति देखते थे। माखनलाल जी मूलतः कवि थे। संस्कृति के पक्षधर। अतः उन्हें गांधीवादी राजनीति में अपनी स्थिति विचित्र या लगावपूर्ण नहीं लगती थी। वे जानते थे कि प्रत्येक नागरिक की भिन्न-भिन्न भूमिकाएं हैं। इसलिए एक सांस्कृतिक कार्यकर्त्ता को सत्तापेक्षी राजनीति में प्रवेश करने की जरूरत नहीं है। दूसरा कारण है माखनलाल जी गांधी जी की शक्ति को पहचानते थे। गांधी जी लोक शक्ति का एक पूंजीभूत केंद्र थे। लोकचित्त से वे अपने लिए ऊर्जा पाते थे। यह एक प्रकार की लोक सिद्धि थी। और माखनलाल जी इस कारण गांधीवादी चिंतन के ज़्यादा निकट थे। वे स्वयं में एक ऐसी वंश परंपरा के वंशधर थे जिनका संपर्क लोकजीवन से बहुत गहरा था। इसलिए जब गांधीजी लोकस्वराज्य, लोक सत्ता और लोककल्याण की विचारणा को लेकर आए तो यह माखनलाल जी के लिए नयी

चीज नहीं थी। उन्होंने एक वैचारिक परिवेश को केवल अपनी काव्य भाषा में अनूदित किया था। और वह वैचारिक परिवेश धीरे-धीरे जनचित्त की अपनी सामग्री बनता जा रहा था। स्वाधीनता संग्राम के उन वर्षों की कल्पना करें तो हम पायेंगे की लोक-उन्मेष उस वातावरण की एक अविभाज्य और अपरिहार्य स्थिति थी। माखनलाल जी अपने समय के वातावरण से प्रभावित थे—यह कहना गलत होगा क्योंकि वे स्वयं वातावरण का एक अंग थे। मुहावरे के रुप में कहना होगा वे उस वातावरण की आत्मा थे। 'भारतीय आत्मा' केवल विशेषण नहीं है। उन्होंने उस वातावरण को जिस रुप में आत्मसात किया गया था वह 'आत्मस्थ' स्थिति किसी 'लोकसिद्ध' कवि में ही आ सकती है।

उनकी आरम्भिक कृतियों 'हिमतरंगिनी' 'हिमकिरीटनी' व 'माता' को उदाहरण के रूप में लें तो स्वीकार करना होगा कि इन सब कविताओं में उनका उल्लास किसी प्रकार की 'स्तुति' का नहीं है। जबकि हमारी शास्त्रीय परंपरा में महत्तम की उपस्थिति 'स्तुति' द्वारा ही स्थापित की जाती है। माखनलाल जी ने इन आरंभिक कविताओं में जो अनुगायन किया है वह प्रकृति-स्वदेश अर्थात् 'स्व' के अमोल, अनूप, अद्वितीय रूप का ही अनुगायन है। छायावाद में प्रकृति की उपस्थिति उद्दीपन किस्म की है जबकि माखनलाल चतुर्वेदी और बाद में रचनारत होने वाले कवि चंद्रकुंवर बर्त्वाल की रचनाओं में यह उपस्थिति आबद्धता की है। कहने का प्रयोजन मात्र यह है कि माखनलाल जी के काव्य में आरंभ से ही उस भाव भूमि के संदर्शन किए जा सकते हैं जो बाद में चलकर परिपक्व होते हैं। उनकी कविता का प्रथम चरण प्रथम विश्वयुद्ध के आरंभ होने वाले वर्षों से लेकर द्वितीय विश्व युद्ध आरंभ होने के वर्षों तक फैला हुआ है। इस काल में छायावाद और प्रगतिवाद मुख्य काव्य धाराएं हैं। इन दोनों काव्यधाराओं में हमें देश के प्रति निश्चित रूप से एक नयी दृष्टि का विकास मिलता है। तथापि माखनलाल जी प्रगतिवादी ऊष्मा को कुछ वर्ष पूर्व अपनी 'राष्ट्रनिष्ठा' में व्यक्त करते हैं और एक गांधीवादी, शांतिप्रिय क्रांतिगायक के रूप में स्थापित रहते हैं। सन् 1936-37 के बाद उनकी कविताओं का दूसरा दौर आरंभ हो जाता है। 'युगचरण' और 'समर्पण' जैसी कृतियों में वे 'राष्ट्रीयता' का दूसरा ही मुख दिखाते हैं। उनकी कुछ कविताओं में मिथकीय प्रतीकों का प्रयोग मिलता है। जिसके कारण उनके काव्य में रहस्यवादी तत्व की उपस्थिति भी मानी गई है। परंतु यह वास्तव में उनके राष्ट्रवाद का उदार, उदात्त, विराट संचरण था। इसलिए इस प्रवृति को भी उनकी पूर्ववर्ती प्रवृति का ही विस्तार मानना चाहिए। पैराणिक प्रतीकों का प्रयोग छायावादोत्तर काव्य में एक विशेष प्रवृत्ति के रूप में देखा जाता है। माखनलाल चतुर्वेदी ने इन पौराणिक प्रतीकों का उपयोग 'आख्यान' की दृष्टि से नहीं किया अपितु अर्थ की दृष्टि से किया है। उनके सचेत मानस में मानवीय मूल्यों और 'स्व-राष्ट्र' भावना का जो एक लोक निर्मित था उसे वे उन पुरा-प्रतीकों के माध्यम से ही भाषा में रुपांतरित कर पाये हैं। आज हम इन प्रयोगों की साधारण स्थिति से चाहे न चमत्कृत हों किंतु जिस तनावपूर्ण स्थितियों में उन्होंने इनका उद्बोधन किया उनमें ये 'साधारण स्थिति' के प्रतीक एकदम असाधारण अर्थवान, संगत एवं सटीक थे। वास्तव में पुरा-प्रतीकों के प्रयोग को उन लोकसिद्धि की उपलब्धि से जोड़ा जाना चाहिए जिसका हम पहले विस्तार से उल्लेख कर चुके हैं। जनचित्त में पुरा-प्रतीक अपने ही ढंग से निवसित

रहते हैं। चतुर्वेदी जी इस तथ्य से परिचित थे। अपने अभीष्ट की सिद्धि के लिए उन्हें यह उपयोग सर्वथा उचित प्रतीते हुआ। आज भी हम पूरा-प्रतीकों की पैरवी करते समय कवियों के उस परिज्ञान का अनुमान कर लेते हैं कि 'सत्य' या 'मूल्य' की किसी पक्षधरता को समर्थन मिल रहा है।

छायावादोत्तर काल में, विशेष रूप में स्वातंत्र्योत्तर समय में चतुर्वेदी जी ने अपनी सीधी, सरल, संप्रेष्य सहज शैली में एक परिवर्तन आने दिया और वह परिवर्तन था भाषा की प्रांजलता का वास्तव में उनकी कविताओं के तीसरे दौर की यह एक महत्वपूर्ण विभाजक रेखा है। 'वेणु लो गूंजे धरा पर' इस काल का सर्वश्रेष्ठ काव्य है। स्वातंत्र्योत्तर समय में माखनलाल जी संत्रस्त या कुंठित नहीं थे। वे स्थितियों के प्रति सचेत थे। अपनी प्रतिक्रियाओं में निर्भीक थे। उनकी कविताओं में पश्चाताप है। यह अलग प्रश्न है कि स्वातंत्र्योत्तर काल में वे काव्य की प्रतिनिधि धारा से विमुख हो अपने 'क्लासिकी' आवरण में लिप्त नहीं हुए। उनका युवकोचित उत्साह उनके साथ अंत तक बना रहा।

उनके काव्य में एक 'क्लासिकी' उदारता है। क्षोभ और गुस्से में भी एक खुलापन है। 'कब मिलोगे, सांस की पहिचान की मीठी कुरेदन'—जैसे उनके पद और पदांत लोक व्यवहृति की भाषा को 'जस का तस' रखकर उसे कालजयी बनाते हैं। और लोक व वाचन परंपरा की सतत स्थिति बनाये रखते हैं। राष्ट्रीयता का दर्प उनके यहां है पर उनका खोखला अहंकार नहीं है। प्रेम की हीनता व्यंजक अवसादपूर्ण भावुकता कम है यह सत्यतः उनके उदारवादी व्यक्तित्व की देन है। देशप्रेम, ओजस्विता और मनस्विता उनके काव्य का केंद्र है परंतु उसमें संकीर्णता, अराजकता, तर्कहीनता नहीं है।

एक कवि के रूप में माखनलाल चतुर्वेदी हिंदी के अनुपम कवि हैं। अनुपम कई अर्थों में रहे। एक तो वे साहित्यिक आंदोलनों से परे रहे। स्वयं में अपने समय के केंद्रीय आंदोलन से वे बहुत गहराई से जुड़े रहे। यह जीवन का आंदोलन था। वे स्वयं में एक आंदोलन थे। जो उनके निकट रहे हैं, उन्हें मालूम है कि वे किस तरह से "देश" के साथ एकमेक थे। उनके काव्य में इसी कारण दुहरे-स्तर की उपस्थिति नहीं है। एक दम इकहरी से उनके सत्य पक्षी विचार एवं भाव धारा है। उनके ज्ञान में भी उनके व्यक्तित्व एवं उन पर पड़े प्रभावों की पारदर्शी उपस्थिति है। डॉ. रामविलास शर्मा के अनुसार वे "गद्य और पद्य दोनों में कवि हैं" उनकी अनुपमता का इससे बड़ा प्रमाण क्या होगा? वे 'युग' को वाणी देने वाले कवियों में से एक थे। मौन समय की व्यथा, आकांक्षा, उद्वेलन को पकड़ पाने को सामर्थ्य उनमें था और यही कारण है कि वे बहुत सजग भाव से जन मन के अंतरंग को व्यक्त कर पाये। हमारी शताब्दी ने मानव दुर्भाग्य के अविस्मरणीय आघात झेले हैं। उसे उत्पीड़न ने जहां आधुनिकतम कवियों में कुंठा, पलायन वृत्ति दी है वहां माखनलाल जी जैसे कवियों में एक सतत योद्धा का व्यक्तित्व भी दिया है। क्रांतिकारियों और संस्कृति के पुजारियों के गुणों से अलंकृत माखनलाल चतुर्वेदी गांधीवाद के कवि ही नहीं, अहिंसा के विजयनाद के उद्घोषक ही नहीं वे एक दायित्वपूर्ण भाव के उपासक हैं जो स्वाधीनता संग्राम के दौर में भी प्रासंगिक थे, स्वतंत्रता मिलने के बाद भी प्रासंगिक रहे और दिवंगत होने के बाद भी प्रासंगिक हैं। □

माखनलाल चतुर्वेदी : स्वाधीनता संग्राम की सर्जनात्मक अभिव्यक्ति

डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल

माखनलाल चतुर्वेदी के रचना-कर्म और रचना-स्वभाव पर जब हम एकाग्र चित्त से विचार करने बैठते हैं तब सहसा ही यह रहस्य खुलकर सामने आ जाता है कि उनका सृजन-कर्म भारतीय स्वाधीनता-संग्राम की सर्जनात्मक प्राण-शक्ति का प्रचंड विस्फोट है। देशी-विदेशी रीतिवादी-चिंतन परंपरा को ललकारते-पछाड़ते हुए इस सर्जनात्मकता में लोक जागरणवादी परंपरा का जन विद्रोही कोलाहल सुनाई देता है। नवजागरण की चेतना के कारण भारतीय-राजनीतिक-सामाजिक जीवन में जो चिंतन का नया खमीर उठा था उसने देशी स्वच्छंदतावाद में न केवल अपनी निष्पत्ति पाई थी; बल्कि उसको एक नया अर्थ-संदर्भ भी दिया था। कहना न होगा कि भारतेंदु के मनोभावों का बीज-भाव माखनलाल चतुर्वेदी में पुष्ट और प्रौढ़ होकर सामने आया। उनका रचना-कर्म द्विवेदी-युग और छायावाद-युग के सामानांतर पनप कर उस देशी स्वच्छंदतावाद से शक्ति संचित करता रहा है जो शक्ति श्रीधर पाठक, मुकुटधर पाण्डेय, नाथूराम शर्मा शंकर, रामनरेश त्रिपाठी और रायदेवी प्रसाद पूर्ण की काव्य-संवेदना में व्याप्त थी। फलतः युग जिसे पुराना न बना सके और पीढ़ियां जिसमें अपनी शक्ति तौल सकें—ऐसा सदाबहार सृजन माखनलाल जी ने हिंदी को दिया है।

स्वाधीनता संग्राम के दौर में मानव मुक्ति की प्रेरणा से प्रेरित होकर मैथिलीशरण गुप्त और माखनलाल चतुर्वेदी जन-जागरण की जिस धारा को प्रवाहित कर रहे थे उसे आज राष्ट्रीय-सांस्कृतिक धारा का नाम देना पर्याप्त नहीं है। कारण, यह सृजन राष्ट्रीय सांस्कृतिक रचना कर्म की हर परिचित परिभाषा को अपर्याप्त सिद्ध कर देता है। इन रचनाओं का देश और काल इतना व्यापक है कि नर के भीतर छिपा नारायण धरती और आकाश दोनों को छू लेता है। युग की हर धड़कन का इतिहास इस सृजन में स्पंदित है। इस सृजन धारा का चरित्र सामंतवाद, साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद, पूंजीवाद, कलावाद विरोधी और विद्रोही मुद्राओं नवीन भाव व्यंजनाओं का रुप मात्र ही नहीं है, इसमें भारतीय धरती की वह कालिदासीय लय भी है जो हिंदी के भक्तिकालीन संत साहित्य के भीतर से प्रवाहित होकर आधुनिक काल तक आती है। माखनलाल जी में नर्मदा का परशुराम तेज खौलता है जिसके प्रवाह से टकराकर खड़ी बोली की शब्द-संपदा में लोक संवेदना की धार निकल पड़ती है। चतुर्वेदी जी का गद्य-पद्य झोपड़ियों में छटपटाते मनुष्य की व्यथा, स्थिति परिस्थिति जन्य समस्याओं, तनावों, मनोभूमिकाओं और प्रश्नाकुलताओं को ध्यान में केंद्रित करते हुए उसे ही व्याख्यायित और परिभाषित करता है। भारत और एशिया के नवजागरण की शक्ति से संकल्प पाकर वह सृजन बड़े जीवन-मूल्य 'मुक्ति-चेतना' के लिए सीधे संघर्ष का तेज है। देश के जन-जन ने स्वाधीनता की पुकार तथा साम्राज्यवाद विरोध का जो स्वर उठाया था

वह स्वर माखनलाल चतुर्वेदी के साथ बालकृष्ण शर्मा नवीन जी के काव्य का भी बीज-भाव बना है। एक ही तर्क से इन दोनों कवियों का सृजन कर्म, अंतर्जगत और बहिर्जगत का गद्य-पद्य में रोचक संवाद प्रस्तुत करता है। रीतिवाद के घटाटोप को चीरती हुई इन दोनों रचनाकारों की केंद्रीय संवेदना लोकजागरण की सशक्त भावभूमि का इतिहास कह देती है। कहना न होगा कि इसी इतिहास में गणेश शंकर विद्यार्थी, माधवराव सप्रे, तिलक और राष्ट्रपिता गांधी का रक्त बजता है। महत्वपूर्ण तथ्य यह भी है कि माधवराव सप्रे माखनलाल के लिए प्रेरणा-गुरु हैं और गणेश शंकर विद्यार्थी उस प्रेरण के व्यावहारिक उदाहरण तथा मैथिलीशरण गुप्त रीतिवाद के विध्वंस में प्रवृत्त अग्रज रचनाकार। मैथिलीशरण गुप्त ने एक साथ ही रीतिवाद, चमत्कारवाद, झूठा कलावाद, नायिका भेदवाद, साहित्य के सजनीवाद, सखीवाद का खंडन करते हुए लिखा था और यह खंडन ही 'एक भारतीय आत्मा' का आदर्श बना है। गुप्त जी ने लिखा :

प्रिय चंद्र वदन की चटक नहीं है जिसमें
नागिन सी लट की लटक नहीं है जिसमें
मन्मथ महीप का कटक नहीं है जिसमें
और दृगों की मटक नहीं है जिसमें
उसको कविता ही नहीं आप बतलाते
कवि चतुर आप के भाव न जाने जाते
कविता में जो विष बीज आप बोते हैं
फल उसके विष से अधिक विषम होते हैं।

मैथिलीशरण गुप्त का गणेश शंकर विद्यार्थी पर लिखा संस्मरण और माखनलाल चतुर्वेदी का गणेश शंकर विद्यार्थी पर लिखा संस्मरण--लेख आज इस बात का प्रमाण है कि रीतिवाद विरोधी अभियान में दोनों ने उग्र रुप धारण कर लिया था। सन् 1912 ई. की 'सरस्वती' के अप्रैल और मई के अंकों में गुप्त जी ने जगन्नाथ प्रसाद 'भानु' की पुस्तक 'काव्य प्रभाकर' की तीखी आलोचना की थी जिसमें रीतिवाद का सीधा खंडन किया गया था। चतुर्वेदी जी ने 'कर्मवीर' के लेखों के बारे में बराबर समस्यापूर्ति परंपरा, नायक-नायिका भेदी परंपरा तथा 'सजनीवाद' का पुरजोर विरोध किया है।

यहां आरंभ में ही यह निवेदन कर देना आवश्यक,है कि माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्रा कुमारी चौहान और नवीन जी सीमित अर्थों में साहित्यकार नहीं हैं। इनकी रचनाओं का उद्देश्य देश में एक नवीन सामाजिक-राजनीतिक चेतना का प्रसार करना है। साहित्य और राजनीति का जो सीधा रिश्ता भारतेंदु, महावीर प्रसाद द्विवेदी और निराला जी में दिखाई देता है—उस ढंग और उसी ताकत का माखनलाल, नवीन और सुभद्रा जी सीधा परिणाम दिखाई देती हैं। व्यापक अर्थों में यह सृजन राजनीतिक कविता का अंश है—जिसमें भारतेंदु का लोक जागरण स्वर प्रबल होता गया है।

''सूधेन सौं सूधे, महा बांके हम बांकेन सौं,
हरीचंद नगद दमाद अभिमानी के।''

आज भारतेंदु जी की इसी दृष्टि से माखनलाल चतुर्वेदी के सृजन को परखने और समझने की आवश्यकता है। ध्यान देने की बात यह है कि भारतेंदु और महावीर प्रसाद द्विवेदी की भांति ही माखनलाल जी की भूमिका एक क्रांतिकारी पत्रकार और चिंतक की भूमिका रही है। नर्मदा का परशुराम तप और तेज माखनलाल के पत्रकार में सर्वत्र दमकता है और गीता के कर्मवादी-कृष्ण का संदेश अपनी अनुगूंज छोड़ता है। 'भारतमित्र', 'हिंद केसरी' और 'सरस्वती' जैसी पत्र-पत्रिकाएं माखनलाल के क्रांतिकारी विचारों की अंतर्मानसिकता का गठन करती हैं। मराठी साप्ताहिक 'सुबोध सिंधु' के हिंदी संस्करण में माखनलाल ने कार्य करना शुरु किया था 'बिना किसी आर्थिक सहायता के मैं 'सुबोध-सिंधु' के लेख, समाचार लिखने लगा। दशहरे के अवसर पर (1912) उसमें मेरा एक लेख निकला 'शक्ति पूजा' पर। तत्कालीन स्थानीय पुलिस सुपरिटेण्डेण्ट मिस्टर फेयरवैदर को उसमें राजद्रोह की गंध मिली और उन्होंने उस लेख के लेखक के बारे में पत्र-संचालकों के पूछताछ की। और यह जिज्ञासा की कि तुम्हारे पत्र में राजद्रोही भड़कने वाला लेख क्यों छपा है? संचालकों ने निर्मल भाव से और निर्दोष रुप से कह दिया कि यह लेख तो माखनलाल जी का लिखा हुआ है। (माखनलाल चतुर्वेदी रचनावली भाग 1 पृष्ठ 164) इस लेख पर तिलक का प्रभाव था और थी लेखक की विचारधारा की आग। लाल-बाल-पाल के गरमदली विचारों की माखनलाल जी पर आरंभ में तो धाक थी पर बाद में वे गांधी जी के सत्याग्रह-युग के प्रवक्ता बन गए। भवानी प्रसाद मिश्र ने 'जिन्होंने मुझे रचा' नामक संस्मरणात्मक पुस्तक में लिखा है कि "जब मैंने दादा के पैर छुए तो उन्होंने कहा कि हमें चरण-वंदना वाले नहीं ऐसे युवक चाहिए जो देश के लिए अपना सिर दे सकें।" जाहिर है कि माखनलाल ही भवानी प्रसाद मिश्र के प्रेरणा गुरु हैं। सुभद्रा कुमारी चौहान और नवीन जी पर भी माखनलाल की प्रेरणा की छाप गहरी है। इधर के नए सृजन में भवानी प्रसाद मिश्र, गिरिजा कुमार माथुर, मुक्तिबोध और अज्ञेय पर माखनलाल के रचनाकर्म की गहरी धमक है। माखनलाल जी ने कोई कवि-मंडल तो नहीं बनाया। लेकिन परंपरा को नए सिरे से निर्मित किया। वाद का घेरा नहीं बनाया, लेकिन समय के विवादों से संवाद करते हुए उसकी अगुवाई की। हिंदी के गद्य-पद्य दोनों पर 'कृष्णार्जुन का युद्ध', 'साहित्य देवता', 'अमीर इरादे गरीब इरादे' के गद्य और 'हिमकिरीटिनी', 'हिमतरंगिनी' और 'माता' की गहरी छाप और छाया का रंग है जिसे अभी हिंदी में ठीक से समझा-समझाया तक नहीं गया है। सच बात तो यह है कि माखनलाल जी का अभी मूल्यांकन होना बाकी है। स्वाधीनता-आंदोलन की हमारी पूरी समझ माखनलाल जी को समझे बगैर अधूरी है।

अध्यापक की नौकरी से त्याग-पत्र देकर माखनलाल जी पत्रकार बने थे। उन्होंने 1913 ई. में 'प्रभा' का अंक लोक-हित और लोक-शक्ति का प्रकाश लेकर निकाला था। पत्र का उद्देश्य 'स्वार्थ संपन्न पश्चिम के होश ठिकाने' लगाना तथा भारतीय जनता की समस्याओं पर प्रकाश डालना घोषित किया गया था। 'प्रभा' में (सरकारी आंखों में धूल झोंकते हुए) माखनलाल जी ने 'श्री गोपाल', 'भारत संतान', 'भारतीय', 'कुछ नहीं', 'पशुपति', 'नीतिप्रेमी', 'एक विद्यार्थी', 'एक निर्धन विद्यार्थी', 'एक नवयुवक', 'तरुण भारत', 'श्री चंचरीक', 'श्री विश्व व्याप्त', 'श्री शंकर', 'श्रीयुत नवनीत' और 'एक भारतीय आत्मा'

जैसे अनेक गुप्त नामों से लिखा। वह 'प्रभा' क्रांतिकारी सिद्धांतों की साहित्य मणि थी और 'एक भारतीय आत्मा' नवजागरण की प्रेरणा-ज्योति।

1913 ई. में कानपुर से गणेश शंकर विद्यार्थी ने साप्ताहिक 'प्रताप' का प्रकाशन किया। इससे पूर्व गणेश शंकर विद्यार्थी 'सरस्वती' तथा कृष्णकांत मालवीय के 'अभ्युदय' में कार्य कर चुके थे। 'प्रताप' में चतुर्वेदी जी की कविता 'चेतावनी' का प्रकाशन हुआ। इस कविता में अलगाववाद, प्रांतीयतावाद को छोड़कर अखंड भारत के कल्याण का (मैथिलीशरण गुप्त के ढंग) भाव है और वैसा ही छंद—

जातीयता का भाव देखो है यहां जगने लगा,
प्रांतीयता का पाप इनको छोड़कर भगने लगा।

× × ×

है दीन भारत को जगाने आ चुकी अब भारती ।
बढ़कर किया ही चाहते हैं कार्य विद्यार्थी व्रती ।।

इन काव्य-पंक्तियों में जातीयता की बात माखनलाल चतुर्वेदी ने यों ही नहीं उठाई है। वे पूरे विश्वास के साथ जातीयता और जातीय-स्मृति दोनों से अपना गहरा संबंध जोड़ते हैं। धीरे-धीरे इस सृजन में जातीय-प्रतिभा भिदती है और काव्यानुभूति में विद्रोही स्वर का पैनापन निष्पन्न होता है। पराधीन कल्पना अपने द्वार तोड़कर मुक्ति का दर्शन करती है और विद्रोही संत-परंपरा का इतिहास-भूगोल बोलने लगता है। कवि का समूचा युग-परिवेश उसकी काव्यानुभूति में एकाग्र हो उठता है। दरअसल माखनलाल जी के समस्त सृजन में यह प्रक्रिया गहरी से गहरी होती जाती है। उनका संघर्षशील रचनाकार इतिहास-बोध और चिंतनशीलता को समेट कर आगे बढ़ता है। यह सच है कि उनके चिंतन को कविता से ज्यादा गद्य में निकास मिलता है। पर संवेदन, चिंतन और रचना-कर्म की स्थितियां उनमें अलग-अलग नहीं पड़ती; बल्कि एक ऐतिहासिक अनुभूति में ढलती हैं। उनके पद्य और गद्य में हमारी लोक-जागरण की जीवंत परंपरा बोलने लगती है। साथ ही, जैसे भारतेंदु की विरासत का नया विस्फोट पुनः संभव हो जाता है।

उनके रचना कर्म में 'एक भारतीय आत्मा' ने उपनिषद् गीता, रामायण, महाभारत तथा वैष्णव-चिंतन परंपराओं का सार निचोड़कर तिलक एवं गांधी में अपना भाव-संसार पाया। तिलक और गांधी का यह चिंतन भारतीय भावबोध के पुनः परीक्षण, पुनर्व्याख्या और पुनर्रचना की एक नई मिसाल था। माखनलाल जी तो इस ओर आकर्षित हुए ही सुभद्रा और नवीन जी का झुकाव भी इसी ओर बढ़ा। फलतः वैचारिक और विद्रोही स्तर पर इन तीनों रचनाकारों की अंतर्मानसिकता की बनावट एक-सी दिखाई देती है। इन तीनों रचनाकारों के भाव-बोध में गांधी के विचारों ने गहरी हलचल पैदा की। नतीजा यह हुआ कि गद्य और पद्य दोनों में इस हलचल के सार्थक परिणाम निकले। गांधी के साथ इन तीनों के सृजन का आवेगात्मक और चिंतनात्मक रिश्ता बना। कहना न होगा कि यह काफी अटूट रिश्ता है।

साहित्यिक क्षेत्र में श्रीधर पाठक का देशी स्वच्छंदतावाद पनपकर माखनलाल में आया और इस रासायनिक घोल ने हिंदी कविता की नवीन दिशा के पूरे परिदृश्य को ही बदल दिया। माखनलाल ने आ. महावीर प्रसाद द्विवेदी को अपनाकर भी काव्यगुरु नहीं स्वीकार किया। जबकि उनका रीतिवाद विरोधी स्वर आ. द्विवेदी के काफी मिलता-जुलता है। आ. महावीर प्रसाद द्विवेदी का यह भाव उनमें सक्रिय है कि यूरोप की हानिकारिणी धार्मिक रुढ़ियों का उन्मूलन वहां साहित्य ने ही किया है, जातीय स्वातंत्र्य के बीज उसी ने बोए हैं। व्यक्तिगत स्वातंत्र्य के भावों को उसी ने पाला, पोसा और बढ़ाया है। माखनलाल के लिए राष्ट्र, संस्कृति और मनुष्य की त्रिवेणी का संगम है—राष्ट्रीयता। यह बात वे सदैव ध्यान रखते हैं कि राष्ट्रीयता ही जातीय तेजस्विता का पर्याय भाव है। उनके लिए हिमालय, गंगा, जमुना, राम, कृष्ण, शिव आदि मात्र प्रतीक नहीं हैं। यही हमारी सांस्कृतिक परंपरा है, सांस्कृतिक व्याप्ति है, सांस्कृतिक एकता है। इस देश की या किसी भी देश की सांस्कृतिक परंपरा किश्तों में नहीं बांधी जा सकती कि अमुक समय में अमुक प्रकार से लिखा गया साहित्य ही राष्ट्रीय है और अमुक राष्ट्रीय नहीं है।'' लोक-रक्षा, लोक-चिंता और लोक-भावभूमि की व्याप्ति रखने वाला साहित्य भी उनके लिए राष्ट्रीय साहित्य है।

उनका यह कथन राष्ट्रीयता की आवश्यकता को रेखांकित करता है कि ''वह राष्ट्र, राष्ट्र नहीं है जिसकी रीढ़ की हड्डी नैतिकता से न बनी हो। जहां ऊंचा सिर नहीं हो सकता, वहां कोई सिर उतार कर क्यों रखेगा। सिर देने की बात तो उसी राष्ट्र के मस्तक में आएगी जिसका ललाट बहुत ऊंचा हो। किसी राष्ट्र का निर्माण तब तक नहीं हो सकता, जब तक उसके पास ईमान और आदर्शों का बल, अभियान करने योग्य वस्तुओं की उपस्थिति और बलिदान का निश्चय न हो।'' (राष्ट्रीयता की आवश्यकता) इसी दृष्टि से उन्होंने अपना आदर्श चुना था—''हम चाहे ऋषियों की वाणी में गाएं, चाहे चिंतकों की भाषा में, चाहे श्रमशीलों की बोली में, सूझों का महान वैभव तो हमें देते ही चलना है।'' (राष्ट्रीयता : सूझ का वैभव) इसी दृष्टि से वे राष्ट्रीयता को पश्चिम की नस्लवादी राष्ट्रीयता से अलग करते हैं। उनके लिए राष्ट्रीयता राष्ट्र की धमनियों का बल है। इसीलिए वे कहते हैं—''यदि तरुण जमीन और आसमान के कुलाबे न मिलावें, तो उस तरुणाई पर बुढ़ापे को रोना चाहिए और तरुणाई को लज्जित होना चाहिए।'' (नोटबुक के पन्नों से) 'जवानी' कविता में इसी भाव की अभिव्यक्ति है—

> द्वार बलि का खोल चल, भूडोल कर दें
> एक हिमगिरि एक सिर का मोल कर दें
> मसलकर अपने इरादों सी उठाकर
> दो हथेली हैं कि धरती गोल कर दें
> खून हो जाए न तेरा देख पानी
> विश्व की अभिमान मस्तानी जवानी।

जाहिर है कि माखनलाल, नवीन जी और सुभद्रा जी का सृजन स्वतंत्रता की अंतर्ज्वाला का वह मूल्यवान प्रकाश है जिसमें स्वाधीनता का मूल्य पलता और पुष्ट होता है। ''युग जिसे

प्राचीन न बना पाए और रुढ़ियां' जिसे बेस्वाद न कर सकें, उसी को अमर साहित्य कहते हैं।'' (रंगों की बोली)

17 जनवरी, 1920 ई. को जबलपुर से ''कर्मवीर'' निकला। इसमें माधवराव सप्रे प्रेरणा के रूप में थे। 4 अप्रैल, 1925 ई. में ''कर्मवीर'' खंडवा से निकला और माखनलाल का निजी प्रकाशन था। उद्देश्य था हर बाधा झेलकर लोकजागरण लाना और साम्राज्यवाद से मुक्ति। ''मैंने तो जर्नलिज्म में साहित्य को स्थान दिया है। मैंने उसके द्वारा सरकार की कठोर आलोचना की है। जब राजाओं और प्रजाओं की लड़ाई रियासतों में चलती थी तब प्रजा का सहायक था। पर ब्रिटिश सरकार और राजाओं की लड़ाई में राजाओं का सहायक रहा हूं।''

आज की पत्रकारिता माखनलाल जी से बहुत कुछ सीख सकती है। हिंदी का मुफ्तखोर पाठक भी उनसे सही दिशा पा सकता है। हिंदी का पाठक अखबार खरीदकर नहीं, मुफ्त पढ़ना चाहता है। ''रोटी कपड़े, शराब और शौक की चीजों का मूल्य तो वह देता है, पर ज्ञान और ज्ञान प्रसाधन का मूल्य चुकाने को तैयार नहीं। हिंदी का सबसे बड़ा शत्रु यही है। उदाहरण के लिए मराठी के पत्र लखपतियों के हाथों में नहीं गए; तमिल, तेलुगु और कन्नड़ के पत्र नहीं गए परंतु हिंदी के दैनिक पत्र गए। और यह सब इसलिए किया गया कि जब हिंदी के पत्र ब्रिटिश साम्राज्य का मुकाबला कर रहे थे तब मित्र याने पाठक सामने नहीं आए। आज भी कुछ पत्र जीवित हैं तो मनस्वियों की दृढ़ता से। दुःख है कि सारे क्रांतिवाद, प्रगतिवाद और न जाने किन-किन वादों के रहते हुए भी हमने अपनी इस महान कला को प्रायः पूंजीपतियों के चरणों में अर्पित कर दिया है।'' हिंदी पत्रकारिता के इतिहास में ''कर्मवीर'' का इतिहास सबसे उज्जवल है। तप और त्याग, बल और स्वाधीनता का वह प्रतीक है। उन्होंने ''कर्मवीर का जन्म'' में लिखा है ''राष्ट्र की सेवा के सम्मुख किसी दल विशेष का कोई पक्ष हमारे पास न होते हुए भी, हमारे सामने असहयोग जीवन का एक हिस्सा, जरुरत की आवश्यक पूर्ति और राष्ट्रीयता का एक अग्रगामी स्वरुप है। शासन प्रणाली के पापों और अत्याचारों से झगड़कर किसी भी अन्य देश के हमें पराधीन बनाए रखने वाले मीठे और कड़वे, सादे और तीक्ष्ण सब प्रकार के संबंधों को तोड़ना, अपनी तथा अपने देश की उस कमजोरी का अंत करना जो राष्ट्र को हानि पहुंचाकर व्यक्ति को महत्व देती है और जो हमारे आडंबर, अभिमान-आकर्षण और अज्ञान को उभार हमें देश की महान शक्तियों का संयुक्तकारी और निर्माण कर्त्ता बनाने की बजाए, देश के टुकड़े-टुकड़े करने वाला साबित करती है और अपने देश की स्वाधीनता और अपने हृदय के विकास की सबलता को हर स्थान पर आगे बढ़ाना और उस स्वाधीनता को किसी भी कीमत पर भगवान का स्मरण रखते हुए बेचने को तैयार न होना, यही हमारा उद्देश्य है।''

आज तुलनात्मक दृष्टि से देखने पर पता चल जाता है कि सुभद्रा कुमारी चौहान के 'त्रिधारा' और 'कुंकुम' में जटिल भाव को सरलता से संप्रेषित करने की शक्ति तो है पर चतुर्वेदी जी जैसी परिवेश की आर्थिक-सामाजिक तड़प नहीं है। फिर नवीन जी ने हिंदी की राष्ट्रीय धारा को गति देने वाली पत्रिका 'प्रभा' का 1921-23 ई. तक संपादन भी किया है। राजनीतिक पत्रकार के साथ वे चतुर्वेदी जी की तरह निर्भीक कवि भी हैं। उनकी राष्ट्रीयता

पर वैष्णव विचारों का प्रसार है और स्वच्छंदंतावादी आंदोलन की ईमानदार पुकार। वे नारी-जागरण को 'उर्मिला' महाकाव्य में वाणी देते हैं और 'कुंकुम' की कविताओं में देश के यौवन का तेज प्रस्तुत करते हैं। स्वाधीनता के बाद 'रश्मिरेखा', 'अपलक' और 'क्वांसि' संग्रह प्रकाशित हुए और 'विनोवास्तवन' भी सामने आया। गणेश शंकर विद्यार्थी के बलिदान पर 'प्राणार्पण' खंडकाव्य लिखा। 'हालावाद' की पहली फुहार भी नवीन पर ही गिरी है और राजनीति का कठोर यथार्थ उनकी चेतना में नए रुप धारण करता है।

मुझको छेड़ो मत इतिहासों के पन्नों मैं मति धीर हुआ
आज खड़क की धार कुंठिता है खाली तूणीर हुआ।

नवीन में आवेग और विस्फोट अधिक है, पर माखनलाल में बुंदेला शक्ति एवं स्वाभिमान की गरमाहट का तेज। माखनलाल ऐसे परिवेश में पैदा हुए थे जिसमें बीसवीं शताब्दी का स्वाधीनता आंदोलन मुक्ति के लिए अंगड़ाई ले रहा था। युग की वेदना का उन्होंने सीधे साक्षात्कार किया और आत्मालोचन करते हुए देश के ऐतिहासिक व्यक्तित्व का अन्वेषण। भारतीय इतिहास के मोड़ पर इतिहास की प्रक्रिया का अनुभव माखनलाल को बेधता है। इतिहास के कारवां की वे आहट सुनते हैं और बोल्शेविज्म की क्रांति से नया विचार दृश्य। एशिया का नवजागरण और तुर्क नेता मुस्तफा कमाल पाशा पर उनकी दृष्टि केंद्रित है। 1775 ई. की अमेरिकी स्वतंत्रता की वायु भी माखनलाल को मथ चुकी है और ब्रिटिश शासन की लूट-उजाड़ नीति से वे कराह उठे हैं। 'गरीब अन्नदाता', 'हिंदुस्तान की साम्पत्तिक लूट', 'अंग्रेजी शासन का भंडाफोड़', 'ईद का समय', 'किसानों का सवाल', 'युरुप का नवीन रणक्षेत्र : एशिया', 'टर्की और स्त्रियों की स्वाधीनता' 'यह नादिरशाही क्यों', 'संकट किसानों के सिर पर', 'मजदूरों का गदर' जैसे अनेक निबंधों में वे भारत की दुर्दशा का वर्णन करते हैं।

दरअसल, भारतीय जनता के लोकजागरण को लेकर जो समस्या भारतेंदु एवं महावीर प्रसाद द्विवेदी की थी ठीक वही समस्या माखनलाल को मथ रही थी। इस समस्या के संकेत सुभद्रा तथा नवीन जी में सतह पर हैं—पर माखनलाल जी का पूरा व्यक्तित्व इस समस्या से ज्वालामुखी की तरह फट-फूट रहा है। भारत में किसान-मजदूर भूख से तड़प रहे हैं और अंग्रेज यहां के व्यापार और उद्योग धंधों का नाश करके देश को खेतिहर बनाकर किसानों का घोर शोषण कर रहे हैं। रेल-तार के चलन से भारत का कच्चा माल ढोकर अंग्रेज अपने देश ले जा रहा है। पर यह चौंकाने वाली स्थिति न थी सोचने के लिए विवश करने वाली स्थिति थी। उन्नीसवीं शताब्दी में भारतेंदु और उनके समकालीनों ने एशिया और अफ्रीका की जनता पर ब्रिटिश साम्राज्यवाद के पाशविक अत्याचारों की भरे हृदय से कठोर आलोचना की थी। और उनके बाद उनके सच्चे उत्तराधिकारी महावीर प्रसाद द्विवेदी, बालमुकुंद गुप्त, गणेश शंकर विद्यार्थी तथा माखनलाल चतुर्वेदी ही दिखाई देते हैं। साम्राज्यवाद तथा उपनिवेशवाद जैसे शब्दों का चतुर्वेदी जी अपने लेखन में निर्भयता से प्रयोग करते हैं और भारतीय जनता की मुसीबतों पर विचार। साम्राज्यवादियों ने भूख, गुलामी, शोषण और अन्याय की जो व्यवस्था कायम की थी रुस की बोल्शेविक क्रांति उसे उखाड़ कर फेंकने

का संकेत थी। विशेष बात यह है कि इस क्रांति का महावीर प्रसाद द्विवेदी, गणेश शंकर विद्यार्थी और माखनलाल चतुर्वेदी तीनों ने स्वागत किया है।

माखनलाल ने अपना रचना-कर्म के आरंभिक दिनों से ही राजनीतिक और आर्थिक समस्याओं पर चिंतन शुरू किया है। किसान-मजदूर की दुर्दशा पर उनकी निगाह टिकी रही है। सन 1907 ई. की 'सरस्वती' में प्रकाशित माधवराव सप्रे का लेख 'हड़ताल' उन्हें मजदूर समस्या की ओर खींच चुका था। सप्रे जी की यही सामग्री महावीर प्रसाद द्विवेदी की पुस्तक 'संपत्तिशास्त्र' में छपती है और माखनलाल जी के सृजन-चिंतन का आधार बनती है। सप्रे जी तथा महावीर प्रसाद द्विवेदी की भांति ही वे मजदूर संगठन तथा किसान-आंदोलन पर जोर देते हैं। जनार्दन भट्ट का 'सरस्वती' में प्रकाशित निबंध 'हमारे गरीब किसान और मजदूर' पूंजीपतियों की क्रूरता का नरक दिखाता था। भट्ट जी ने लिखा—'एक तरफ झोंपड़े में रहने वाला किसान, मय अपने बाल बच्चों के दो रोज से फांके कर रहा है और दूसरी ओर एक अमीर ऐय्याश अपने महलों में शराब के प्याले उड़ा रहा है। एक मनुष्य माघ-पूस के जाड़ों में ठिठुरा हुआ राम-राम करके रात काट देता है और दूसरा मखमली गद्दे पर सोया हुआ स्वर्ग का सुख भोग रहा है।' कहना न होगा कि भट्ट जी से पहले ही भारतेंदु का ध्यान किसान-मजदूरों के शोषण और अन्याय पर गया था। 'लेवी प्राण लेवी' भारतेंदु का इसी समस्या का केंद्रित लेख है। 9 मार्च, 1874 की 'कविवचनसुधा' में भारतेंदु ने लिखा—'कपड़ा बनाने वाले, सूत कातने वाले, खेती करने वाले आदि सब भीख मांगते हैं। खेती करने वालों की तो यह दशा है कि लंगोटी लगाकर हाथ में तुंबा ले भीख मांगते हैं और जो निरुपम हैं उनको तो अन्न की भ्रांति है।' भारतेंदु ने जो बात उठाई थी उसी को 'सम्पत्तिशास्त्र' की भूमिका में आ. महावीर प्रसाद द्विवेदी ने उठाते हुए कहा कि दरिद्र देवता का अभिनय किसी न किसी रूप में अवश्य ही दीख पड़ेगा। परंतु इस दुर्दमनीय दारिद्रय को देखकर भी कितने आदमी ऐसे हैं, जिनको उसका कारण जानने की उत्कंठा होती है? यथेष्ठ भोजन-वस्तु न मिलने से करोड़ों आदमी जो अनेक प्रकार के कष्ट पा रहे हैं उनका दूर किया जाना क्या किसी प्रकार संभव नहीं? गली-कूचों में जो दरिद्रता से उत्पन्न क्रंदन सुनाई देता था उस पर माखनलाल जी लिखते हैं—'जब तुम विलायती चीजें खरीदकर ला रहे थे तब तुम्हें पता न था कि तुम अपने लिए मौत खरीद कर ला रहे हो। किसानी पर जीने वालों की तादाद बढ़ा रहे हो और अपने भाग्य को फोड़ने का सामान इकट्ठा कर रहे हो और कलियुग के लिए दरवाजा खोल रहे हो। जब सबके बंधने-बोरिए खेती पर ही हो गए, तब बताओ, तुम्हारे पास बचत कहां से हो? और इतने बेकारों का पालन बिना कलाओं से धन उपजाएं, अकेली खेती कैसे कर सके? इसके पश्चात तुम्हारा उपजाया हुआ अनाज देश से बाहर भेज दिया जाता है, तुम एक सेर रुई का दाम एक रुपया लेकर जो रुई विदेश को भेजते हो; वहां उस रुई के कम-से-कम दो जोड़ी धोती बनती हैं, जिन्हें तुम दस रुपये में खरीदते हो। इसका मतलब यह हुआ कि तुमने अपनी एक रुपये की रूई दस रुपये में खरीदी। जानते हो, यह नौ रुपये कहां चला गया। यह विलायती जुलाहों की मजदूरी और विलायती व्यापारी के मस्त मुनाफे में चला गया।' (गरीब अन्नदाता) किसानों की भुखमरी का यही रहस्य था। यही कारण है कि जब इंग्लैंड में औद्योगिक विकास होता है औद्योगिक

पूंजीवाद पनपता है और औद्योगिक क्रांति होती है तब भारत में देहातीकरण बढ़ता है, खेतिहर समाज में दरिद्रता का तांडव नृत्य बढ़ता है। ध्यान रहे कि माखनलाल के सृजन-कर्म की भूमिका साम्राज्यवाद; उपनिवेशवाद विरोधी है। उनमें भारतीय सामंतवाद की नवीन धुरियों का विरोध कायम है। ऐसी स्थिति के कारण उनकी चिंतनधारा का भारतेंदु, महावीर प्रसाद द्विवेदी, बालमुकुंद गुप्त, गणेश शंकर विद्यार्थी, माधवराव सप्रे से पूरा तालमेल है। काव्य में मैथिलीशरण गुप्त की भांति किसान-मजदूर आंदोलन की आवाजें आती हैं और उनका गांधीवाद, करुणावाद का पर्याय बन जाता है। शोषण, अन्याय के विरोध में उठना ही निराला और प्रेमचंद की भांति माखनलाल की विश्व दृष्टि है। सुभद्रा जी का निबंधकार रूप सशक्त नहीं है जबकि माखनलाल का निबंधकार रूप आ. महावीर प्रसाद द्विवेदी की भांति नवजागरण की विचारधारा से भरा पड़ा है। माखनलाल से 'साहित्य देवता' तक का अभी सही मूल्यांकन होना शेष है। उनका गद्य तो अभी श्रीकांत जोशी के अथक परिश्रम से उपलब्ध हो पाया है, जिसका भविष्य मे मूल्यांकन होगा। जब कभी उनका मूल्यांकन होगा माखनलाल जी के निबंधों का समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र और राजनीतिशास्त्र महत्वपूर्ण निष्कर्ष सामने लाएगा।

माखनलाल, सुभद्रा कुमारी चौहान तथा बालकृष्ण शर्मा नवीन के सृजन की एक समान भूमि यह है कि ये तीनों ही रीतिकाव्य और रीतिशास्त्र से अलग रहते हैं। चतुर्वेदी जी की प्रसिद्ध कविता 'पुष्प की अभिलाषा' देशभक्ति और राष्ट्रीयता के साथ रीतिवाद के प्रति प्रबल विरोध-विद्रोह की कविता है। पर रीतिवाद की विरोधी कविता के रूप में इस पर चर्चा कम हुई है जबकि देशभक्ति के लिए यह बार-बार गाई जाती रही है—

चाह नहीं मैं सुरबाला के गहनों में गूंथा जाऊं,
चाह नहीं प्रेमी माला में विंध प्यारी को ललचाऊं,
चाह नहीं सम्राटों के शव पर हे हरि डाला जाऊं,
चाह नहीं देवों के सिर पर चढ़ूं भाग्य पर इतराऊं,
मुझे तोड़ लेना वनमाली उस पथ में देना तुम फेंक,
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने, जिस पथ जावें वीर अनेक।

पूरी कविता परंपरागत रीतिवाद के 'सुरबाला', 'प्रेमी माला', 'सम्राटों के शव', 'देवों के सिर' जैसे प्रधान प्रतीकों पर खुला प्रहार करती है और नवजागरण की प्रत्यंचा पर मातृभूमि वंदना की लोकानुभूति का शक्ति बाण चढ़ाए मिलती है। इस नवजागरण की काव्यानुभूति में बंकिम का 'वंदेमातरम' गीत भी ध्वनित हैं और दादाभाई नौरोजी, तिलक, माधवराव सप्रे और गणेश शंकर विद्यार्थी का वैचारिक क्रांतिमूलक आधार भी। फिर दिलचस्प बात यह भी है कि इस रचना-यात्रा में मालियों को क्यारियों से उपजे फूल नहीं है, वनखंडों की घाटियों, खण्डहरों में उगे प्रकृत-भाव के सुमन हैं जिनकी नैसर्गिकता में बनावटीपन का हस्तक्षेप नहीं है। फूलों का यह संसार एकदम उन्मुक्त है जिसमें हृदयदान का स्वच्छंद विस्फोट है। वनों के यही प्रकृत-भाव वाले फूल भारत की दुर्गा को पसंद भी हैं। 'पर्वत की अभिलाषा' कविता भी रीतिवाद का कठोर स्वर से खंडन है और भारत की

तरुण बलिदानी पीढ़ी का दस्तावेज—

तू चाहे मुझको हरि, सोने का मढ़ा सुमेरु बनाना मत,
तू चाहे मेरी गोद खोदकर मणि-माणिक प्रकटाना मत,
तू मर मिटने पर भी मुझमें ज्वालाएं बरसाना मत,
लावण्य लाड़िली वन देवी का क्रीड़ा क्षेत्र बनाना मत,
जगती तल का मल धोने को
भू हरी-भरी कर देने को
गंगा-यमुनाएं बहा सकूं
यह देना, देर लगाना मत।

इस कविता का केंद्रीय भाव है—जगती तल का मल धोने की आकांक्षा। नवजागरण की इसी लोकानुभूति के लिए माखनलाल एक अखंड प्रतीक चुनते हैं—कृष्ण। हाँ भारतीय दर्शन का पूर्णावतार कृष्ण। और कहते हैं 'वेणु लो गूंजे धरा मेरे सलोने स्याम।' इसी प्रतीक में माखनलाल का क्रांतिकारी वैष्णववाद भी झांकता है। इस कृष्ण-भाव में न तो बंगाल-परंपरा का गलदश्रु भावमयता वाला (चैतन्य प्रभु का) भक्ति-भाव है, न जयदेव के 'गीतगोविंद' और विद्यापति की कृष्ण परंपरा है। बल्कि इसमें मराठी-संतों या नामदेव तुकाराम की क्रांति-भाव धारा का स्वर ही प्रबल है। माखनलाल जी के मराठी संस्कारों पर माधव राव सप्रे के विचारों की धमक है। 'कर्मवीर' के कर्मनायक गांधी हैं। पर यह गांधी कर्म क्षेत्र में खड़े होकर ब्रिटिश साम्राज्यवाद को खुली चुनौती देते हैं। गांधी-विचार-दर्शन में माखनलाल; सुभद्रा तथा नवीन जी की अटूट आस्था है। ये तीनों ही रचनाकार गांधी को मानव-इतिहास का रथ हांकने वाला निर्भय सारथी मानते हैं।

नवीन जी पराधीनता के खिलाफ परिवर्तन-विद्रोह की आवाज 'कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ जिससे उथल-पुथल मच जाए' के स्वर में बुलंद करते हैं तो माखनलाल की ही क्रांतिकारी धारा का तेज दमकता है। माखनलाल जी इतिहास की प्रश्नाकुलताओं, चिंताओं-पीड़ाओं की नाभि टटोलकर पूछते हैं—

क्यों पड़ी परतंत्रता की बेड़ियां ?
दासता के हाथ हथकड़ियां पड़ीं ।
न्याय का मुंह बंद फांसी के लिए
कंठ पर जंजीर की लड़ियां पड़ीं।

वास्तविकता यह है कि माखनलाल, नवीन और सुभद्रा जी की रचनात्मकता अपने समय के 'मनुष्य' को परिभाषित करती है। उस मनुष्य को परिभाषित करती है जो स्वाधीनता के मूल्य के लिए संघर्ष कर रहा है और जो ब्रिटिश साम्राज्यवाद के शोषण-अन्याय का सीना तान कर विरोध कर रहा है और जो स्वाधीनता रानी के लिए अपना सिर हथेली पर लिए खड़ा है।

सन् 1920 ई. से लेकर 1940 ई. तक की विश्व राजनीति पर माखनलाल जी की

निगाह फैलती है। 'यूरोप का नवीन रणक्षेत्र : एशिया' नामक उनका निबंध इसी दृष्टि का दस्तावेज है। वे लिखते हैं—'अतः हमें देखना चाहिए कि एशिया में क्या हो रहा है। और यूरोपियन राजनीति सांप की गति से, इस समय क्या-क्या खेल कर रही है। यह सच है कि एशिया के लोग अब शांति से न रह सकेंगे। चिनगारियां दीख रही हैं और लपटें किस समय किस देश में उठ पड़ें इसका भरोसा नहीं।' भरोसा न होने का कारण है—मोसल जिले का कासवाल। एशिया कोचक, ईरान यानी मेसोपोटामिलिया और सीरिया-इन तीनों प्रदेशों से मिला हुआ तुर्क राष्ट्र था। 'अब महायुद्ध के पश्चात इराक और सीरिया इन प्रदेशों का ब्रिटिश सरकार ने अपने पिट्ठू अमरी कैजल और मुहम्मद अली को राजा बना दिया है और वह राज्य अपने अधिकार में ले लिया है। केवल एशिया कोचक तुर्कों के पास रह गई है जिसे कमाल पाशा ने जीतकर; वहां प्रभुसत्ता कायम की है, जो तुर्क राष्ट्र के नाम से आजकल जाहिर की जाती है और जिसके साथ मोसल के सवाल पर; अंग्रेजी सरकार आजकल झगड़ रही है। अंग्रेजी साम्राज्यवाद के शोषण के सांप की जीभ कैसे एशिया को चाट रही थी इसका चित्रण माखनलाल ने जगह-जगह किया है। वे एशिया की एकता के लिए बार-बार अपील करते हैं। 'हम महान एशिया के एक खंड मात्र हैं और भौगोलिक दृष्टि से ही नहीं राष्ट्रीय दृष्टि से हमारा हमारे देशवासियों, पड़ोसियों और हित-चिंतकों से गहरा संबंध है। अतः हमें देश को दो टुकड़ों में रखने वाली ताकत के भुलावे में न भूलकर, संसार में हमारी हालत क्या होगी इसपर विचार करना चाहिए और राष्ट्र का निर्माण कर, एशिया की आजादी का हिस्सेदार बनना चाहिए। सारे यूरोप और संसार के राष्ट्र एशिया के लिए लड़ेंगे और अपना जन और धन बरबाद करेंगे।' यह कथन मानो मानव मुक्ति का घोषणा पत्र है।

अंग्रेजी शासन में भारत ने एक नवीन सामंतवाद को जन्म दिया। राजाओं को अंग्रेजों ने चाटुकार बनाया और जनता का जीना हराम कर दिया। 'रियायती चैन गदर का आमंत्रण है।' उनका एक ऐसा निबंध है जो इसी स्थिति से साक्षात्कार कराता है कि अंग्रेज कहते तो यह थे कि हम तुम्हें सभ्य बनाने आए हैं। लेकिन वास्तविकता यह थी कि वे हमारी सांस्कृतिक धरोहर को गर्व की वस्तु न समझते थे और हमें सांस्कृतिक दृष्टि से उजाड़कर अपना पिछलग्गू बनाना चाहते थे।' इस समय अनेक भारतीय चिंतकों की भांति माखनलाल जी ने डटकर लिखा और हमें असभ्य कहने वाली साम्राज्यवादी परंपरा का खंडन किया। अंग्रेजों तथा राजाओं के बीच जो चल रहा था उसका एक चित्र देखिए—'किंतु अब यूरोप हमारे राजा-महाराजाओं का नाटक-घर बन रहा है। विदेशों में जाने पर ब्रिटिश साम्राज्यवादी हमारे देशी नरेशों का कीर्तिगान करते हैं। क्योंकि वे जानते हैं कि संकट के समय हिंदुस्तान को कुचलने के लिए यदि कोई ताकत काम आ सकती है तो वह देशी नरेशों की ही है। इधर देशी नरेश सोचते हैं कि हमारी डोरी अंग्रेजी राज्य के हाथ में है, यदि वह खुश है तो फिर हमें किसी की क्या परवाह?' यहां के मदमस्त राजा लोग मनमाना राज्य-कर वसूल करवाते हैं। 'इस अवस्था की आयर्लेंड से तुलना कर, अमरीका का 'करेंट ओपिनियन' नामक पत्र लिखता है—आयर्लेण्ड की सारी जमीन अपने कब्जे में लेकर उसके अंग्रेज जमींदार इंग्लैंड में रहते थे और उनके अधिकारी आयरिश किसानों से अपनी मालगुजारी

वसूल किया करते थे। इस व्यवस्था के खिलाफ आयलैंड के किसानों ने गदर किया। इन सदा विलायत में रहने वाले और जायदाद से गैर हाजिर ब्रिटिश जमींदारों की तरह भारत के महाराजा भी विलायतों में घूमा करते हैं और उनके अधिकारी प्रजा से राज्य कर चूसा करते हैं और यह संग्रहीत धन महाराजाओं के चैन उड़ाने में खर्च होता है। यदि भारतीय किसान भी आयर्लैण्ड के मार्ग का अनुकरण करें तो कैसा हो? देखने में यह प्रश्न डर बना हुआ है पर महत्व का है।' भारत का किसान आंदोलन एकजुट होकर ब्रिटिश साम्राज्यवाद और भारतीय राजाओं के खिलाफ युद्ध का हल्ला बोल दे। यह माखनलाल जी की दिली इच्छा है। भारतेंदु की लोकजागरण परंपरा के रक्षक और संवर्द्धक माखनलाल को ऐसा सोचना शोभा भी देता है। हिंदी का रचनाकार जनता के हृदय से कैसे अपना हृदय मिलाकर आगे बढ़ा है। माखनलाल जी की विचार-यात्रा से यह बात उद्धृत की जा सकती है। उनका यह कथन महत्वपूर्ण है कि 'और यदि भारतीय नरेशों ने अपने व्यवहारों को न तो बदला स्वयं राज्यकर्त्ता गण भी उनके सिंहासनों को हिलाने से बचाने में असमर्थ होंगें। कहां तो गांधी से सीखकर, अमल में लाई हुई देश के गरीबों की सादगी और उसके खिलाफ राजाओं के ये भोग विलास। यह भयावह अंतर क्रांति को सीधा आमंत्रण है।' देशी नरेशों की हालत और भारतीय जनता की तबाही का जो चित्र माखनलाल ने खींचा है वह हृदय हिला देने वाला है।

भारतीय जनता और नरेशों की इसी समझ के कारण चतुर्वेदी जी भक्त कवियों और रीतिवादी कवियों को एक-दूसरे से अलग करके देखते हैं। देव-बिहारी-मतिराम में न रमकर वे 'सूर-तुलसी-कबीर' में रमते हैं और नवजागरण के अग्रदूत भारतेंदु को आदर्श मानते हैं। उनके सामने साफ है कि हिंदी के आधुनिक साहित्य की नवीन दृष्टि रीतिवाद का विरोध करके ही राह बना सकती है। इसीलिए यह स्वाभाविक था कि वे भक्त कवियों और भारतेंदु की परंपरा से अपना सीधा रिश्ता कायम करें। परंपरा का मूल्यांकन कैसे करना चाहिए इसका बहुत अच्छा उदाहरण 'साहित्य देवता', 'अमीर इरादे गरीब इरादे' के गद्य-संग्रह और 'कर्मवीर' के अनेक निबंधों में मिलता है। इस गद्य में विचारों का संग्राम सक्रिय रुप से दृष्टिगत होता है।

काव्य के क्षेत्र में भी उनका गद्य बराबर प्रवेश करता रहता है। इस काव्य में विशुद्ध कलावाद, भाववाद, सौंदर्यवाद के लिए कोई स्थान नहीं है। पूरा जोर इस बात पर है कि कविता समय, समाज और मनुष्य को बदलने का साधन है। इस क्षेत्र में उनकी तुलना भारतेंदु, महावीर प्रसाद द्विवेदी, मैथिलीशरण गुप्त से करनी चाहिए तभी पता चलेगा कि उनकी कविता के प्रगतिशील मूल्य कितने क्रांतिकारी रहे हैं। जैसे ब्रिटेन के जनतंत्र बनाम जमींदार तंत्र के विरुद्ध कवि शैली उठ खड़े होते हैं वैसे भारतीय जमींदार तंत्र, पुलिस तंत्र के खिलाफ माखनलाल तीव्र संघर्ष करते हैं। 'कैदी और कोकिला' उसी तंत्र के खिलाफ विद्रोह का ऐतिहासिक स्वर है। जैसे रोमांटिक कवियों ने पश्चिम में उस चिंतन की धज्जियां उड़ा दी थी जिसे अरस्तू और लैटिन चिंतकों ने स्थापित किया था। वैसे ही हिंदी के इन आधुनिक स्वच्छंदतावादी कवियों ने रीतिवादी चिंतन को ध्वस्त करते हुए कालिदास, भवभूति, कबीर, तुलसी का साथ देकर विचारों के नवीन क्रांतिधारा को आगे बढ़ाया। माखनलाल,

सुभद्रा कुमारी चौहान, नवीन, दिनकर, भगवतीचरण वर्मा, केदारनाथ अग्रवाल इसी परंपरा के संवाहक नाम हैं। यह क्रांतिधारा या देशी स्वच्छंदतावाद द्विवेदी युग और छायावादी युग के समानांतर विकसित होकर प्रगतिवाद तथा नयी कविता के युग तक लगातार पनपता-बढ़ता रहा। छायावाद-प्रगतिवाद से आगे की कविता इसी क्रांतिधारा की पूरक कविता है। इसी दृष्टि को हम मुकुटधर पाण्डेय, रुप नारायण पाण्डेय, प्रसाद और निराला, केदारनाथ अग्रवाल और मुक्तिबोध में भी सक्रिय पाते हैं।

भारतेंदु-युग के बाद द्विवेदी-युग में संगठित रुप से भारतीय नवजागरण अपनी जातीय-अस्मिता को पहचान दे रहा था और छायावाद स्वच्छंदतावाद इसी पहचान को नए काव्य मुहावरे में परिभाषित कर रहा था। माखनलाल जी के आसपास के सहयोगियों में विशेषकर नवीन जी में यह पहचान काफी साफ दिखाई देती है। रस, भाव, अलंकार, छंदशास्त्र, नायिकाभेदशास्त्र जो रीतिशास्त्र की रीढ़ हैं उन्हीं पर चतुर्वेदी जी और उनके सहयोगी निरंतर प्रहार करते हैं। सुभद्रा जी 'सिंहासन हिल उठे' ऐसे ही नहीं कर रही थी। उस कथन के पीछे उनके ऐतिहासिक-बोध का अस्तित्व और व्यक्तित्व भी पुकार रहा था। सत्याग्रह-युग के फक्कड़ साधक नवीन जी की वीणा से चिनगारियां ऐसे ही नहीं फूट रही थी एक पूरा काव्यानुभव इतिहास की शक्तियों से मुकम्मल हो रहा था—

सावधान मेरी वीणा में चिनगारियां आन बैठी हैं
टूटी है मेहरावें युग अंगुलियां यह मेरी ऐंठी हैं।

माखनलाल, सुभद्रा कुमारी चौहान तथा बालकृष्ण शर्मा नवीन के गद्य-पद्य की तुलना करने पर पाते हैं कि चतुर्वेदी जी का चिंतनात्मक आयाम इन दोनों से बहुत बड़ा है। तुलना करनी हो तो चतुर्वेदी जी के राजनीतिक, साहित्यिक और विविधापरक गद्य-पद्य की तुलना भारतेंदु और महावीर प्रसाद द्विवेदी से की जा सकती है। छायावाद के रचनाकारों में उनकी तुलना निराला जी से की जा सकती है। डॉ. रामविलास शर्मा की इस स्थापना को ठीक मानकर चलें कि 'छायावाद-साम्राज्यविरोधी चेतना के निखार का साहित्य है।' तो निराला और माखनलाल की तुलना कई महत्वपूर्ण नतीजे सामने लाती है। यह भुलाने की बात नहीं है कि माखनलाल ने छायावाद की आरंभिक भूमिका निर्मित की है और स्वाधीनता आंदोलन के कई पक्षों पर चिंतन किया है। इस दृष्टि से वे इस युग के प्रतिनिधि कवि, पत्रकार, निबंधकार, नाटककार और गद्य-निर्माता हैं। उनके गद्य-पद्य मे तत्कालीन किसान-मजदूर आंदोलनों का क्रांतिकारी इतिहास मौजूद है जो आज भी प्रासंगिक है। बालकृष्ण शर्मा नवीन मजदूर-पार्टी के कानपुर में नेता थे पर माखनलाल हिंदी प्रदेशों के किसान-मजदूर संघर्ष का इतिहास प्रस्तुत करने वाले कर्मवीर योद्धा। माखनलाल और निराला जी के व्यक्तित्व में डॉ. रामविलास शर्मा ने जो महत्वपूर्ण समानताएं 'निराला की साहित्य साधना' भाग-3 में श्रम से खोजी हैं वे नवजागरण के नए पथों पर प्रकाश डालने वाली हैं। 'कर्मवीर' में (प्रताप सिंह नाम से) चतुर्वेदी जी की उनकी कृति 'अलका' पर जो आलोचना छपी है, उसके लिए निराला जी ने लिखा है 'हृदय को बल मिला'। बल इसलिए मिला कि निराला जी माखनलाल जी की समझ और सूझ-बूझ के कायल हैं। निराला ने कहा—'मूल्यांकन सम्मति मानकर

चलने का प्रयत्न करुंगा।' निराला पर 'संगम' में चतुर्वेदी जी ने लिखा है कि

आ तेरी जीवित मौतों पर जीने का त्यौहार बना दूं,
सूझों के मंदिर के गायक, तेरी कीर्ति रागिनी गा दूं।

उन्हें निराला की समाधि से प्रेरणा की सुगंध आती है, यह उचित ही है।

माखनलाल जी ने 'श्रीमानों', 'रइसों' पर नहीं लिखा, गरीबों, श्रमिकों, किसानों और यतीन्द्रनाथ जैसे क्रांतिकारियों पर लिखा है। सन 1916 ई. में 'कृष्णार्जुन' युद्ध नाटक उनके समाजवादी विचारधारा के संकेत देता है, जबकि हिंदी साहित्य मे यह विचारधारा सन् 1930 ई. के बाद आई। चतुर्वेदी जी का 'कर्मवीर' जनवरी 1920 में निकला। पर, उसे 'प्रताप' तथा 'हिंदी प्रदीप' की स्मृति ताजा थी। उन्होंने साम्राज्यवाद विरोधी पत्रकारिता को पहचानकर लिखा 'वह आवाज प्रताप की ही थी जिसने 'हिंदी प्रदीप' और 'कर्मयोगी' के द्वारा किए जाने वाले जागृति के आरंभिक पथ को अपनी कार्यशैली के बल पर विस्तृत बनाया।' राष्ट्रीय जागृति के पथ पर चलने वाले पत्रों में सुंदरलाल जी के 'कर्मयोगी' माधवराव सप्रे के 'हिंदी केसरी' तथा बाबूराव विष्णु पराड़कर से 'हितवार्ता' का उल्लेख भी वे ध्यान से करते हैं। गणेश शंकर विद्यार्थी ने 'प्रताप' में क्रांतिकारी भगतसिंह को अपना सहयोगी बनाया तथा रामप्रसाद बिस्मिल की आत्मकथा छापी थी। माखनलाल भी युवा क्रांतिकारी थे। उन्होंने लिखा है '1905 से मैं क्रांतिकारी था और उस समय तक रहा, जब तक हिंदू यूनिवर्सिटियों की पुण्य शिला रखने के लिए गांधी जी वहां पर आए और कितने ही राजा बगैरा आए थे। 'पुण्यशिला किसने रखी थी, मुझे याद नहीं, परंतु गांधी जी का भाषण हुआ था कि 'तुम, मुझे पिस्तौल दो, मैं तुम्हें स्वराज्य दूंगा। मेरे साथ ग्यारह बंगालियों ने अपनी पिस्तौलें दे दी थी' (खंड-3 पृष्ठ 86)

कभी-कभार 'प्रताप' में विद्यार्थी जी छायावादी ढंग का गद्य लिखते थे और प्रायः माखनलाल और नवीन जी छायावादी ढंग की कविताएं'। क्रांतिकारी विचारधारा की दमक लेकर 'प्रभा' के अंक का संपादन नवीन जी ने किया। जिसमें 'एक भारतीय आत्मा', सुभद्रा कुमारी चौहान, प्रेमचंद, उग्र और नवीन की रचनाएं निकली थीं। छायावादी ढंग की रचनाएं 1913 ई. में निकलने लगीं थीं यह बात आ. रामचंद्र शुक्ल ने 'हिंदी साहित्य के इतिहास' में स्वीकार करते हुए लिखा—'चित्रमयी, कोमल और व्यंजक भाषा में नए ढंग की रचनाएं सं. 1970-71 से ही निकलने लगी थी।' ध्यान रहे छायावाद के इस आरंभ में क्रांतिधारा के कवियों का सीधा हाथ था।

माखनलाल जी कृष्ण के भक्त और वैष्णव संस्कारों में ढले व्यक्ति थे। पर उनकी वैष्णव संस्कार भावना में लिजलिजापन न था। समस्त लाड़-प्यार के बावजूद यदि कोई मुझे छेड़ता तो फिर मेरे वैष्णव पद मुझे लड़ने और मारपीट करने से नहीं रोक पाते थे।' उनका क्रांतिकारी मन अनुभव करता था कि ब्रिटिश शोषण-तंत्रों की सर्वाधिक मार किसान को सहनी पड़ी है। अनेक निबंधों में माखनलाल जी ने जमींदारों, ताल्लुकेदारों द्वारा किसानों से 'जबरन वसूली' की चर्चा की है। बाबा रामचंद्र और अवध के किसान आंदोलन को माखनलाल जी ने निर्भयता से जनता के सामने लाने में कोई प्रयत्न बाकी नहीं छोड़ा है।

साम्राज्यवादी ताकतों की काली करतूतों को उघांड़ते हुए लिखा है—

1. अवध के दुभांशी किसानों के कानून में ऐसी कड़ाई है, जिससे उन्हें अपने मालिकों-ताल्लुकेदारों के जोर और जुल्म को, कानूनन सहना पड़ता है। (माखनलाल चतुर्वेदी रचनावली, खंड-9 पृ. 269)
2. दिसंबर, 1920 मास के अंतिम सप्ताह में अवध के किसानों ने ताल्लुकेदारों के अत्याचारों के विषय में विचार करने और उनसे बचने के उपाय सोचने के लिए फैजाबाद में एक सभा की थी। इस सभा में कहते हैं एक लाख के करीब किसान एकत्र हुए थे। देश में यह पहला दिन था जब अपने दुःख दर्दों पर विचार करने के लिए एक लाख किसान इकट्ठे हुए थे और यह इकट्ठा होना उन लोगों के लिए बहुत बुरा था जो सजाधारी सरकारी या जमींदार कहलाते थे और जिनके व्यवहार ही किसानों के कष्ट हो रहे हैं। उस समय के उपदेशों और आदेशों के कारण किसानों में वह जागृति पैदा हो गई थो जिसकी आशा कभी नहीं जाती थी। (वही, खंड 9/269)
3. दूसरे दिन ता. 7 जनवरी को मुंशीगंज में किसान लोग एकत्र हुए और अपने मुखिया नेता 'बाबा' (बाबा रामचंद्र) को देखने के लिए जेल की ओर से जाने लगे। उन्हें पुलिस ने उधर जाने से मना किया। जब किसान आगे बढ़े तब पुलिस तथा मिलिटरी ने गोली चला दी। सरकारी रिपोर्ट कहां तक सच्ची होगी, यह बात पंजाब के हत्याकांड की रिपोर्ट और कांग्रेस से जांच की रिपोर्ट की तुलना से समझी जा सकती है तथापि उसी को मान लेने पर यह प्रकट होता है कि 9 आदमी मार डाले गए तथा उनसे दूनों को जख्मी करके सदा के लिए संसार में अनुपयोगी बना दिया गया।" (वही खण्ड 9/269)
4. अवध के किसान जाग चुके हैं। पूंजीपति सरकार ताल्लुकेदारों की सहायता करती है और करेगी क्योंकि उसके जीवन की जड़ मजबूत बनाए रखने में पूंजी वालों की बड़ी भारी सहायता है। सरकार के लोहे के हाथ अब जख्मी भी करें, तो भी किसानों पर अत्याचार किया जाना अब अधिक दिनों तक जारी नहीं रह सकता। किसानों के संगठन में शक्ति है, वह अटूट शक्ति जिसके सामने नाइल को रुकना और हिमालय को झुकना पड़ेगा। (9/272)
5. बाबा रामचन्द्र की गिरफ्तारी पर लिखा—'सरकार हमारी शांति, धैर्य और अहिंसक वृत्ति का नमूना अन्य स्थानों के समान बनारस में देख चुकी है जबकि उसके नौकरों ने हजारों की सभा में महात्मा गांधी के सामने श्रीयुत रामचंद्र महाशय को गिरफ्तार करके भारी शिकस्त खाई जबकि कोई भी गड़बड़ न हुई। तो भी नौकरशाही के नौकर बाबा रामचंद्र के मुकदमे के लिए पूरी बटालियन और दो सौ सशक्त सिपाही चाहते हैं' (9/29)

जाहिर है कि देश में उभरते किसान आंदोलन में माखनलाल जी की गहरी दिलचस्पी थी। ऐसी दिलचस्पी कि उन्हें लगता था कि किसानों की संगठन शक्ति ही ब्रिटिश साम्राज्यवादी शक्तियों को यहां से खदेड़ सकती हैं। चतुर्वेदी जी, सुभद्रा कुमारी चौहान और नवीन जी के गद्य-पद्य को चाहे जिस भी नजर से देखें, घूम-फिर कर एक ही बात मन में एक समग्र बिंब के रुप में उभरती है कि इन तीनों का ही सृजन-चिंतन सत्याग्रह युग की प्रत्येक धड़कन

का जीवंत इतिहास है। इन सभी के सामने एक ही मूल प्रश्न है—मानव-मुक्ति। मानव-मुक्ति की इसी चेतना ने इस सृजन में ब्रिटिश साम्राज्यवाद को खदेड़ देने का जन-संकल्प दोहराया है। 'स्वाधीनता' को प्राप्त करने की चेष्टा राजनीतिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक तीनों ही स्तरों पर काव्य-मुहावरे की तगड़ी अनुगूंज छोड़ती है। फलतः स्वाधीनता इनके लिए जीवंत मूल्य-बोध है वह महज इतिहास-बोध का हल्का संकेत नहीं है। इस जीवंत मूल्य-बोध में जनता की दुखती-कसकती पहचान है। साथ ही इस पहचान में जीवन-वास्तव की कटु सच्चाइयों का पोढ़ापन है, जिसे 'सत्याग्रह-युग' की भावुकता कह कर नहीं टाला जा सकता। इन रचनाकारों की दृष्टि वस्तुपरक और वर्तमान पर है। ये कवि साम्राज्यवादी यातनाओं को झेलकर भी पराजय-बोध का राग नहीं अलापते, बल्कि जेल तथा अन्य यातनाओं से और अधिक शक्ति प्राप्त करते हैं। यही कारण है कि इनकी आस्था का अडिग हिमालय हमें आज भी शक्ति देता है। चतुर्वेदी जी के काव्य-टोन में अपार साहस है :

1. आने दे मुझपर मेघों की घोर घटा घिर आने दे
   जल ही नहीं उपल भी उसको लगातार बरसाने दे।

2. मैं जोर मारता लगा पेट पर जुआं
   खाली करता हूं ब्रिटिश अकड़ का कूंआ।
   (चतुर्वेदी जी)

3. जाओ रानी याद रखेंगे यह कृतज्ञ भारतवासी,
   यह तेरा बलिदान जगा देगा स्वतंत्रता अविनाशी।
   (सुभद्रा कुमारी चौहान)

इस स्वतंत्रता के मूल्य के लिए वस्तुपरक दृष्टि रखने के कारण आहत होकर भी न झुकने का अभिमान और तब तक सब कुछ झेलने का धैर्य जब तक अंधेरी रात कटकर सवेरा न हो जाए। स्वाधीनता-संग्राम के तन्मय क्षणों की कथा कहते-कहते इनका स्तर उदात्त हो जाता है और अनेक लोक-लयों के प्रयोग के साथ इनकी लोक-संवेदना प्रकाशित हो उठती है। प्रयोगवाद और नयी कविता के दौर में प्रयोगधर्मिता का जो हल्ला मचाया गया उसे समझने के लिए चतुर्वेदी जी के सृजन-कर्म पर निगाह डालनी होगी। देखने-खोजने पर पता चलेगा कि वे अनेक लोक-लयों के प्रयोग में माहिर है और प्रयोग कविताओं की सतह पर ही नहीं, कविताओं के भीतर भी करते हैं।

दरअसल, इन सृजन का मूल स्वर गहरे अर्थों-संदर्भों में जुझारू है। इस स्वर में संकल्पों की आग भी है और जन-मानस की अपराजेय जीवट भी। क्रांति की पुकार में गंभीर विचारों का संयम है और भ्रष्ट व्यवस्था की ईट से ईट बजा देने वाली निर्भय ललकार का तेज भी है। समय के अहसास काव्यानुभवों में निराशा के चिन्ह छोड़ सकते हैं पर हताशा या अस्तित्ववादी हताशा की छाया और छूत से यह सृजन दूर है। इसलिए यह सृजनानुभव खास अर्थों में 'भारतीयता' की वह पहचान है जिसपर पश्चिमी चिंतन का मैल जम नहीं सका है। फिर एक मानवीय करुणा की पुकार से यह सृजन मानव-संघर्ष की

जयगाथा है।

प्रश्न उठता है कि आज ऐसा क्या है इस सृजन में जो आज भी अर्थवान है और जो आकृष्ट करता है? सत्याग्रह युग की अपराजेय संकल्प शक्ति और अन्याय के विरुद्ध खड़े होने की क्षमता। इस दृढ़ता के पीछे कोई किताबी दर्शन नहीं है, बल्कि यह अपने इतिहास-भूगोल की धुरियों से उपजा है। इसमें पूरी परंपरा बिंधी हुई है, जिसमें हमारे पुरखे बोलते हैं, कभी रामायण की भाषा में कभी महाभारत की भाषा में, कभी उपनिषद के चिंतन में।

उपनिषदों का परम तत्व, राधा से खेल रहा बच्चा है,
यह रहस्य कितना सच्चा है।

यहाँ अस्तित्व के गहन रागात्मक स्तरों पर जीवन खिलखिलाता है। इस रचनाकर्म में कवि ही कविता नहीं करता—उसका पूरा इतिहास अपने जीभ से बोलता है 'स्वाधीनता'। फलतः यह कविता लोकजागरण के 'अनुभवों' की पुनर्रचना है। 'कला' का कौशल नहीं है। जिस सामाजिक-राजनीतिक स्थिति-परिस्थति को रचनाकार वस्तु बनाता है, उसमें भोगे हुए जीवन का रंग है। कवि का काव्य-स्वर अनिश्चय, संशय और अंतर्विरोधों का डगमगाता स्वर नहीं है। न तो यहां संशय की रात है न अंधा युग। यहां तो गीता का कर्म दर्शन है। इस कविता में खड़ी बोली की रचनात्मक ऊर्जा ब्रजभाषा काव्य के सांचे को तोड़कर बाहर निकल पड़ी है। इस भाषा का अनगढ़पढ़ ही उसकी रचनात्मक शक्ति है। अज्ञेय जी अपने माखनलाल वाले संस्करण में भाषा की इस अनगढ़ता को उनकी शक्ति मानते हैं यह ठीक है। लोक-भाषा का अवरुद्ध प्रवाह नर्मदा बनकर यहां प्रवाहित है, जिसकी रगड़ से पत्थर शिव बनता है। इसी लोक संवेदनपरक भाषा परंपरा को प्रगतिवाद तथा नयी कविता में मुक्तिबोध और भवानी प्रसाद मिश्र फिर से गहते हैं और नए ढंग से रचते हैं। आज हमें नयी कविता की काव्य-भाषा पर इन कवियों के प्रभाव को पहचानना चाहिए, जिसे अभी पहचाना नहीं गया है। यह जग जाहिर है कि चतुर्वेदी जी और नवीन जी दोनों ही भवानी प्रसाद मिश्र, अज्ञेय, गिरिजा कुमार माथुर को बेहद आकृष्ट करते रहे हैं और इनकी काव्य-भाषा पर इन दोनों कवियों की सीधी छाप है।

इस अनगढ़ काव्य-भाषा में जन संवेदना का जो रक्त बोलता है उसके लिए आपको लोक-जागरणवादी खड़ी बोली काव्य परंपरा की नब्ज पर हाथ रखना होगा। कहीं भी चतुर्वेदी जी, सुभद्रा जी या नवीन की काव्य भाषा, भाव के तगड़े से तगड़े झटके से बिखरने वाली भाषा नहीं है। यह भाषा अपनी जड़ों से रस चूसकर पुष्ट हुई है, जो झूठे अनुवाद की वैशाखियों पर टिकी इधर के बहुत से कवियों की भाषा की तरह नहीं है। मुक्तिबोध के शब्दों में कहे तो यह भूरी नहीं, खाकी वर्दी पहने काव्य-भाषा है। जिसमें भारतीय स्वाधीनता आंदोलन की आंतरिक लय का सर्जनात्मक उपयोग हुआ है। माखनलाल जी के शब्दों में—

तन में आग, आंख में मस्ती, ओठों पर मनचाही
कैसे रुकूं देश सेवा में मैं हूं एक सिपाही।

आज नयी कविता के कवि भाव-संप्रेषण को लेकर चकराते हैं पर भाव-संप्रेषण की

चतुर्वेदी जी के सृजन में कोई समस्या नहीं है। यह लोक-कंठ से निकली लोक-भाषा का नमूना है जिसमें साधारणीकरण व्यापार स्वतः घटित होता है। 'अनुभूति की ईमानदारी', 'अनुभूति की प्रामाणिकता या प्रामाणिक अनुभूति' का सवाल तब नहीं उठता। क्योंकि यह मानव के भरोसे का सृजन है। इसमें अमूर्त, अस्पष्ट, वायवीय कुछ नहीं है यह क्रिस्टल के समान पारदर्शी भाषा है। फिर यह भाषा सपाटबयानी या सरलीकरणों की भाषा भी नहीं है क्योंकि इसके भीतर भारत के कृष्ण की युवा ऊर्जा का सहज विस्फोट है। यहां काव्य नायक औसत भारतीय आदमी है और यह उसी मानव की गरिमा का काव्य है। 'वाल्मीकि का यह संदेश माखनलाल को याद है कि देवताओं पर कविता हो चुकी अब मानव की महिमा का गान करुंगा। उस मानव का गान जो झोपड़ी में रहकर महलों हो हिलाता है और नवीन राह बनाता है।

द्विवेदी युग, छायावादी युग के समानांतर माखनलाल चतुर्वेदी, नवीन, रामनरेश त्रिपाठी आदि ऐसे कवि रहे हैं जिनमें जीवन खुलकर बोला है लोक-जीवन की समस्त सौंदर्य शक्ति के साथ। इसलिए इन कवियों की रचना-प्रक्रिया का कोई रहस्यमय पक्ष नहीं है जो इनके भीतर है वही बाहर है। और जो बाहर है वही भीतर को मथकर बाहर आता है। इसीलिए समय इसमें अपना चेहरा देख सकता है।

प्रश्न उठता है और उठना भी चाहिए कि आज इस कविता का इस भोगवादी यंत्रणा के युग में मूल्य क्या है? इसका उत्तर है कि आज भी यह कविता अन्याय-शोषण-अपमान के खिलाफ मानव को खड़े होने की प्रेरणा देती है। □

एक भारतीय आत्मा की आत्मा

डॉ. विजय अग्रवाल

सत्ता द्वारा दिए गए सम्मान तथा जन-सामान्य द्वारा दिए गए सम्मान की सच्चाई और उसकी जीवंतता में बहुत अंतर होता है। व्यक्ति का कर्म घनीभूत होकर जब एक आकार ग्रहण करने लगता है, तब एक दिन समाज के मुंह से अचानक उस आकार के लिए एक संबोधन फूट पड़ता है। 'बापू', 'चाचा' तथा 'एक भारतीय आत्मा' ऐसे ही विशेषणयुक्त संबोधन हैं। ये संबोधन केवल 'विशेषण' या उपाधि नहीं हैं, बल्कि उनके पीछे उस समाज के गहरे संस्कार तथा उन संस्कारों की उस व्यक्तित्व से आंतरिक पहचान का भाव शामिल है। गांधी जी की जीवनचर्या, उनका पहनावा, उनका चिंतन-सब कुछ शुद्ध भारतीय था। उन्होंने भारतीय संस्कृति को उस समय प्रतिष्ठा दिलाई, जबकि हमारे देश पर अंग्रेजों की संस्कृति का जबर्दस्त प्रभुत्व होता जा रहा था। सूट-बूट धारियों के बीच घुटनों तक धोती पहने वह गांधी भारतीय जन जीवन का मूर्त प्रतिनिधि होता था, मानो कि कोई गांव का मुखिया बैठा हुआ हो। ऐसे व्यक्ति के प्रति मुंह से अनायास ही 'बापू' का संबोधन निकल पड़ता है। पंडित माखनलाल चतुर्वेदी को भी 'भारतीय आत्मा' का विशेषण उनके कुछ विशिष्ट गुणों के कारण मिला था।

जिस काल में माखनलाल चतुर्वेदी हुए थे, वह काल भारतीयता की पुनर्प्रतिष्ठा का काल था। एक ओर राजनैतिक स्वतंत्रता की लड़ाई जारी थी, तो दूसरी ओर मानसिक स्वतंत्रता की भी लड़ाई जारी थी। पश्चिमी देशों ने अपने अधीनस्थ देशों की अस्मिता को धुंधलाने में कोई कसर नहीं रखी थी। स्वयं को सांस्कृतिक दृष्टि से श्रेष्ठ सिद्ध करना उनकी साम्राज्यवादी नीति का एक अंग था। भारत ने इस साम्राज्यवादी नीति को समझा था। ऐसी स्थिति में यह आवश्यक था कि देश वासियों के मन में अपनी सांस्कृतिक विरासत के प्रति गर्व का भाव जागृत किया जाए, ताकि वे देश की आज़ादी के पक्ष में अंग्रेजों के खिलाफ खड़े हो सकें। दार्शनिक धरातल पर यह कार्य स्वामी दयानंद सरस्वती, अरविंद घोष तथा स्वामी विवेकानंद ने किया। राजनैतिक स्तर पर यह कार्य गोपालकृष्ण गोखले, लोकमान्य तिलक तथा गांधी जी ने किया। साहित्य के स्तर पर यही कार्य भारतेंदु हरिश्चंद्र, जयशंकर प्रसाद तथा माखनलाल चतुर्वेदी ने किया।

माखनलाल चतुर्वेदी की मानसिक बुनावट में एक द्वंद्व सा दिखाई देता है। वैष्णवी संस्कार उन्हें परिवार से मिले थे। उनका बचपन गांव की सादगी के मध्य बीता था। आत्मसम्मान तथा देश के प्रति गर्व की भावना ने उन्हें 'उग्र' बना दिया था। उनकी सहमति लोकमान्य तिलक के अधिक करीब थी। लेकिन वे गांधी जी के विचारों से भी बहुत गहरे प्रभावित थे। साहित्यिक दृष्टि से मुख्य धारा छायावाद की थी। इस प्रकार उनके मस्तिष्क के रेशे उग्रता की ताप तथा नम्रता की शीतलता में पगे हुए थे। लेकिन मानसिक जगत की इस बुनावट ने उनके चिंतन और लेखन में कहीं भ्रम उत्पन्न नहीं किया, बल्कि उसे एक

संतुलन प्रदान किया। इस संतुलन का कारण बहुत साफ है। उनके मस्तिष्क में गांधी जी की तरह अपना उद्देश्य बिल्कुल स्पष्ट था। उद्देश्य की स्पष्टता ने उन्हें कहीं भी न तो भटकने दिया और न ही कही धुंधलापन आने दिया।

माखनलाल जी के चिंतन के मूल में उग्रता का ताप ही प्रधान है। उन्होंने लिखा है कि 'मेरी धारणाओं के निर्माण में विंध्य और सतपुड़ा के नीचे के पहाड़, आड़े-तिरछे घुमाव, उनके बीहड़ नदी-नालों के कभी कल-कल स्वर, कभी चिंघाड़, उनमें मिलने वाले हिंस्र जंतु तथा मेरा पीछा करती हुई पुलिस—उनके सम्मिश्रण से ही मेरे जीवन और साहित्य का निर्माण हुआ है।' उनके इस कथन मं केवल एक ही तत्व कोमल है—'बीहड़ नदी-नालों के कभी कल-कल स्वर।' शेष सारे तत्व कठोर और डरावने हैं। उनकी दृष्टि कठोरता और उग्रता की ओर विशेष रूप से उन्मुख रही है। इसका कारण जीवन के प्रति उनके यथार्थ दृष्टिकोण का होना था। चूंकि वे एक निर्भीक पत्रकार भी थे, इसलिए उनका यथार्थवादी दृष्टिकोण और भी विकसित होता चला गया। पंडित बनारसीदास जी चाहते थे कि माखनलाल जी राजनीति को छोड़कर पूरी तरह से साहित्य साधना में लग जाएं। लेकिन माखनलाल जी इस विचार को स्वीकार नहीं कर सके। उन्होंने सेंट्रल जेल जबलपुर से उसके उत्तर में लिखा था कि "अमर साहित्य के निर्माण में सामयिकता की जरूरत नहीं है, (मैं) यह नहीं मानता।" इस सामयिकता की भावना ने ही उन्हें सामाजिक सरोकारों से गहरे रूप से जोड़े रखा। इसलिए उनके साहित्य में, चाहे वह गद्य हो, अथवा पद्य, एक ऊर्जा दिखाई देती है।

साहित्य में राष्ट्रीय चेतना को अभिव्यक्ति यद्यपि भारतेंदु युग से ही मिलने लगी थी, लेकिन उसका स्वरूप 'प्रत्यक्ष-उग्र' का नहीं था। वस्तुतः ओजस्वी साहित्य तभी अस्तित्व में आया, जबकि राजनैतिक आंदोलन में गरमवादी नेता उभरे। बाद में क्रांतिकारियों के प्रादुर्भाव का प्रभाव हिंदी साहित्य पर पड़ा। माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', सुभद्रा कुमारी चौहान, रामधारी सिंह दिनकर की राष्ट्रीय कविताएं उसी गरम दलीय तथा क्रांतिकारी पृष्ठभूमि से उपजी थीं। माखनलाल चतुर्वेदी की दृष्टि में यही उस समय की सामयिकता थी।

चतुर्वेदी जी की राष्ट्रीय भावना तथा ओजस्विता को लेकर बहुत कुछ लिखा जा चुका है। इस लेख का उद्देश्य उन्हें दुहराना नहीं है। बल्कि मूल उद्देश्य उन तत्वों की तलाश करना है, जो माखनलाल जी को 'एक भारतीय आत्मा' के रूप में प्रतिष्ठित करती हैं।

स्वतंत्रता आंदोलन के काल में तीन ऐसे व्यक्तित्व हुए हैं, जिनके शरीर में भारत के गांवों की मिट्टी की गंध समाई हुई थी। राजनीति क्षेत्र के ऐसे व्यक्ति थे गांधी तथा साहित्य जगत के ऐसे व्यक्ति थे मुंशी प्रेमचंद तथा माखनलाल चतुर्वेदी। अन्य राजनैतिक नेताओं तथा साहित्यकारों में भले ही गांवों के प्रति प्रेम की भावना मिलती हो, लेकिन वह उनके व्यक्तित्व का अटूट अंश नहीं था। गांव के लोगों तथा वहां की संस्कृति के प्रति इस गहरे लगाव की भावना ने ही एक को 'बापू' तथा दूसरे को 'भारतीय आत्मा' बनाया।

दलित और शोषितों के प्रति उनके मन में सहानुभूति की भावना आरंभ से ही थी। सन् 1916 में लिखी 'रामनवमी' कविता में उन्होंने लिखा है—

'नहीं चाहिए बने यहां का तू राजा का छौना।
दीन बंधु है तो हाजिर है, दीन कुटी का कोना।'

माखनलाल चतुर्वेदी उन रचनाकारों में थे, जिनकी आंखों में समतावादी समाज का सुनहरा सपना पल रहा था। इस बात की अभिव्यक्ति उन्होंने बहुत पहले 1918 में ही 'कृष्णार्जुन युद्ध' की भूमिका में कर दी थी। वे लिखते हैं कि "आगे चलकर पृथ्वी पर समष्टिवाद का बल बढ़ेगा। लोग प्रयत्न करेंगे कि धनवान और धनहीन का भेद मिटे। सुवर्ण तथा ऐश्वर्य से दमकते हुए महल और पास ही में छप्पर रहित झोपड़ी दिखाई न देंगे। महल तोड़े जावेंगे, झोपड़ियां हवेलियों में परिणत की जावेंगी, धन और धरती का संसार के सभी मनुष्य में बराबर बंटवारा होगा।" चिंतन की इसी मूल पृष्ठभूमि पर चतुर्वेदी जी की संपूर्ण साहित्यिक रचना अवस्थित है। उनमें अपने इस चिंतन के प्रति न तो कोई भ्रम था, और न ही वे समझौतावादी मध्यम मार्ग के अनुयायी थे। इस दृष्टि से देखें तो वे गांधी जी तथा मुंशी प्रेमचंद से भी अधिक यर्थाथवादी दिखाई पड़ते हैं। गांधी जी के ग्राम्य प्रेम में सुधारवादी दृष्टिकोण प्रधान था। वे अपने ग्राम्य प्रेम को ठोस आर्थिक आधार नहीं दे सके। उनका ट्रस्टीशिप का सिद्धांत पूरी तरह अव्यावहारिक रहा। मुंशी प्रेमचंद भी आरंभ में गांधी जी से प्रभावित रहे तथा उनका दृष्टिकोण भी मूलतः आदर्शवादी रहा। लेकिन चतुर्वेदी जी का दृष्टिकोण अत्यंत ठोस तथा यथार्थवादी था। जिस दिन देश को आजादी मिली, उसी दिन उन्होंने घोषणा की कि—

'तोड़ अमीरों के मनसूबे गिन न दिनों की घड़ियां।
बुला रही है तुझे देश की कोटि-कोटि झोपड़ियां।'

इस कविता में भले ही निराला के 'बादल राग' की सी प्रतीकात्मकता और काव्यात्मकता न हो, लेकिन भावों की ईमानदारी साफ दिखाई देती है।

'कर्मवीर' के पहले वर्ष की समाप्ति पर एक जनवरी, 1921 को चतुर्वेदी जी ने किसान और मजदूरों के प्रति अपने प्रेम की घोषणा की थी। उन्होंने उसमें लिखा था कि '. . . इस समय हम अपने गरीब किसान और मजदूर भाइयों का स्मरण करते हैं। 'कर्मवीर' दुखियों की आवाजों से भरा रहने के लिए है, इसी से वह अपने द्वारा किसी प्रकार की साहित्य सेवा न कर सकने का अपराधी है। किंतु यह अपराध वह जानबूझकर करता है, और करता रहेगा, क्योंकि काव्य शास्त्र का विनोद उस दिन सूझेगा, जिस दिन उसके शरीर पर चिथड़ा, पेट में टुकड़ा और रहने के लिए अपना मुल्क होगा।" इससे साफ लगता है कि चतुर्वेदी जी के लिए साहित्यिक कर्म बाद में था। उनका पहला उद्देश्य था कि देश में खुशहाली हो, तथा छोटे-बड़े का भेद समाप्त हो।

माखनलाल चतुर्वेदी जी की दो अभिलाषाएं थीं—एक पुष्प बनकर बलिदानियों की राह पर बिछ जाने की तथा दूसरी पर्वत बनकर अपनी कोख से गंगा-जमुना को जन्म देने की, ताकि पृथ्वी का मैलापन धुल सके, और चारों और हरियाली छा सके। एक में राष्ट्र के प्रति प्रेम है, दूसरे में राष्ट्र वासियों के प्रति प्रेम है। दोनों में त्याग की भावना प्रधान है। सन् 1922 में ही उन्होंने 'पुष्प की अभिलाषा' लिखी थी और 1922 में ही 'पर्वत की अभिलाषा' लिखी। कहां पुष्प की कोमलता और कहां पर्वत की कठोरता। एक में माखन सी नम्रता तो दूसरे में लाल सी क्रांतिकारिता। लेकिन दोनों में व्यक्त भावनाओं में कहीं

कोई भी विरोध नहीं है। 'पर्वत की अभिलाषा' में वे कहते हैं—

> ''तू चाहे मुझको हरि, सोने का मढ़ा सुमेरू बनाना मत,
> तू चाहे मेरी गोद खोदकर, मणि-माणिक प्रकटाना मत,
> तू मिट जाने तक भी मुझमें से ज्वालाएं बरसाना मत,
> लावण्य-लाड़िली वन-देवी का लीला-क्षेत्र बनाना मत,
> जगती तल का मल धोने को, भू हरि-हरि कर देने को,
> गंगा जमुनाएं बहा सकूं, यह देना देर लगाता मत।

चतुर्वेदी जी की आरंभिक काल की रचनाएं छायावादी युग में हुई हैं। द्विवेदी युग से चली आ रही सांस्कृतिक पुनर्जागरण की भावना इस काल तक उच्चतम् बिंदु तक पहुंच गई थी। जयशंकर प्रसाद इस दृष्टि से सबसे आगे थे। इसका मूल उद्देश्य लोगों के मन में अपने देश के अतीत के प्रति गौरव का भाव भरकर उन्हें अंततः राष्ट्र प्रेम की ओर उन्मुख करना था। यह कार्य छायावादी कवियों ने भी किया तथा माखनलाल चतुर्वेदी ने भी किया। लेकिन इन दोनों में एक बहुत महत्वपूर्ण अंतर है। छायावादी कवियों की सांस्कृतिक चेतना अभिजात्य वर्ग की सांस्कृतिक चेतना से मेल खाती है। उन्होंने जो कुछ भी लिखा, उसमें देश का आम आदमी उद्‌बोधित नहीं होता। उनका उद्‌बोधन एक वर्ग विशेष तक ही पहुंच सका—चेतना की दृष्टि से भी, तथा भाषाई दृष्टि से भी। लेकिन चतुर्वेदी जी ने इस सीमा को तोड़ा—भाव और भाषा दोनों स्तरों पर। उन्होंने सांस्कृतिक जागरण को आज़ादी पाने के एक माध्यम के रूप में ग्रहण किया। ऐसा शायद लोकमान्य तिलक के प्रभाव के कारण उन्होंने किया। फिर यह भी कि वैष्णवी संस्कार उस रूप में भी व्यक्त हुए। सन् 1914-15 में लिखा उनका 'कृष्णार्जुन युद्ध' नाटक सांस्कृतिक पुनर्जागरण के अंतर्गत आता है। उन्होंने अनेक स्वतंत्र कविताओं की भी रचना की। वे लिखते हैं—

> तेरे पर्वत शिखर कि नभ को भू को मौन इशारे,
> तेरे वन जग उठे पवन से हरित इरादे प्यारे।
> रामकृष्ण के लीलामय में उठे बुद्ध की वाणी,
> काबा से कैलाश तलक उमड़ी कविता कल्याणी।

माखनलाल चतुर्वेदी ने ग्राम्य जीवन को गहरे रूप से आत्मसात किया था, जो उनकी रचनाओं में अभिव्यक्ति पाती रहीं। और यह एक बहुत बड़ा कारण था कि उन्हें 'एक भारतीय आत्मा' के रूप में संबोधित किया गया। □

माखनलाल चतुर्वेदी का गद्य

डॉ. श्यामसुंदर घोष

ई. सन् 1957 में जब ऋषि जैमिनी कौशिक बरूआ ने माखन लाल चतुर्वेदी की अपूर्ण जीवनी (यह सन् 1919 तक का ही लेखा-जोखा है) लिखी, तो उसमें उन्होंने लिखा था—'माखनलाल जी ने व्यापक स्तर पर हिंदी गद्य की जो राष्ट्रीय चिन्मयता, बोध-दृष्टि, आधुनिक युग की श्रद्धा का अनुशासन और जबरदस्त अभिव्यक्ति का प्रामाणिक रस-प्रवाह दिया है। उसका लेखा-जोखा अभी हिंदी साहित्य में किया जाना बाकी है।' यह काम तब तक नहीं हो सकता था जब तक कि चतुर्वेदी जी का लिखा समस्त गद्य-साहित्य प्रकाशित होकर एक जगह उपलब्ध नहीं हो जाता। अब जबकि श्रीकांत जोशी ने श्री माखनलाल चतुर्वेदी रचनावली के दस खण्ड प्रकाशित कर यह कठिन और गौरवपूर्ण ऐतिहासिक कार्य पूरा कर दिया है, तो हम माखनलाल चतुर्वेदी के गद्य का सम्यक् मूल्यांकन कर सकते हैं।

श्री माखनलाल चतुर्वेदी के गद्य-लेखन को हम दो भागों में बांट सकते हैं। उनका पहला लेख 'शक्तिपूजा' खंडवा से प्रकाशित होने वाले 'सुबोध सिंधु' के हिंदी संस्करण 'सुबोध सिंधु' मूल रूप से मराठी साप्ताहिक था) में सन् 1912 में दशहरे के अवसर पर प्रकाशित हुआ था। माना जा सकता है कि उनका गद्य-लेखन इसके पहले ही शुरू हो गया होगा। जब वे 17 वर्ष की आयु में स्कूल-शिक्षक नियुक्त होकर अनेक ग्रामीण स्कूलों में स्थानांतरित होकर खंडवा आये, तो उन्होंने रामलीलाओं में रुचि लेना प्रारंभ किया। उसी समय उन्होंने रामलीला के संवाद लिखने शुरू किये। माना जा सकता है कि यह उनके गद्य-लेखन की शुरूआत है। यह तकरीबन सन् 1906-7 का समय रहा होगा (माखनलाल जी का जन्म 4 अप्रैल सन् 1889 है) 6 वर्ष बाद ही माखनलाल जी इस योग्य हो गये कि अपना लेख प्रकाशित करा सकें। लेकिन सन 1915 के पूर्व तक वे जो कुछ लिखते हैं, उसमें 'प्रभा' के प्रथम वर्ष (प्रभा का प्रथम अंक अप्रैल 1913 में और 12 वां अंक फरवरी 1914 में प्रकाशित हुआ था। उसके बाद प्रभा का प्रकाशन रुक गया) उसे उनका पूर्ववर्ती गद्य ही कहा जा सकता है। मार्च सन् 1915 में 'प्रभा' का पुनर्प्रकाशन, प्रताप प्रेस, कानपुर से, गणेश शंकर विद्यार्थी के सहयोग से हुआ। 'प्रभा' के उसी द्वितीय वर्ष के प्रथम अंक में माखनलाल चतुर्वेदी ने 'कर्मपथ में पदारोपण' शीर्षक से संपादकीय लिखा जो चतुर्वेदी जी के पुष्ट-प्रखर गद्य की, अर्थात उनके परवर्ती गद्य की, शुरूआत है। यह माखनलाल जी की प्रखर तरूणाई का वर्ष है। सन् 1915 के प्रारंभ में ही माखनलाल जी की पत्नी ग्यारसी बाई का निधन हुआ। उसके बाद ही माखनलाल जी ने संकल्प लिया कि वे दूसरा विवाह नहीं करेंगे। पत्नी की मृत्यु और लिये गये संकल्प ने चतुर्वेदी जी के व्यक्तित्व में एक अजीब भास्वरता और दृढ़ता ला दी। यह उनकी उन दो रचनाओं—'प्रभा' के दूसरे वर्ष के दूसरे अंक में प्रकाशित 'धर्मतत्त्व' शीर्षक संपादकीय और 'कर्मपथ में पदारोपण' से स्पष्ट है। 'धर्मतत्त्व' की भाषा और मिजाज देखिये—'परम दुख है, जिस तरफ दृष्टि डालते

हैं, दुख ही दुख दीखता है। सोचते हैं, सुनते हैं समझते हैं, परंतु निश्चय नहीं बंधता। विदित नहीं होता कि यह करूणाक्रंदन किससे सुनावें। जिस तरफ दृष्टि डालते हैं संसार की निस्सारता, शून्यता और भयंकरता के सिवाय कुछ भी नहीं दीखता।' संपूर्ण टिप्पणी भावुकता और दर्द से सनी है। लगता है पत्नी के वियोग ने तरूण माखनलाल को विचलित और आहत कर दिया है। लेकिन यह स्थिति अधिक समय तक नहीं रहती। अपने व्यक्तिगत दुख से उबर कर माखनलाल बाहर देखने लगते हैं। तब उनकी दृष्टि अपने समय पर टिकती है। बरूआ ने माखनलाल जी की जीवनी में लिखा है—'सन् '15 राष्ट्रीय इतिहास में बहुत ही महत्त्वपूर्ण वर्ष था। इस वर्ष बाल गंगाधर तिलक जेल से छूटे थे। उनके जेल से छूटते ही राष्ट्र की गरम-नरम दलीय शक्तियां पुनः एक जुट होने के लिए मैदान में उतर आई थीं। विश्वयुद्ध शुरू हो चुका था और उसकी विभीषिकाएं देश में अपनी सही दिशाओं में आगे बढ़ रही थी।' इस वातावरण का माखनलाल चतुर्वेदी पर भी प्रभाव पड़ा। अब उनके गद्य लेखक की भाषा का रूप और तेवर यह है—'भविष्यत् की गाड़ी की मजबूती में संदेह मत करो। बल की विशेषता को समझो और एक जाज्वल्यमयी जागृति के साथ, मृत्यु के मुंह को कुचलते हुए, अपने उत्तरदायित्व का स्मरण-रखकर पशुता को पृथ्वी पर से हटा देने वाली शांति की ओर धीरे-धीरे कदम बढ़ाओ।' यह भाषा, यह संकल्प यह तेवर पहले के लेखन से बहुत भिन्न है। उससे माखनलाल में आये परिवर्त्तनों को समझा जा सकता है। इसीलिए 'प्रभा' के इस संपादकीय से माखनलाल के तेजस्वी गद्य का प्रारंभ मानना उचित है। बरूआ ने भी लिखा है—'मेघ की कोमल गर्जना उस संपादकीय में पहली बार नर्मदा की सहस्त्र धाराओं सी प्रवाहित हो उठी। 'कर्मपथ में पदारोपण' की भाषा में उनके विगत तीन-चार वर्षों का लेखन एक नई सांस्कृतिक विकास की क्रीड़ा स्थली पा गया।'

माखनलाल चतुर्वेदी ने कविता पर विचार करते हुए कहा है कि उसमें राष्ट्र की धमनियों को छूनेवाली ज्योति, प्रेम की उन्मादकारिणी लहर और चरित्र की तपोपूर्ण आत्मा चाहिए। ये सब गुण उनकी कविता में तो है ही, उनके गद्य में भी हैं। माखनलाल जी के गद्य में एक अद्‌भुत दृढ़ता है। यह दृढ़ता कहां से आई? क्या उनके विरोध और विद्रोह भाव से? उसे समझने के लिए उनका एक उद्धरण काफी है 'यदि हमने देशाभिमान पर जोर न दिया, और केवल ब्रिटिश विरोध की ही माला जपी, तो ब्रिटिश शक्ति से अधिकार लेने के दिन हममें से कितने देशघातक हो जायेंगे, क्योंकि ब्रिटिश-विरोध देशाभिमान की गैरहाजिरी में कोई मूल्य की वस्तु नहीं ठहरता। प्रखर तथा उज्जवल देशाभिमान में विदेशी शासन का विरोध अपने आप ही रहता है।' (रचनावली-5, पृ. 66) माखनलाल जी की दृढ़ता का उत्स उनका यह प्रखर राष्ट्र प्रेम ही है।

राष्ट्रप्रेम के अतिरेक में माखनलाल अपनी स्वाभाविक जमीन नहीं छोड़ते। उनकी स्पष्ट मान्यता है कि हमें जो बोलना होगा, जमीन की बोली में बोलना होगा। वे जमीन पर रहते हैं जिसमें हम जनमे हैं। हम जमीन पर पैदा हुए हैं और जमीन के उथल-पुथल के संदेशवाहक होकर ही हमें रहना है। अतः आसमान की बातें भी हम जमीन की बोली में बोलें। वे प्रत्येक विषय को भेजे से कलेजे पर उतारने और तर्क से हृदय तक पहुंचने के हिमायती हैं। (वही, पृष्ठ 68) माखनलाल जी के गद्य-लेखन में भारतीय संतों की सी

संवेदना व्यापकता और ऊर्जा है। वे स्पष्ट कहते हैं—'हमें लोक जीवन लिखना होगा। हम शहराती साहित्य क्यों लिखते हैं?' लोक जीवन लिखते हुए ही वे राष्ट्र की वाणी पाना चाहते हैं। 'जब नेत्रों की भाषा होती है हृदय की भाषा होती है, बुद्धि की भाषा होती है, आवश्यकताओं की भाषा होती है, बलिदान की भाषा होती है तब मानवों की मातृभूमि, उनके देश की कोई बोली नहीं, यह संभव नहीं।' (वही, पृष्ठ 84) उनका गद्य-लेखन देश की ऐसी ही मौलिक बोली की खोज में निकला हुआ कोलंबस है। वह उस बोली को पाकर ही रहता है।

माखनलाल जी ने कविता, उसके चरित्र और उसकी भूमिका को लेकर जहां-तहां अनेक बातें कही हैं। लेकिन गद्य को लेकर भी उन्होंने कम चिंता नहीं की है। उन्होंने अपने गद्य-लेखक के दो रूप बहुत स्पष्ट रूप में हमारे समाने रखे हैं। उनका एक गद्य-रूप तो वह है जो 'साहित्य-देवता' और 'रंगों की बोली' संग्रह में स्पष्ट हुआ है। दूसरा गद्य-रूप वह है जो 'प्रभा' और 'कर्मवीर' और दूसरी अनेक पत्र-पत्रिकाओं में, लेखों और टिप्पणियों के रूप में, छपकर सामने आया है। इस दूसरे वर्ग के गद्य को लेकर तो नहीं, लेकिन पहले वर्ग के गद्य को लेकर उनके मन में किंचित् असमंजस का भाव है। इसीलिए उन्होंने 'रंगों की बोली' के आमुख में लिखा है—'मुझे ऐसा भय सा लगता रहा कि मानो मैं गद्य के क्षेत्र में कोई अपराध कर रहा हूं।' चतुर्वेदी जी के भय का कारण संभवतः यह था कि उस समय तक भारतीय गद्य का कोई स्वरूप नहीं बन पाया था। जो गद्य लिखा जा रहा था वह अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोगों द्वारा विदेशी वजन पर लिखा जा रहा था। गद्य चीज ही पश्चिम की है, इसीलिए उसका कोई ऐसा रूप नहीं हो सकता, जिसे नितांत भारतीय कहा जा सके। अधिक से अधिक वह पूर्व और पश्चिम का समन्वय और मिश्रण हो सकता है। कुछ ऐसा ही दृष्टिकोण तब के गद्य-लेखकों में प्रचलित था। लेकिन चतुर्वेदी जी इस दृष्टिकोण को स्वीकार कर पाने में अपने को असमर्थ अनुभव करते थे। उन्होंने 'रंगों की बोली' के आमुख में स्पष्ट कहा है—'मिश्रण बनाकर प्राप्त की जाने वाली बात में मिश्रण के अधिक विजातीय, विदेशीय और विषयक होने का भय है।' चतुर्वेदी जी के समय तक अधिकांश पश्चिमी धाराएं हमें हजम ही नहीं हुई थी। उसका बड़ा सटीक कारण चतुर्वेदी जी ने समझा था—'अपना निज का शरीर बन पाया हो, तभी न कोई धाराएं हजम हों।' इसीलिए गद्य लिखते समय चतुर्वेदी जी की सारी चेष्टा इस बात पर केंद्रित थी कि मन के वृक्ष को रस तो अपनी ही जमीन से, अपनी ही मातृभूमि से सींचना चाहिए, किंतु प्रकाश सूर्यकिरणों से लेना चाहिए जिन पर स्वदेशी और विदेशी का आरोप नहीं किया जा सकता। वे गद्य लेखन के क्षेत्र में भारतीय प्रतिभा को खुलकर खेलने देने के हिमायती थे।

माखनलाल जी की कविता में जगह-जगह सूझों के खिलवाड़ भले ही मिलें, उनके गद्य में एक अन्विति है। माखनलाल जी मानते हैं कि आज का लेखक उन विचारों और भावों के इतिहास की एक कड़ी है जिनके पीछे शताब्दियों की अनंत कड़ियां जुड़ी हुई हैं और भविष्य की कड़ियों के जुड़ते जाने का जिसे अपने नम्र बलिदान के आधार पर अटूट विश्वास है। (वही, पृष्ठ 98) इसलिए उनके गद्य में तारतम्यहीनता, उलझाव या विश्रृंखलता नहीं है। उनके गद्य लेखन में कतारबद्ध सैनिक-सा अनुशासन, बढ़ाव और सधाव है। वे अपने गद्य को सशक्त बनाने के लिए चिट्ठियों और चर्चाओं से आने वाले रेलवे प्लेटफार्म

और मुसाफिर खाने से प्राप्त होनेवाले, सड़कों और बंद कोठरियों में बोलनेवाले संवादों की ओर कान देनेवाले लेखक तो हैं ही, उनका यह भी आग्रह है कि—'युद्ध ने विश्व को जो नई भाषा दी है, हर भाषा को जो नये शब्द दिये हैं, परिस्थितियों में बम-गोलों की तरह जो कुछ शब्द बने हैं—एक भाषा भी बनी है—हर देश में, हर जगह, क्या उसमें हमारा भी कोई हिस्सा हैं?' (वही, पृष्ठ 105) इससे स्पष्ट है कि उनका गद्य लेखक तत्पर, समय-सचेत और समावेशी है। उसे देश, और देश की कलम की कितनी चिंता है यह उस उक्ति से स्पष्ट है—'जिस देश में कलम तलवार जैसी प्रखर और क्रियाशील नहीं होती उस देश में तलवार भी तलवार बनकर नहीं रह सकती।' इसीलिए माखनलाल जी का गद्य साहित्य की तरूणाई को ललकार कर कहता है—'हजारों मील की दूरी चीरकर हिंदी ही एक निर्माणशीला वाणी को भारत की ओर आने दो, भारत की ओर से जाने दो।' (वही पृष्ठ 106) इस रूप में माखनलाल जी का गद्य अंतर्राष्ट्रीय जगत में विचारों और संवेदनाओं के आदान-प्रदान का एक विराट सेतु रचने का क्रांतिकारी उपक्रम है।

माखनलाल जी प्रयत्न के पहले चरण में भाषा को गाँवों से जोड़ने के पक्षपाती हैं। उसके लिए वे कुछ बाधकत्व निर्मूल करना जरूरी समझते हैं। ज्ञान का बोझ, मस्तिष्क का व्यभिचार, समाज की धनिकता, रूढ़ि की दासता, सफेद पोशी का पक्षपात आदि। कारण भाषा में ब्राह्मणत्व तो आता है, पर वह जन-जीवन से कट भी जाती है। ''मोदक शब्द, मीठे शब्द, उसके अर्थ, सलोनी आकृति सुंदर स्वरूप इन सबसे एकत्रित कांजी हाऊस को साहित्य कैसे कहेंगे? जीवित समाज के प्रतिबिंब तो स्वयं जीवित होंगे। एक दूसरे से बोलते हुए, एक दूसरे से होड़ लेते हुए।'' (वही, पृष्ठ 174) मुहावरों, पहेलियों, लोकोक्तियों और कहावतों के कारण भाषा में जो रंग, रस और स्वाद आता है वह उसके बिना कहां। चतुर्वेदी जी मानते हैं कि भाषा का यह वैभव हमें गाँवों ने अधिक दिया था। इसीलिए गांधी युग के अनुरूप भाषा और साहित्य के बारे में उनका नारा हैं—'हम गांवों की ओर जावें भाषा क्षमता का आकलन करने'। (वही खण्ड 3, पृ. 202) उनका सवाल, है—'क्या गांवों में रस नहीं कि कहानियां नहीं? गांवों में तीर्थ नहीं कि तर्पण नहीं? गांवों में रक्त नहीं कि भुजदंड नहीं?' (वही, खण्ड-5 पृ. 123) लेकिन प्रयत्न के दूसरे चरण में वे भाषा को संसार के चौराहे पर खड़ी देखना चाहते हैं। उनका सवाल है—'प्रतिगामी भाषा की पीठ पर पुरोगामी भावों की यह यात्रा किस मंजिल पर पहुंचेगी और कितने दिनों में?' इसीलिए वे भाषा के संदर्भ में अभिनव क्रांतिकारी गतिशीलता के पक्ष में हैं। वे राष्ट्र भारती को मस्तक उठाकर, मस्तक झुकाकर और आवश्यकता होने पर हथेली पर मस्तक उतारकर, वहां से चलने के पक्षपाती हैं जहां वह विश्व की स्वतंत्र भाषाओं से बराबरी से बोल-बोल सके। (वही, पृष्ठ 137) वे भाषा में जीवन, धड़कन, प्रयोग और त्वरा तो चाहते हैं पर उन्होंने भाषा में पाकिस्तान बनाने का विरोध भी किया है। वे स्पष्ट कहते हैं, न मुझे शासन के इशारे पर भाषा गढ़ना स्वीकार है, न परिस्थितियों से घबराकर भाषा मढ़ना स्वीकार है'। चतुर्वेदी जी आचार्य रामचंद्र शुक्ल की तरह बनावटी हिंदी के सख्त विरोधी थे। उन्होंने अपने समय में लक्ष्य किया था कि युद्ध के लिए चंदा लेते समय विज्ञापनों में सरकार और हिंदी बोलती है, और रेडियो में समाचार सुनाते समय ठीक दूसरी हिंदी। (वही, पृष्ठ 121)।

भाषा के क्षेत्र में किये जाने वाले विविध प्रयोगों से चतुर्वेदी जी जरा भी घबराने वाले न थे। वे तो मानते थे कि 'किसी दशरथ का रथ दशों दिशाओं में जाय, या न जाय, भाषा के निर्माता की सूझ का रथ दशों दिशाओं में खूब आता जाता है।' (वही, पृ. 123) लेकिन यह अधिकार वे जनता का जनता से जुड़े लोगों का, जनोन्मुखी साहित्यकारों का मानते थे। उन्होंने खास किस्म के लेखन को 'पागल खाने' का साहित्य या 'अनाथालय का साहित्य' कहा है इससे वे बचना चाहते थे। उनका संकल्प है—"हम लिखे वह जो प्रतिभा की नवीनता और विवेचना की ज्ञानगर्भित शैली के कारण अनंत वर्षों तक जीने की सामर्थ्य अपने में रखे, साथ ही जो साहित्य दिमागी ऐयाश से.लगाकर खेतों और खलिहानों में काम करने वाले का भी जीवन साथी कहला सके। हम लिखें वह जो कोटि-कोटि नरमुंडों के स्वप्नों का जागरण हो सके और उतरते हुए आदर्श, चढ़ते हुए पौरूष, उभरते हुए उद्योग और समर्पित होती हुई सेवा के पथ में अपना साहित्य बनकर ठहर सके।" (वही, पृ. 122) इस दृष्टिकोण के कारण माखनलाल जी की मान्यता थी कि लेखन मामूली काम नहीं है। उसे सभी नहीं कर सकते, न सबको करना चाहिए। 'यह वह साधन है जिसपर से समूची की समूची जाति धारणाओं के एक युद्ध स्थल से दूसरे युद्ध स्थल को पहुंच जाती है। यह एक प्रकटीकरण है उन घड़ियों का, जिनके प्रकट न करने पर पीढ़ी की पीढ़ी के अंधकार में भटकने का डर है।'

माखनलाल चतुर्वेदी ने अपने अंतर का पानी चढ़ाकर जो गद्य लिखा है उसका स्वास्थ्य और स्वाद ही कुछ और है। उसमें प्रखरता और कोमलता दोनों ही है। ये दोनों ही एक दूसरे को कुछ देते ही हैं, एक दूसरे से कुछ छीनते नहीं। एक जगह माखनलाल जी ने सूझ को मिथिला की जनक दुलारी और पुरुषार्थ को अयोध्या का अवध बिहारी कहा है (वही, पृ. 168) उन दोनों के विहार उनके गद्य में जहां-तहां खूब हैं। इसीलिए उनका गद्य अंतरात्मा में उतरकर, आंखों में तरंगित होकर, होठों पर फड़कता, गालों पर लाली लाती बंधी मुट्ठियों में निश्चयात्मक बल के रूप में प्रकट होता है।

माखनलाल जी को उस बात का कत्तई गिला नहीं है कि उनके गद्य में इतनी रसधारा क्यों है ? वे स्पष्ट कहते हैं—'गद्य ने हमारा इतना क्या बिगाड़ दिया कि रस का सारा पक्षपात पद्यों के साथ हो। प्रभु करे यह साहस भूमण्डल के घेरे में शीघ्र आवें कि रस का एक मात्र स्वामी पद्य ही न रह जाए। गद्य और पद्य माता की दो संतान हैं, फिर अंत के कणों में कौन छोटा कौन बड़ा?' (वही पृ. 292) इसलिए माखनलाल जी का गद्य उनके पद्य से कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। सही बात तो यह है कि बिना उनके गद्य को समझे उनकी कविता समझी ही नहीं जा सकती। उनका गद्य उनकी कविता का अनिवार्य पूरक है। □

एक भारतीय आत्मा की याद

घनश्याम शलभ

प्रकाशोज्जवल कीर्ति दादा श्री माखनलाल जी चतुर्वेदी इसी भारत भूमि के थे, जिस तरह कि आज हम हैं। वे भारतीय भी थे जिस तरह कि हम भारतीय हैं। लेकिन....लेकिन, हम भारतीय तो हैं, पर क्या हम 'एक भारतीय आत्मा' भी हैं? यही बात हमें अपना आत्मालोचन कर अवश्य जान लेना चाहिए। अज्ञेय जी के निकट तो दादा न केवल 'एक भारतीय आत्मालोचन थे—वे एक स्वाधीन भारतीय आत्मा थे जो राजनीतिक कर्मी तो थे ही, पर साहित्यकर्मी भी उच्च कोटि के थे, और एक श्रेष्ठ और सच्चे रचनाकार की तरह उन्होंने सत्ता की राजनीति के प्रलोभन के आगे कभी भी सिर नहीं झुकाया। उनका रचनाकार सदैव स्वाधीन रहा है। उनकी भुजाएं इसीलिए उन लोगों के लिए उठती रहीं, जिनकी भुजाएं उठ नहीं पाती थीं। वे युग-यथार्थ के सशक्त गायक जो थे, तो होने वाली इन तब्दीलियों से आंखें कैसे मूंद सकते थे? वे मनुष्य-मन की मनस्विता, उसकी मूल कमजोरी और ऊर्जा से पूरी तरह परिचित थे। उनकी दृष्टि-भीतर और बाहर जब भी देखती तो उनकी राशि राशि रचनाओं में उस भावानुभूति की अमिट छाप छोड़ती है। उन्हें अपनी कला के प्रति कोई भ्रांत धारणा थी ही नहीं, इसीलिए तो उन्होंने लिखा था—'कला अपने इलहाम से नहीं, अपने रियाज, श्रम, सौंदर्य, माधुर्य, समर्पण से चिंतन का मार्ग आलोकित करेगी। यहीं आकर हम सोचें कि हमारा समस्त विश्व-परिवार एक है, उसमें भेद की जगह नहीं है। राजनीतिज्ञ अपनी मर्यादा में रहने को बाध्य होगा यदि हम चिंतन के लेखे-जोखे को क्रियाशील बनाने के लिए गांव-गांव, डगर-डगर और घर-घर पहुंच सकें। (10 जून 1957 दै. हिंदुस्तान)।

उन्हें इसीलिए कला का दूसरा नाम 'विद्रोह' लगता है। इस जनोन्मुखी 'एक भारतीय आत्मा' की गहरी वेदना भी इसलिए विद्रोह में बदल गयी थी। वे किसी रुढ़ि की पुराण-पुस्तक के पथरीले भार कभी नहीं बने। उनके अंतर का उल्लास इसीलिए इस धरती का नवीन, मौलिक रचना-संसार लिए उपस्थित हुआ है। उनकी ये पंक्तियां दृष्टव्य हैं:

क्यों गाता हूं- क्या जवाब दूं?
कोकिल क्यों गाती है?
क्यूं बेरंगे स्वर में
वह व्याकुलता बढ़ आती है!

भावों के उन्मत्त
साध के हिरणों से पूछो
जल प्रपात से नहीं
ग्रीष्म के झरनों से पूछो
क्यों गाता हूं!

और भी यह कि-
हूक में सिहर रसवती बनी
अश्रु में बे-बसवती बनी
कलम पर स-रसवती बनी
जी लूं अपना शोणित पीकर
विधि हुआ बावला मेरे घर!
और इस रचना-संसार का यह बावला विधि तभी तो सोचता है-
द्वार बलि का खोल, चल भूडोल कर दें
एक हिमगिरि, एक सिर का मोल कर दें
मसलकर, अपने इरादों सी उठाकर
दो हथेली हैं कि पृथ्वी गोल कर दें!

कितनी विपथगामी चुनौती है यह। कितनी अर्थवान और संकेतवती! ठाकुर प्रसादसिंह को तभी तो यह लगता है कि—'मैं सोचता हूं जब तक माखनलालजी की कविताओं में कहीं कहीं झलक गये संकेतों को पकड़ने की और उनके विशिष्ट अर्थों को समझकर झंकृत होने की शक्ति मेरे भीतर बनी हुई है, तब तक मैं सारे विरोधों के बीच भी जीवित रह सकने की हैसियत बनाये हुए हूं।'

व्यक्तित्व के निर्माण के लिए निश्चय ही हृदय की जरुरत होती है। यह रास्ता ग्रंथों और पंथों में नहीं मिलता। हमारी दुनियां में इनकी कोई कमी थोड़े ही है? यह तो रचनाकार का अपना रास्ता होता है। इसीलिए दादा अपने 'साहित्य और कविता' के संदर्भ में कहते हैं कि 'कविता वास्तव में विधाता के जगत की कमी की पूर्ति है....दुनिया में हम सब देखते हैं कि कई बार पापी मौज उड़ाते हैं और पुण्यात्मा कष्ट सहन करते हैं, लेकिन कवि की दुनियां में पापी सुखी नहीं रह सकता है....कविता कल्पकता का सत्य नहीं है, सत्य की सुकोमल कल्पकता है। कविता का विषय असीम है। विस्तृत है। ईसा अस्तबल में पैदा हो सकते हैं, कृष्ण कारागार में....तब फिर क्या हमारे गीत पैदा करने के लिए हमें नंदन कानन चाहिए? ये जन संकटों और जन-जन के बीच जन्म नहीं ले सकते? (रंगों की बोली)

तनी हुई विचार-प्रत्यंचा की टंकारती चुनौती यह, इस आधुनिक सुविधाकामी रचनाकार के लिए है ? तभी तो 'स्मृति लेखा' के लेखक स्वीकारते हैं कि 'माखनलालजी द्वारा प्रस्तावित स्वाधीन आत्मा का अकेलापन अभिजात पुरुष का अकेलापन नहीं है। वह उसका अकेलापन है जो लोकजन में गहरी आस्था रखता है...लोक जन के समूह के एक खंड या भीड़ के किसी एक टुकड़े में नहीं, ... उस लोकजन में जिसमें स्वयं आस्था है, संस्कारिता है, मूल्यों का (चाहे कितना ही अविकसित) बोध है। यह अकेलापन जनवादी का अकेलापन नहीं, मानवतावादी का अकेलापन है।' 'साहित्य के प्रति मेरा दृष्टिकोण' में दादा ने बहुत ही निर्द्वंद्व भाव से कहा है—'कला में वादों पर मेरा कभी विश्वास नहीं रहा। मैं यह भी नहीं मानता कि बारीक ख्याली केवल पद्य में ही लिखी जा सकती है, गद्य में नहीं।' यही नहीं वे तो आयातित विचारों को भी अस्वीकार यह कह कर करते हैं कि 'कला में भीख की भाषा

पसंद नहीं करता। मैं निवेदन करुंगा कि ''वादों'' पर मेरा कभी विश्वास नहीं रहा।' (आधुनिक कवि की भूमिका)। दादा का दृष्टिकोण, जीवन और कला के प्रति, सदैव उन्मुक्त रहा है। वे तो कहते हैं—'तब हम अपनी घिसी यादों का पुराना कारखाना खोल कर कह उठते हैं, यह व्यास जैसा तो नहीं आया, वाल्मीकि जैसा तो नहीं बना, इसमे भवभूति जैसी आर्यभावना कहां है, कालिदास जैसा नाविन्य भी नहीं है। नवीनता से पुरानापन वसूल करने का हमारा यह मोह हमारी नयी पीढ़ी के काव्य में विद्रोह जाग्रत करता है, इसीलिए इस युग के कवि ने प्राचीनता के वैभव-रथों पर बैठना छोड़ दिया है।'

दादा का उपर्युक्त विचार-विश्लेषण द्विवेदी युगकी लीकपीटक समीक्षा-दृष्टि, अकविता की अराजकता तथा अबर्स्ड साहित्य की ओर क्या संकेतन नहीं करता? 'संवेदना ज्ञान' या 'ज्ञानात्मक संवेदना' की पारिभाषिक शब्दावली की व्यवहृति के बहुत पहले ही उन्होंने कह न दिया था कि 'वह दिन धन्य होगा जिस दिन भावना प्रधान कविता विचारकर्ता को साथ लेकर चलने लगेगी। फिर वह समय के पद्निक्षेपों से बचकर नहीं चलेगी। वह युग का, वस्तुस्थिति का सामना करेगी और उसे अमरता प्राप्त करने की अवस्था तक उठा देगी।' ये विचार आज तो समय की दूरागत सीमाओं तक को छूते हैं। दादा का मोह भंग तो कभी का हो चुका था। उन्होंने जेल की यातना भरी काल कोठरियों के एकांत और अपने अकेलेपन का वह दुखद पथरीला बोझ तो अपनी आत्मा पर झेला ही था। आजादी के बाद के संघर्षपूर्ण दिनों के अपने उत्पीड़क अकेलेपन की पीड़ा भी भोगी थी। वे यह तो मानते ही थे कि यही तो एक स्वाधीन और श्रेष्ठ सर्जक की लाचारी और नियति है। मैं कुछ महीनों पूर्व दादा की जन्मशती पर डीग में आयोजित एक समारोह में सम्मिलित हुआ था। उसमें अपना पर्चा पढ़ते हुए एक युवा जनवादी प्राध्यापक समीक्षक ने कहा था कि दादा के गद्य में हमारी जातीयता की वह गंध और गुणवत्ता नहीं है जो भारतेंदु जी या सरदार पूर्ण सिंह, प्रेमचंद या रामचंद्र शुक्ल में है, सुनकर स्तब्ध रह जाना पड़ा। मेरे स्पष्टीकरण के बाद उन्होंने स्वीकार किया कि उन्हें चतुर्वेदी जी का पूरा निबंध साहित्य प्राप्त नहीं हुआ था। ऐसे युवा प्राध्यापक समीक्षकों को मैं उस धारदार वक्त की याद दिला ही दूं जब आचार्य शुक्ल के (1938 में) समक्ष, बनारस विश्वविद्यालय में दादा ने जो निबंध पढ़ा था तो उसका कैसा प्रभाव उस प्रबुद्ध अध्वर्यु आचार्य पर भी पड़ा। डॉ. 'सुमन' ही के शब्दों में—'आचार्य शुक्ल के यज्ञमण्डप में हम एम.ए. के छात्र यह देखकर विस्मित और अवाक रह गये थे कि काशी के दिग्गज पंडितों की भूमि में निमाड़ का एक निर्भीक जल-स्रोत सबकी हंसी उड़ाकर चला गया। आचार्य शुक्ल भी उसकी अभिव्यंजना के आवेश से विस्मित हुए थे। उसने एक निबंध पढ़ा था जिसमें समालोचक और सर्जक के स्वरुपों का समाकलन था। अपनी चुटीली शैली में आलोचकों के मर्म पर प्रहार करते हुए, सबको निरुत्तर करते हुए, मस्तानी अदा से मुस्कराते-मुस्कराते कुछ ऐसे 'नावक के तीर' छोड़ गया जो वर्षों भावकों के मर्म में कसकते रहे।'

हमें यह नहीं भूल जाना चाहिए कि दादा का गद्य वस्तुतः एक रचनाधर्मी लेखक का गद्य है। वह किसी शास्त्रीय या पेशेवर समीक्षक का गद्य नहीं है। भला 'पंथों' और 'पोथों' की बातें तब उसमें कहां स्थान पाती? लेकिन चतुर्वेदी जी अपने 'समय के पांव'

पूरी तरह पहचानते थे, यही नहीं उसकी गति-मति और शक्ति भी। तभी तो उन्होंने लिखा है—'कितने संकट के दिन हैं ये। व्यक्ति ऐसे चौराहे पर खड़ा है जहां भूख की बाजार दर बढ़ गयी है, पायी हुई स्वतंत्रता की बाजार दर घट गयी है। पेट के ऊपर हृदय और सिर रखकर चलने वाला भारतीय मानव मानों हृदय और सिर पर पेट रखकर चल रहा है। खाद्य पदार्थों की बाजार दर बढ़ी हुई है और चरित्र की बाजार दर गिर गयी है।' और इसीलिए दादा का आग्रह रहा है कि आज का रचनाकार किताबें कम, मनुष्य-चरित्र का गहराई से अध्ययन करें, उसके मनस्तापों के प्रति संवेदित हो और तब अपनी रचना में रुपायित करें। अपनी यादों नयी से नयी सूझों और ख्यालों की आधारभूमि से तभी ऐसा चरित्र बन सकता है। वे ऐसे चरित्र कभी नहीं स्वीकारते थे जो मुर्दा सांसों का सुंदर पुतला भर हो। उनकी सैकड़ों रचनाएं विद्रोही जिंदगी की, उसकी जिंदादिली की जवानी के गीत बनकर उभरी हैं। सचमुच ही माखनलाल चतुर्वेदी एक व्यक्ति का ही नाम नहीं, बल्कि एक ज्वलंत परंपरा का नाम है। जेल से छूटने पर 'प्रताप' जैसे यशस्वी पत्र के लिए, उनका संदेश तक 'एक पुष्प की अभिलाषा' बन गया था। सबसे बड़ी बात जो उनकी तमाम रचनाओं के लिए कही जा सकती है, वह यह कि वे किसी पहाड़ी निर्झरणी की तरह स्वतः स्फूर्त हैं। चाहे फिर पंतजी उन्हें अनगढ़ भाषा की छायावादी रचनाएं कहें। उनमें सायासता या कृत्रिमता की जड़ना या गढ़न कहीं नहीं है। उन्होंने तो कई कविताएं स्वयं हाथ से न लिख कर, मौखिक ही लिखवाई हैं। दादा सूर और कबीर की वैसी ही काव्य परम्परा के शायद कायल थे? उनके अन्तःकरण में कहीं गहरे में महाभारत के महान जननायक और गीता के गायक तथा गोकुल के नटखट गोपाल, एकाकार हो, वेणुवादन करते रहे हैं। उनकी कृति 'वेणु लो गूंजे धरा' इस बात की साक्षी है।

उदयपुर में आयोजित एक साहित्यिक सेमिनार के उद्घाटन के वक्त, उद्घाटनकर्ता ने बड़े ही मजाकिया ढंग से कहा था कि आज तो राष्ट्रीय कविताएं टके सेर बिकती हैं। राष्ट्रीयता जैसे अब अप्रासंगिक हो गयी है। 'राष्ट्रीयता' शब्द तो आज के राजनीतिक कर्मियों का शाब्दिक खिलवाड़ मात्र रह गया है, जिसे वे बार बार आज के वातावरण में उछाल-उछाल कर जनमानस को आंदोलित करने का असफल नाटक खेल रहे हैं। सत्ता के सारे प्रचार मीडिया कभी 'झांसी की रानी की' झांकिया दिखाकर तो कभी 'एक पुष्प की अभिलाषा' का लघु मंचन कर, और कभी मशाल दौड़ या 'मिले सुर मेरा तुम्हारा' के आकर्षक दृश्य टी.वी. के स्क्रीन पर दिखाते रहे हैं। लेकिन राष्ट्रीय चेतना के ये सारे प्रचार-प्रसार जैसे सत्ता के किसी प्रायोजित मकसद की तरह ही तमाशा बन कर रह गये हैं।

एक युग, सचमुच वह भी था जब 'एक पुष्प की अभिलाषा' जैसे निसर्ग भाव गीतों के प्रकाशन की प्रतीक्षा लाखों लोग बड़ी बेसब्री से करते रहते थे। वैसी मर्मस्पर्शी रचनाएं टके सेर कभी बिकी ही नहीं। 'कोकिल बोलो तो!' ने न जाने कितने प्राणों में भारतभूमि की मुक्ति का उजला उजाला उस वक्त भर दिया था।

और आज भी ऐसी रचनाएं उतनी ही ऊर्जामय हैं। लेकिन आज की इस राजनीति के माहौल की विद्रूप विकृतियों के दलदल ने उन्हें भी लिप्त करने का प्रयत्न किया है।

बुद्ध की करुणा, गांधी की अहिंसा, गुरु गोविंद सिंह के त्यागपूर्ण वीरत्व की जीवन-दृष्टि, नानकदेवजी का प्रेम, सहिष्णुता और भाईचारे का वह समभाव भी आज कितने प्रासंगिक रह गये हैं? अब तो लोग यहां तक लिखने लगे हैं—'यदि प्रेमचंद और यहां तक कहूं कि तुलसीदास भी होते तो वे भी दूरदर्शन पर आने की इच्छा व्यक्त करते।' 'साहित्य, फिल्म और दूरदर्शन, कालम में दिल्ली के एक बड़े हिंदी दैनिक के रविवासरीय अंक में अब यह भी लिखा जाने लगा है। शायद भारतीय संत परम्परा से यह लेखक निरा अनभिज्ञ ही है, जहां कहा जाता रहा है—'संतन कहा सीकर सो काम, आवत जात पन्हैया टूटी, बिसर गयो हरि नाम।' क्या तुलसीदास सचमुच रामानंद सागर की रामायण में किसी किरदार का अभिनय करने लग जाते? रामानंद तो यह करिश्मा करने का जी तोड़ प्रयत्न करते ही। स्वयं दादा के जमाने में दूरदर्शन तो विद्यमान था ही, पर क्या वे उससे जुड़े भी ? कोई मनोविकृति ही तुलसीदास के लिए ऐसी ओछी और भ्रष्ट कल्पना आज के माहौल में कर ले तो स्वाभाविक है। और जो व्यक्ति सत्ता द्वारा दिये गये प्रलोभन के बाद भी वह उससे नहीं जुड़ा, भला वह दूरदर्शन के ग्लैमर के जाल में कैसे फंस पाता? उसने तो अपनी 'पद्मभूषण' की सत्ता द्वारा दी गई उपाधि तक लौटा दी थी।

और जो तुलसीदास यह लिख गये हों कि—'किन्हें प्राकृत जन गुण गाना, सिर धुनि गिरा लागि पछिताना' वे दूरदर्शन के ग्लैमर के शिकार हो जाते? उनके विषय में कैसी है यह कलम घिस्सू कल्पना? निश्चय ही मनीषी डाक्टर राधाकृष्णन के शब्दों में 'चरित्र का दुष्काल' ही है। अवमूल्यन का युग जो है यह। दादा महज व्यक्ति ही नहीं थे, युग की आलोकमयी परम्परा थे। परम्परा भी महत बलिदान, विद्रोह, त्याग और समर्पण की। अतः फूहड़ और कुत्सित गढ़ंत की कोई जनवादी कविताएं वे लिख ही कैसे पाते? उनके अपने सांस्कृतिक संस्कार थे, पास में चेतना के उज्जवल वरदान वाली सौंदर्य दृष्टि थी, उनका मूल्य-बोध विश्वजनीन और मानवतावादी था। श्रम और साधना के जीवंत प्रतीक किसान और मजदूर उनकी रचनाओं के भी आधार रुप रहे हैं। वे पुस्तकें नहीं, व्यक्ति पढ़ते थे। शोषण, उत्पीड़न दमन, अन्याय और रुढ़िग्रस्तता के अंधकार को वे कभी स्वीकार नहीं कर सके। उनके पास नदियों की तरह बहने, वर्षा की तरह बरसने, पुष्पों की तरह बिखरने, और अन्नकणों की तरह उगने वाली आत्मवेदना थी, इसीलिए उनकी रचनाएं मुक्तभाव लिए मुखरित हो उठी हैं। वे कोई वादी नहीं थे, पर अभिनवगुप्त की तरह रस ही को काव्य की आत्मा मानते थे। उनका यह भी मानना था—रसों पर शल्य-क्रिया करके रसों तक पहुंचने की चेष्टा व्यर्थ है। रस इतनी कोमल वस्तु है कि उस पर क्रिया होने के बाद, छीना-झपटी या रगड़ झगड़ होने पर, मसले हुए फूलों की तरह अपनी सुगंध खो देते हैं, अपनी कटुता के आंसू रो देते हैं। वे तो यह भी कहते हैं कि 'जब मैं अपने आपको संपूर्ण कलम या स्वर पर उतार रहा होऊं, तब मेरे स्वर पर चाकू लेके दौड़ने वाले हाथ को देखकर, मेरा संपूर्ण अपनापन, मेरे स्वर पर उतरते समय रुक जाता है।

लेकिन वे अपनी रचनाओं की स्वस्थ समीक्षा और सजग आस्वादन के समालोचकीय प्रयत्नों को इन पंक्तियों द्वारा सत्कारते भी हैं—'मेरा संपूर्ण अपनापन रचना में उतर चुकने के पश्चात मनमानी शस्त्र-क्रिया हो, मुझे चिंता नहीं। जब मैं देखता हूं कि आप फलों को

छीलकर या तराशकर ही खाते हैं तब मैं अपने पर की जानी वाली तराश से चिंतित क्यों होऊं? किंतु यह तराश उस समय नहीं शोभती, जब वृक्षों की टहनियों पर प्रकृति की अप्रत्यक्ष अंगुलियों से फल बनते चले आ रहे हैं। फूलों के खिलते समय आप उन पर चाकू और कैंची लेकर न दौड़े। जब वह पूरी तरह खिल चुके फिर आप उन्हें लेकर पैरों तले रौंदें, तोड़े-मरोड़े या उनकी पूजा करें। आप स्वतंत्र हैं'—(रंगों की बोली)।

इससे अधिक आजादी एक रचनाकार अपनी समीक्षक के लिए क्या दे सकता है? वैसे लेखक की तो अपनी सीमाएं होती हैं। इसी संदर्भ में दादा समाजवादी गणराज्य के निर्माता लेनिन को भी उद्धृत करना नहीं भूले हैं, डी. सी. लेविस के एक कथन के अवतरण को उन्होंने 'मार डालने की वस्तु' आलेख में ज्यों का त्यों उठा लिया है—'लेखक का तो सब कुछ उधार। जब किताब बिके तब रायल्टी मिले। जबकि मजदूर तो बोनस, मजदूरी और ओवरटाइम, सब कुछ समय पर पा लेते हैं, अतः यदि हम लेखक को जिलाना चाहते हों तो उसकी मजदूरी देखकर उसे चुकायें। उसके खून का साहित्यिक स्वाद लेकर महज 'अच्छा है' न कह दें। न कि जब वह सुविधा और रोटी की मांग करें, तब उसे बुर्जुआ कह कर उसका मजाक उड़ावें। भूखी जिंदगी बिता, जरायमपेशा की तरह दिन रात काम कर और अपना नाम न बढ़ने दें' यह एक षडयंत्रकारी की जिंदगी है। ऐसी जिंदगी लेखक की नहीं हो सकती, उस लेखक की जो लोगों के मन खींच लेने की क्षमता के महान वैभव को किसी देश की महान उथल-पुथल के लिए लगाना चाहता है। उसे प्रसिद्धि से बचकर नहीं रहने दिया जा सकता। उसे प्रसिद्धि के द्वारा टूट पड़ने वाले सारे अभिशापों को स्वीकार करना ही होगा।'

दादा ने लेखक की 'कलम की जिंदगी' को पांच छन्नियों से लाचार होकर छनते देखा है, अतः उन्होंने अपनी मर्मव्यथा को रेखांकित करते हुए लिखा था कि क्या ऐसे महान खतरों के बीच अपनी बात कह ले जाने और महान परिवर्तन कर ले जाने वाला लेखक भूखों मार डाला जायगा? दादा की खुद की 'कलम की जिंदगी' भी उन्हीं पांच छन्नियों से छन छन कर आज भी अपनी गुणवत्ता के कारण अक्षरा बनी हुई है। क्यों नहीं हम भी एकाध गीत 'एक पुष्प अभिलाषा' सा होकर देख लेते।' सुर और उसकी सुरबाला तक को कवि ने नकार दिया है, सम्राटों की बात ही क्या है, प्रियतमा को रिझाने की जहां कोई चाह नहीं है, न वह मन किसी वैभवपूर्ण भाग्य पर ही इठलाना चाहता है। उसकी संपूर्ण अस्मिता की चाह तो मातृभूमि पर शीश चढ़ाने को जाते हुए पैरों की धूल भर बनना जो चाहती है। यही है वह आलोकवती आस्था जो आज तो अत्यंत विरल है। अज्ञेयजी ठीक ही तो कहते हैं—'और आज के राजनीतिकर्मी और जो कुछ होते हों, देश प्रेमी नहीं होते। प्रेम के उत्स सूख गये होते हैं तभी कोई अच्छा राजनीतिकर्मी बनता है।'

दादा भी राजनीति से जुड़े रहे थे, लेकिन वे राजीनितीकर्मी नहीं रहे। इसीलिए देश प्रेम उनके लिए सर्वोपरि सत्य और सौंदर्य था, वे तो आजीवन उसी के प्रकामी बने रहे। इसीलिए उन्हें यह दुनिया इतनी ताजा, इतनी रंगीन, इतनी नयी लगती रही थी, वह उसकी आवाज बने थे और इसी नाम को माखनलाल चतुर्वेदी के नाम से ठाकुर प्रसाद सिंह ने पहचाना है। इतने दिनों से लिखते रहने पर भी उन्होंने अपने को दुहराया नहीं, यही बात

आचार्य नलिनविलोचन शर्मा को उनका परम वैशिष्ट्य लगा है। डॉ. रामविलास शर्मा तो उनकी रचनाओं में रुपायित 'सूक्ष्म सौंदर्य बोध' आत्म विभोरगेयता और मोहक चिंतमयता' के युगांतरकारी महत्व को स्वीकाते हैं ही। वे अपनी पीढ़ी के लिए निश्चय ही एक ज्योतिकेंद्र थे, जहां बालकृष्ण शर्मा ''नवीन'' सुभद्राकुमारी चौहान, भवानी प्रसाद मिश्र, भवानी प्रसाद तिवारी, प्रभाकर माचवे, मुक्तिबोध, वीरेंद्र जैन, शिवमंगल सिंह ''सुमन'' धर्मवीर भारती प्रभृति उनके आसपास एकत्र थे। यशस्वी कवि श्री गिरिजाकुमार माथुर तो यहां तक कहते हैं—''यही नहीं राष्ट्रीय सांस्कृतिक उन्मेष के प्रेरणा स्रोत के रुप में माखनलालजी चतुर्वेदी का प्रभावृत सुदूर क्षेत्रों तक था।'' 'फिराक' गोरखपुरी जैसे ख्यातनाम शायर और अदीब तो खुले दिल से यह स्वीकारते ही हैं कि 'उनके (दादा के) लेखों को पढ़ते समय ऐसा मालूम होता था कि आदिशक्ति शब्दों के रुप में अवतरित हो रही है या गंगा स्वर्ग से उतर रही है। यह शैली हिंदी में ही नहीं, भारत की दूसरी भाषाओं में भी बिरले ही लोगों को नसीब हुई। मुझ जैसे हजारों लोगों ने अपनी भाषा लिखने की कला माखनलालजी से ही सीखी।' फिराक साहब जैसे प्रचंड अहंवादी से ऐसी मुक्त प्रशंसा एक विरल सचाई है। दादा के इस युग में भी क्या देशभक्तिपरक रचनाएं हिंदी साहित्य के क्षेत्र में कोई कम लिखी गई थीं? लेकिन यशस्वी नाटककार जगदीशचंद्र माथुर ने भी इस बात की ताईद की है कि 'मार्मिकता का वह सूक्ष्म शिल्प जो उसे शाश्वत बना देता है, शायद चतुर्वेदी जी को छोड़कर अन्य किसी कवि की पकड़ में न आ सका।'

दादा की रचनाओं की यही सबसे बड़ी गुणवत्ता है कि उनमें संगीत के सुरीले स्वरों का तो उल्लास पूर्ण समारोह है ही, उनकी चित्रमयी कल्पना शब्दों के भावपूर्ण चित्र उकेरती हैं, उनके दुःखों के पथरीले खंड कलात्मक बिंब बनते चले गये हैं और तभी तो डा. जगदीश गुप्त को दादा की रचनाओं के शिल्प में श्रेष्ठ चित्रकार और मूर्तिकार दिखाई पड़ते हैं। वे जब काव्य की वेणु लेते हैं तो धरा गूंजती है। बीजुरी का जलं आंजती सी लगती है, चांदनी के अदेखे स्तनों से दुधियाई किरणें झर झर कर इस धरती को सुवेष्टित करती हैं, कहीं चरण 'चरण धरे समय की पदचाप' के बिंब उभरते हैं तो कहीं 'समय का सांप' भी फुंकरण करता दिखाई देता है। देखिए न वसुधा की चूड़ियां किस तरह से खनकी हैः-

सौंदर्य के कांटों पर बलि के गुलाब जब फूलें
भू रानी के गोदों पर प्रतिभा के झूले झूले
फूलों से फल की दूरी कुछ दूर नहीं होती है
अलमस्तों की मजदूरी मजबूर नहीं होती है!

चिड़िया चहकीं नभ, भूपर चुड़ियां खनकी वसुधा की
खेलते हवा के झोंके सुन कथनी मर्म व्यथा की!

चतुर्वेदी जी की अंतश्चेतित दृष्टि में गणतंत्र का उभरता यह बिंब मर्म को आज भी कितना छूता है-

यह उठी आराधिका सी राधिका रसराज
विकल यमुना के स्वरों फिर बीन बोली आज।

क्षुधित फण पर क्रुधित फणि की, नृत्य कर गणतंत्र
सर्जना के तंत्र ले, मधु अर्चना के मंत्र।

जग उठे नेपाल प्रहरी, हंस उठे गांधार
उदधि ज्वरों उमड़ आया वसुंधरा में प्यार
अभय वैरागिन प्रतीक्षा अमर बोले बोल
एशिया की गोप बाला उठे वेणी खोल!
नष्ट होने दो सखे! संहार के सौ काम,
वेणु लो, गूंजे धरा, मेरे सलोने श्याम!

अपने युग-जीवन की धरती पर मजबूती से पांव-पांव चलता इस पैदल यात्री का मन जो 'मानव के मृदु प्यार' से भरा भरा है, विश्व के भविष्य के प्रति दुश्चिंताओं से अछूता कहां है?—

लाशों भरा विश्व कर देंगे जिनके आविष्कार
तू कब तक देखता रहेगा मानव के मृदु प्यार?
तेरा प्रेम, संत का, बाना, मानव का संबल है,
रे पैदल यात्री, दुनिया का तु ही अनोखा बल है !

(नवंबर 1961)

आज की नयी दुनिया इस स्पुतनिक-समय के पंखों पर बैठ, ध्वनि की गति से कई गुना अधिक गति से "स्टारवार" के सपने संजोये, विश्व को लाशों की विराट कब्रगाह बनाने पर आमादा है, उस वक्त भी उसने जीवन में अपना अटूट विश्वास नहीं खोया है। यही तो इस चिंतक की लाचारी है—'मेरे उन देशवासियों में, जिनकी जीभ बोलना नहीं जानती, भुजा उठाना नहीं जानती, कहते हैं उसने अपराध किये हैं किंतु उनकी कथनी में अपराध नहीं दिखते और इसीलिए जब भी मैं लिखता हूं—लगता है उन्हीं के लिए लिखता हूं, मानों समस्त दौड़-धूप, समस्त यात्राएं, इसी दिन के लिए की गयी थीं। (बंदी जीवन और सृजन)।

'हिमकिरीटिनी' के इस कवि ने 'हिमतरंगिनी' की भी रचना की थी। हिमालय के गौरीशंकर शिखर की तरह उदात्त भावभूमि पर उठा हुआ यह काव्य-व्यक्तित्व, हिमतरंगिनी' गंगा की उज्जवल तरंगों से तरंगायित, अनंत प्यार और इच्छा लिए प्रवाहित हुआ है। अंतरमन की स्फूर्तियों से प्रस्फुटित हुई है ये राशि-राशि रचनाएं जिनके अंतरतम का सौंदर्य निरंतर गाढ़ा होता चला- गया है, और इसीलिए इस कलम की जिंदगी प्राणों के रस को पाकर निहाल हो उठी हैं। छायावादी कवि पंत को इसीलिए ये रचनाएं, छायावादी रचनाओं की सहधर्मिणी लगी हैं। फिर भी इन रचनाओं ने लेखन के आभिजात्य के तिलस्म को भी तोड़ दिया है। लोकभाषा की सहज ऊर्जा और गति-लय तथा भंगिमा को अंगीकार करती लोकमानस को छूती हैं। 'नयी कविता' के कवि श्री जगदीश गुप्त तो 'एक भारतीय आत्मा' को नई कविता की कड़ी ही मानते हैं जो सर्वेश्वर दयाल और धूमिल तक विकसित होती चली गई है। यही तो खरी कसौटी है इन रचनाओं के युगांतरकारी प्रभाव की।

लेकिन यह भी कितना दुःखद सत्य है कि इन रचनाओं का सही मूल्यांकन अब तक नहीं हो पाया है। छायावादी कवि ही नहीं, कई अन्य काव्यकार भी विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में ऊंचे आसन पर प्रतिष्ठित किये गये हैं, 'वहीं माखनलालजी को जमीन पर बैठने का आसन तक नहीं दिया जाता'—हमारे समय की यह कितनी बड़ी हकीकत है। दादा की 'क्रांतिकारी राष्ट्रीयता', महज राजनीति की राष्ट्रीयता नहीं है जो राजनीति के समय समय के रुपों के साथ बदलती रही हो। उनकी राष्ट्रीयता तो भारत की गौरवपूर्ण सांस्कृतिक विरासत है। निश्चय ही वह देश की संस्कृति की निरंतर प्रवहमान धारा है। ''गंगा की विदाई'' जैसी रचनाएं इस सत्य के ज्वलंत सबूत हैं।'' ''परशुराम की प्रतीक्षा'' जैसा नस्लवादी दृष्टिकोण उसमें कतई नहीं है। फिर सांप्रदायिक अलगाववाद जैसी अर्थ ध्वनियां उनमें कहां सुनाई देंगी? पश्चिम के से संकीर्ण, ज्वलनशील और ईर्ष्यालु राष्ट्रवाद ने तो विश्व को दो महायुद्ध दिये हैं, कारण—भारतीय संस्कृति के जो महत् अवदान हैं, उनका उसमें एकांत अभाव हैं, अतः उसके साथ भारत की सांस्कृतिक राष्ट्रीयता की पटरी बैठाने का प्रयत्न निरी अबोधता है।

अतः स्वस्थ और विवेकपूर्ण मूल्यांकन के क्षेत्र में हमें इस ओछी राजनीति से अछूता रहना ही पड़ेगा, क्योंकि राजनीति महज राजनीति होती है—न वह साहित्य की हो सकती है, न संस्कृति की ही। वह तो सदैव सत्ता केंद्रित रही है, प्रभुता की प्रहारशक्ति है उसके पास। माखनलालजी के गौरवमय काव्य-व्यक्तित्व के आसपास उसका तो कोई अस्तित्व ही नहीं है, जिसने फूलों में भी श्रृंगार पाल रखा था, लेकिन वे फूल और वे विद्रोह के अंगार भी, दोनों ही उस व्यक्तित्व के महत्वपूर्ण अंग थे।

ऐसे कृती रचनाकार के लिए, उसी की ये अविस्मरणीय काव्य-पंक्तियां ही अत्यंत सार्थक प्रतीत होती हैं—'तुम अपने न हुए,

तुम केवल मातृभूमि के, भारत भूमि के
तुम्हारी असफलताओं पर कुंकुम,
तुम्हारी अवज्ञाओं पर अक्षत,
तुम्हारे बलिदानों पर
आजाद भारत के अमित गर्व! □

माखनलाल चतुर्वेदी : शताब्दी की देन

प्रो. लक्ष्मीनारायण दुबे

स्व. माखनलाल चतुर्वेदी का साहित्यिक व्यक्तित्व हमारे समक्ष कई रुपों में आता है। वे एक साथ कवि, लेखक, पत्रकार, वक्ता, गद्य काव्यकार, नाट्यकार, कहानीकार आदि के वरेण्य उपादानों को समाहित किये हुए हैं। यद्यपि उनके द्वारा लिखित पुस्तकें तथा हिमतरंगिनी, हिमकिरीटिनी, माता, युगचरण, समर्पण, साहित्य देवता, कृष्णार्जुन युद्ध कला का अनुवाद, अमीर इरादे और गरीब इरादे आदि संख्या में कम हैं परंतु यह निश्चित है कि उनका वाङ्मय बहुमुखी एवं व्यापक है। उनकी बहुत सी पुस्तकें बाद में प्रकाशित होकर आईं। 'हिमकिरीटिनी' पर देव पुरस्कार मिलने के बाद, डा. नगेन्द्र ने समय व युग के दृष्टिकोण से यह लिखा था कि कहने वालों ने ठीक कहा है कि 'हिमकिरीटिनी' का प्रकाशन समय के बहुत बाद हुआ है। डा. प्रभाकर माचवे ने भी उसी तथ्य की ओर संकेत करते हुए लिखा है कि जीवन में लिखा बहुत-छपाया करीब नहीं के बराबर, ये 'हिमकिरीटिनी', 'हिमतरंगिनी' बहुत देर से छपे संग्रह हैं। सो भी प्रतिनिधिक नहीं, यह कला का एकांत साधक नाम के पीछे कभी नहीं रहा—रुढ़ि द्वार के निरंतर पीड़ित यह तरुणों को सदा प्रोत्साहन ही देता रहा, कभी इसने मसि और असि को एक मानने वाले रस की सरिता को सूखने न दिया।

'एक भारतीय आत्मा' का साहित्य उनके जीवन की वास्तविकता की प्रतिच्छाया है। देशभक्ति, राष्ट्रीयता, विद्रोह, क्रांति, कारावास, यापन संघर्ष, व्यस्तता के इन विस्तृत जीवन पट में इन्हें न तो विश्राम ही मिला और न अवकाश। इसलिये उनके काव्य में बलिदान, हुंकार, प्रेम, रहस्य, स्वतंत्रता, ओज, प्रगति आदि की ध्वनि अधिक सुनाई देती है। ऐसे साहित्यकार के जीवन व साहित्य में हास्य रस का अत्यल्प रुप होना आश्चर्य व कृत्रिमता की बात नहीं है। हिंदी में हास्य रस का अभाव ऐसे ही बहुत खटकने वाला है। इसका कारण हमारे साहित्य के विकास की युगीन परिस्थितियां, हमारा स्वभाव व मान्यताएं तथा देश की स्थिति है। डॉ. नगेन्द्र ने लिखा है कि हिंदी ने जहां संस्कृत प्राकृत की ओर रीति-नीति उत्तराधिकार में प्राप्त की वहां हास्य की सामग्री भी थोड़ी बहुत अपनायी। इस हेतु साहित्य में हास का थोड़ा बहुत रूप ही उपलब्ध होता है। स्वयं माखनलाल जी के ही कथन उनके जीवन का विगत रुप व विश्लेषण करते हैं। उन्होंने कहा है: ''मुझे तो तेहरी जिंदगी बितानी पड़ी है। उसमें एक तरफ मैं स्कूल मास्टर था, दूसरी तरफ कविता और साहित्य का लेखक था और तीसरी तरफ पिस्तौलधारी था और ये तीनों बदनसीब साथ-साथ चल नहीं पाते थे। इसलिए उन्हें साथ-साथ चलाने की घोर विषमताओं में मेरे जीवन के समस्त आनंद खर्च हो गये। इस त्रिकोण में मैं सदा ही घिरा रहा और इस समस्या के साथ मेरे साथ यह भी समस्या रही है कि नित्य ही मैं समस्याओं का सामना करता रहा हूं। समस्याओं के सामने आने के कारण, सामने पड़ने के कारण, समस्याओं को कुरेदने की आदत पड़ गई। पहले तो समस्या मुझ पर संकट की तरह टूटी, फिर समस्याएं परिस्थितियों को सामने लेकर आई

और उन्होंने समाधान चाहा और फिर मैं स्वयं समस्याएं कुरेदने लगा। गरज कि समस्याओं से मेरा पिण्ड नहीं छूटा।'' इस उतार-चढ़ाव वाला चरण विवर्तों से परिपूर्ण जीवन की एक झलक उन्हीं के ही शब्दों में: ''इस तरह जंगल, नदी, पहाड़, चट्टान, उतार, बोगदे, लड़ाई-झगड़े, ये मेरे जीवन में बहुत नजदीक रहे हैं और एक आधी जिंदगी में न तो टूट पाया, न कम हो पाया।''

चतुर्वेदी जी के साहित्य का मूल स्वर राष्ट्रीयता एवं विह्वल प्रेम का है। फिर भी हास्य तथा व्यंग्य के छीटें जहां-तहां हमें उपलब्ध हो ही जाते हैं। इस सूत्र को उनके साहित्य में से निकाल कर लाने के लिए उनकी जीवनी व विचारधारा में पैठना आवश्यक है। स्वतंत्रता संग्राम के अपराजेय सेनानी होने के नाते, उनकी वाणी में गौरांग महाप्रभुओं एवं उनकी रीति-नीतियों के लिए आक्रोश, क्षोभ, ज्वाला, चुनौती आदि की भावना होना नैसर्गिक है। इसीलिए उनकी कविता में भी व्यंगय का पुट अपने निर्मलतम रुप में आ गया है। उनके काव्य, सम्पादकीय एवं लेखों में मृदुल व्यंग्य एवं तीखे व्यंग्य दोनों प्राप्त होते हैं। इस शैली के विषय में श्री जयनाथ नलिन ने लिखा है कि यह शैली ही यथार्थ रुप से 'व्यंग्य शैली' कहलाने का अधिकार रखती है। इसी में लेखक के मानसिक संतुलन का पता चलता है। इसमें प्रौढ़ता की गंभीरता भी रहती है और जवानी की मस्ती और छेड़छाड़ भी। इसका प्रभाव भी अमिट होता है। बड़ी से बड़ी बात कह दी जाय, विरोधी भी मुस्करा कर बधाई दे। समाज, साहित्य, नैतिकता, शासन किसी पर भी व्यंग्य शैली में आक्रमण किया जा सकता है। बड़े तर्कों, दार्शनिक बहसों और प्रमाणों से यह काम नहीं निकलता जो इस शैली की रचनाओं से निकलता है। इस मीठी चुटकी एवं गुदगुदाने का रुप माखनलाल जी के साहित्य में अपने सात्विक रुप में प्राप्त होता है।

विदेशी विद्वानों ने हास्य के पांच भेद किये हैं—(1) स्मित हास्य (Humour) (2) वाक्छल (Wit) (3) व्यंग्य (Satire) (4) वक्रोक्ति (Irony) और (5) प्रहसन (Farce) । इनमें से स्मित हास्य, बाक्छल, व्यंग्य और वक्रोक्ति का रुप सहज ही 'एक भारतीय आत्मा' के काव्य में देखा जा सकता है। वक्रोक्ति की परिभाषा देते हुए 'मेरीडिथ' ने लिखा है-

''If instead of a falling for the ridicule of with a satiric rod, to make him writhe and shriek aloud, you prefer to sting him under semi-caress, by which he shall in his enguish be rendered dubious, whether indeed anything has hurt him, you are an engine of irony.''

प्रो. जगदीश पाण्डे ने भी लिखा है कि वक्रोक्तिकार भी धनुष की भांति झूठी नम्रता में झुककर तीर की तरह चोट करता है। इसमें स्मृति तथा निंदा दोनों झूठी होती हैं। स्तुति, निंदा वक्र वक्रोक्ति में भेद ध्वनि का है। ध्वनि में ही अर्थ गूढ़ रहता है। वक्रोक्ति तथा सच्ची स्तुति या निंदा में वही साम्य है, जो कोयल और कौए में है। वक्रोक्ति को सच मानना विश्वासघात का आवेग बनना है। इस वक्रोक्ति एवं व्यंग्य का सम्मिश्रण हमें चतुर्वेदी जी की 'उलाहना' कविता में मिलता है।

यह लाली है,
सरकार आपकी कृपा
पूर्ण जंजीरों के घर्षण से,
निकले मोती हैं।
चुम्बन में नहीं, पधोरा तुम
हर रोज उदार। प्रहारों में,
त्यौहार? सदा सूली के दिन
मनते आये त्यौहारों में।

हास्य रस का उद्भव भी कई कारणों से होता है। विचित्र वेशभूषा, कार्य-कलाप, विकृत चेष्टाएं, अटपटी वाणी आदि के द्वारा इस रस का उद्रेक संभव है। हमारे यहां कहा गया है-

विकृत कृति वाग्विवेरात्मनो च परस्य वा।
हासः स्यात् परिपोषोस्य हास्यामिप्रकृतिः स्मृत ।।
विकृताकार वाग्वेष चेष्टादे कुहुकां वदेतु।
हास्यो हास स्थायिप्रावः श्वेतः प्रमथः देवतः ।।

माखनलाल जी ने अपने प्रख्यात नाटक 'कृष्णार्जुन युद्ध' के शशि शंख संवाद में वाणी एवं शब्दों के द्वारा हास्य उत्पन्न किया है। इस संवाद की पूर्व-पीठिका में स्वयं नाट्यकार का बाल्य जीवन बोल रहा था। उन्होंने कहा है: ''कृष्णार्जुन युद्ध नाटक लिखते समय शंख और शशि के विनोदी कथोपकथन मे जो अमरकोष तथा कौमुदी के सूत्रों का विडंबन किया गया है, उस समय शंख और शशि के रुप में मैं और मोती मुझे याद आ रहे थे और खेड़िया का नर्मदा घाट।'' इन बाल्य मित्र का परिचय जीवनी लेखक बरुआ जी ने स्वयं दिया है, ''ब्रह्मचारी जी के जाने के बाद अब जहां कहीं भी दादा पढ़ने जाते या संस्कृति के किसी नाम से, वहां दो मकार या मक्कार अवश्य साथ जाते—मोती और माखन''। इस नाटक में नारद का नवीनीकरण किया गया है। 'माखनलाल चतुर्वेदी के जीवनीकार श्री बरुआ ने ठीक ही लिखा है कि इस नाटक की सबसे बड़ी विशेषता इसका मनोविनोदी अंश है। उसे देखकर श्रोताओं का साहित्यिक स्तर पर कितना मनोरंजन नहीं होता। माखनलाल जी का विनोदी अंश इस कृति के बाद अत्यल्प रुप में भी आज चालीस वर्ष से ऊपर होने को आये, साहित्य जगत में पुनः प्रकाशित नहीं हुआ है।

हास्य की क्रिया का कवि ने सुंदर वर्णन किया है। वे अपनी एक कविता 'तुम न हंसा' में कहते हैं :-

''हंसते हो जाने कैसा सा,
बिखर बिखर पारा झरता है।''

हास्य पूर्ण मधुर छवि का एक चित्र देखते ही बनता है :-

हास्य का प्रयात, प्राण-मेरु से गिरा

कि ध्वनि बिखर उठी
और एक कान पर रखे
करार विंद,
छवि निखर उठी।

आचार्य भरत मुनि और पंडितराज जगन्नाथ ने हास्य के दो भेद या विभाग-आत्मस्थ और परस्थ किये हैं परंतु 'साहित्य दर्पणकार' ने हास्य को छः भागों—स्मित, हसित, विहसित, उपहसित, अपहसित, अतिहसित में बांटा है। माखनलाल जी के काव्य में स्मित हास्य प्राप्त होता है जिसे आचार्य विश्वनाथ ने श्रेष्ठ लोगों के योग्य बतलाया है-

'ज्येष्ठाना स्मितइसितै मध्यानां
विहसिता बहसिते च।
नीचा नामपहसितं तथापि हसितंतदेवष षड्भेद।'

जिसमें कपोल थोड़े, विकसित हों, नेत्रों के प्रांत अधिक प्रकाशित न हो, दांत दिखाई न दें और जो मधुर हो, वह हंसना 'स्मित' कहलाता है।

श्याम ने, अपनी तरफ देख ली
दोनों की नज़र
कुछ गुनगुनाते हुए आगे
आने लगा वह नटवर।
दोनों तैयार हैं,
किस ओर को पहले झपटूं?
बाप के कंधे ?
या मैया के हिये से लपटूं।
पाया नजदीक,
चूमने को बढ़ पड़े दोनों,
प्यार का जोर था
ऐसे उमड़ पड़े दोनों
कान्ह ने धोखा दिया,
ताली बजा, पीछे खिंचा
जोर से बढ़ते हुए सर से
लड़ पड़े दोनों।

चतुर्वेदी जी का गद्य काव्य वक्रोक्ति का भंडार है। डा. कमलेश ने लिखा है कि किसी भी चीज को वक्रोक्ति के ढंग से प्रस्तुत करना चतुर्वेदी जी की विशेषता है। उनकी सूक्तियां, उनके विरोधाभास, उनकी फारसी और संस्कृतयुक्त भाषा, उनकी मौलिक कल्पनाएं और सूझें उनकी विधायक प्रतिभा की ऊंचाई के प्रमाण हैं और इस दृष्टि से वे हिंदी गद्य-काव्यकारों में बहुत ही ऊंचे स्थान के अधिकारी हैं। माखनलाल जी ने श्रृंगारी व्यंग्य

कसा है। सच्चे कवियों के अभाव में उनकी वाणी का आक्रोश फूट पड़ा है: "तुर्की बेतुकी तितलियां बहुत हैं, प्रभु बाझोले नम विच्छेदी गरुड़ पता नहीं।"

'कवयः कांतदशिनः' की प्रसिद्ध उक्ति के अनुसार माखनलाल जी वास्तव में क्रांतिद्रष्टा थे। इसी विचारधारा के कारण उन्होंने राष्ट्रीयता को मूर्धन्य माना। डा, सुरेशचन्द्र गुप्त लिखते हैं कि कवि वाणी को निबंध मानने पर भी चतुर्वेदी जी के काव्य की भाव-दीप्ति के लिए उसमें राष्ट्रीयता के प्रतिपादन को सर्वाधिक महत्व प्रदान किया है। उनके राष्ट्रवादी विचारों की दो दिशाएं हैं—उन्होंने एक ओर देश की परतंत्र अवस्था में कवि को उसके गुरुतर कर्त्तव्य के प्रति जागरुक किया है और दूसरी ओर काव्य के जनजीवन के प्रतिनिधित्व को आवश्यक माना है। इसी कारण उनकी व्यंग्यपूर्ण वाणी फूट पड़ती है—

'मेरी कलाइयों में तरसती रही कला,
तूने अमीरी, कह मुझे कितना नहीं, छला?'

इस प्रकार माखनलाल जी के साहित्य में देशप्रेम का उदात्त एवं पुनीत भावनाओं के साथ हास्य, व्यंग्य वाक्-वैदग्ध भी सार रुप में मिल जाता है। चतुर्वेदी जी के विनोद से जार्ज बर्नाड शा का स्मरण हो आता है। वे बड़े शिष्ट, संयत, बौद्धिक और गुदगुदाने वाला मजाक बढ़े अनूठे ढंग से करते थे। लेहंट ने 'वाक्-वैदग्ध' एवं 'स्मित' के संयोग को ही मनोविनोद का श्रेष्ठ माध्यम माना है-

"Wit and Humour are to be found sometimes apart but their richest effect is produced by their combination. Wit apart from Humour is an element to sport with, in combination with humour it runs into the richest utility and helps to humarise the world."

'वाक्-वैदग्ध' या 'विट' का एक रोचक दृष्टांत डा.-प्रभाकर माचवे ने भी दिया है: "एक संस्मरण मेरे लिए चिरस्मरणीय है। सन् 1934 में बंबई कांग्रेस के मध्यप्रदेश शिविर में माखनलाल जी ठहरे थे। वहां मैं भी विद्यार्थी दर्शक के नाते गया था। इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्रो. महेश मिश्र जानते हैं। प्रेमचंद जी तब सिनेमा में नहीं थे, माखनलाल जी से मिलने आये। खूब ठहाके रहे। प्रेमचंद के चेहरे की झुर्री झुर्री सिंदूरी हो गयी। माखनलाल जी में वार्तालाप कुशलता और 'विट' अत्यधिक है। उन्हें हंसाते रहे, हंसाते रहे। बात कहानी और निबंध की चली थी। अब मुझे धुंधली सी स्मृति है। एक जूते को पालिश करने वाला छोकरा वहां शिविर के अस्थायी आवास में घुस गया। माखनलाल जी ने मराठी में उस लड़के से मजाक किया। "जूता काला करने के बजाय तू अपना ही मुंह काला कर (अर्थात जा)। प्रेमचंद अर्थ सुनकर बहुत हंसे। उन्होंने कहा यह जूते ही हैं, यह छड़ी है, यह शू ब्लेक है—यह सब हमारे लेखकों के विषय होने चाहिए। माखनलाल जी ने कहा था—टालस्टाय की तरह।" □

कैदी और कोकिला का काव्य चिंतन

डॉ. पांडेय शशिभूषण शीतांशु

'कैदी और कोकिला' पं. माखनलाल चतुर्वेदी की एक ऐसी कविता है, जिसका सर्जनात्मक और अवबोधात्मक नाभिकेंद्र (Nucleous) ''शब्द'' नहीं है, बल्कि ''प्रोक्ति (Discourse) है। कविता को प्रायः शब्द-केंद्रित माना जाता रहा है। भारतीय काव्यशास्त्र में उसे शब्द-केंद्रित मानने वालों की, इसके पक्षधरों की संख्या अधिकाधिक है। पश्चिम में भी ''कविता शब्द है'', यह मान्यता अधिक प्रचलित रही है। फ्रांसीसी कवि मलार्मे और हिंदी कवि 'अज्ञेय' तो इसके प्रबल पक्षधर ही रहे हैं। कविता के इस शब्द केंद्रण का स्वीकार कविता के वाक्य-केंद्रित होने का निषेध करता है। कहना होगा कि माखन लाल जी की 'कैदी और कोकिला' कविता अपनी सर्जनात्मकता में कविता के शब्द-केंद्रित होने की इस मान्यता से प्रस्थान (Depart) करती है तथा अपनी अवबोधकीय भावन-प्रक्रिया में भी भावक-पाठकों को शब्द-केंद्रित विश्लेषण मात्र के लिए अनामंत्रित करती है।

हिंदी में जिस छायावादी कविता को शब्द-केंद्रित सिसृक्षा का अप्रतिम उदाहरण माना जाता है, माखनलाल चतुर्वेदी का काव्य-संवेदन उस शब्द-केंद्रित सिसृक्षा की परिपाटी का अनुकरण नहीं कर उससे प्रस्थान करता है। पर ऐसा करते हुए वे अपनी कविता के लिए वाक्य को भी केंद्रण में नहीं रखते, बल्कि उससे ऊपर की और भाषा का सबसे बड़ी इकाई ''प्रोक्ति'' (Discourse) को अपनी कविता का नाभिकेंद्र बनाते हैं।

प्रोक्ति (Discourse) वाक्यों की वह लड़ी या श्रृंखला है जो अपने तर्कपूर्ण अनुक्रम में एक निश्चित संदर्भ बनाती है तथा कथ्य को आंतरिक संसक्ति देती है। यह भाषा के अंतर-वैयक्तिक (Inter-personal) प्रकार्य में क्रियाशील होती है। माखनलाल जी संप्रेषण के लिए सबसे सार्थक मानी जाने वाली भाषा की इस इकाई को सर्जनशीलता की दृष्टि से भी सर्वाधिक सार्थक इकाई मानते हैं। अतः उनके काव्य-चिंतन की पहली बुनियादी विशेषता कविता को शब्द-केंद्रित नहीं मानकर प्रोक्ति-केंद्रित मानना है। उनकी अन्य अनेक कविताओं की तरह 'कैदी और कोकिला' कविता भी इस स्थापना को संपुष्ट करती है। यदि केवल इस कविता के संदर्भ में बात की जाए तो यह इस स्थापना का प्रवर्त्तन भी करती है।

माखनलाल जी के काव्य-विषयक इस चिंतन को तुलनात्मकता का संदर्भ देकर और अच्छी तरह स्पष्ट किया जा सकता है। हिंदी में जहां प्रसाद, निराला, पंत, महादेवी और 'अज्ञेय' शब्द-केंद्रित काव्य-चिंतन के कवि हैं वहां माखन लाल जी प्रोक्ति-केंद्रित काव्य-चिंतन के कवि। हिंदी में ये दोनों निकाय सर्वथा अलग रुप में सक्रिय रहे हैं। इस पार्थक्य को नहीं समझने के कारण ही 'अज्ञेय' ने ''एक भारतीय आत्मा'' पर संस्करण लिखते हुए यह आरोप किया है कि

> ''एक भारतीय आत्मा'' की कविता में जहां एक ओर सहजता, ओज और

> प्रवाहमयता मुझे निरंतर आकृष्ट करती रही और अब भी करती है, वहां दूसरी ओर उनकी भाषा में एक अनगढ़पन एक असम और अटपटी गति—क्रमशः अधिकाधिक खटकती गयी।''
>
> (स्मृति लेखा, पृष्ठ 97)

कहना न होगा कि माखनलाल जी की काव्यभाषा में यह अनगढ़पन और इसकी एक असम और अटपटी गति इसलिए है कि उनकी कविता 'शब्द-केंद्रित' नहीं होकर 'प्रोक्ति-केंद्रित' है। यानी जब कविता में सर्जनात्मकता शब्द-केंद्रित नहीं रह कर ''प्रोक्ति-केंद्रित'' बनती है तब उसमें सहजता और प्रवाहमयता के साथ-साथ शब्दों के चयन का अनगढ़पन और उसके संयोजन का असम अटपटापन सामने आ सकता है। प्रोक्ति का केंद्र अलंकरण के लदाव को स्वीकार नहीं कर पाता। उसका पूरा अवधान 'कथन' को कहने की ओर होता है।

मुक्तिबोध ने बहुत पहले अपने ढंग से इस तथ्य की ओर ध्यान दिया था और मध्यप्रदेश की 'कहन शैली' की बात उठायी थी :

> ''प्रचलित साहित्यिक शैलियों के तुलनात्मक अध्ययन से यह प्रकट होता है कि यहां की शैली में ''कहन'' अधिक और अलंकरण कम है।....''कहन'' की तारीफ यहां की विशेषता है। कवि-स्वभाव-भेदानुसार कहन-कहन में भी फर्क है। श्री रामानुज.लाल श्रीवास्तव की काव्य-शैली, जहां वह वस्तुतः मौलिक है, स्वर्गीया सुभद्रा कुमारी चौहान और श्री माखनलाल चतुर्वेदी की शैलियों से पृथक हैं।'' और पुनः उनका यह कथन कि ''मध्य प्रदेश की एक विशेष काव्य-शैली रही है, जिसमें 'कहन' की प्रधानता है। ऐसी शैली उत्तर प्रदेश, मध्यभारत तथा बिहार में नहीं पायी जाती। कहन-प्रधान इस काव्य शैली के अंर्तगत विभिन्न कवियों की अपनी-अपनी व्यक्तिगत शैलियां हैं, जिनके कारण वे अनूठे हो उठे हैं।''
>
> (मुक्तिबोध रचनावली : पांच, पृष्ठ 422)

यद्यपि इस वैशिष्ट्य के उल्लेख के संदर्भ में उनका अभिप्रेत विशिष्ट स्थलीयता को, मध्यप्रदेश के भू-भाग को निर्दिष्ट करना था, पर कविता में ''कथन'' को कहने की जिस सहजता की ओर उन्होंने निर्देश किया था। वह भाषावैज्ञानिक दृष्टि से ''प्रोक्ति'' जैसी संकल्पना का ही विवेच्य था। प्रोक्ति में जो अंतर-वैयक्तिक होने का गुण है वास्तव में वह उसकी संलापात्मकता और संबोधन शैली को निर्दिष्ट करता है। निस्संदेह यह सहज संलापात्मकता और संबोधनपरकता माखनलाल जी की कविता की गुणधर्मिता है। इस दृष्टि से माखनलाल जी का और 'कैदी और कोकिला' कविता का काव्य-चिंतन, ''कहन'' शैली का पक्षधर ही नहीं, अपितु प्रवर्तक काव्यचिंतन है।

अपनी एक कविता में 'गीतों के राजा' को संबोधित करने वाले और 'कैदी और कोकिला' कविता में 'क्या गाती हो' पूछने वाले माखनलाल जी के लिए कविता गेय है। वे इसकी गेयात्मक प्रकृति और सत्ता को स्वीकार करते हैं, इसमें किसी प्रकार का संदेह नहीं है। पर वे कविता को रूप-चमत्कार से भरा चाकचिक्य पूर्ण संसार नहीं मानते। उनके

लिए कविता सबसे पहले संदेश है, एक 'Poetic Message' है: ''क्या लाती हो?/संदेशा किसका है?/कोकिल बोलो तो।'' इस प्रकार ''कैदी और कोकिला'' कविता के आधार पर उनका काव्यचिंतन वस्तुवादी सिद्ध होता है। वस्तुतः ''कैदी और कोकिला'' एक ऐसी कविता है जो कवि की जागरुक समाज-राजनीतिक साझेदारी को और काव्य की कारगर संदेशात्मक शक्ति को एकसाथ प्रतिष्ठापित करती है। इस कविता का काव्य-विषयक चिंतन काव्य को 'स्वांतः सुखाय' नहीं मानकर उसे सजग तौर पर गत्यात्मक समाज-राजनीतिक चिंतन-व्यापार के रुप में उपस्थित करता है। यह कविता कवि को उस शक्ति स्रोत के रुप में उपस्थित करती है जो पूरे समाज, देश और राष्ट्र को स्तर पर उस मानसिकता, वैचारिकता का गठन करती है जिसका संबल और आधार प्राप्त कर समाज, देश और राष्ट्र क्रांतिधर्मी हो उठता है। 'कैदी और कोकिला' कविता में काव्य-विषयक चिंतन का यह वह उद्‌बोधनात्मक पक्ष है जिसके विषय में गोपाल सिंह नेपाली का आत्म-स्वीकार द्रष्टव्य है :-

''कि कवि हूं जगाता करम है हमारा,
कि कमजोर पाकर मिटा दे न कोई
इसी से बचाना धरम है हमारा।''

'कैदी और कोकिला' एक द्वयाभिमुखी स्थिर संलापमूलक काव्य-प्रोक्ति (Poetic Discourse) है। संलापमूलक इसलिए कि इस कविता में कैदी, कोकिला को संबोधित करता बातचीत करता है और स्थिर इसलिए कि इस कविता में कोकिला की ओर से कहीं भी कैदी को किसी प्रकार का उत्तर नहीं दिया जाता है। द्वयाभिमुखी इसलिए कि इस काव्य प्रोक्ति में वक्ता तो सक्रिय है, किंतु श्रोता भले ही कभी वक्ता की भूमिका में नहीं आ पाता हो, पर वह अपनी अनुक्रियाअवश्य व्यक्त कर जाता है: 'फिर कुहू...अरे क्या बंद न होगा गाना?'

अपने प्रोक्ति संरचनात्मक वैशिष्ट्य में यह कविता 'तुम-मैं संस्थिति' (You-I Situation) को दर्शाती है। इसमें कोकिला ''तुम'' की भूमिका में है और ''कैदी'' ''मैं'' की भूमिका में। कैदी वक्ता है और कोकिला श्रोता। पर क्या ये वास्तव में मध्यम पुरुष और उत्तम पुरुष सर्वनाम के रुप में कविता के दो भिन्न चरित्र हैं? क्या सचमुच कोकिला नरेतर क्षेत्र और कैदी नरक्षेत्र का प्रतिनिधित्व करते हैं? क्या कोकिला के प्रति कैदी की प्रश्नाकुलता कोकिला को बाह्यसत्ताक मानती है? आखिर इस कविता में कोकिला की मुखरता के प्रति निरंतर प्रश्न पर प्रश्न क्यों है? यहां 'क्या', 'क्यों', 'किसका', 'किस' और 'किसमें' की एक आवर्तक प्रश्न श्रृंखला क्यों है? कैदी और कोकिला की मानसिकता और संवेदना के अंतर्संबध क्या हैं? बिना इन प्रश्नों का उत्तर प्राप्त किये इस कविता के काव्यचिंतन को नहीं समझा जा सकता है।

इन प्रश्नों का उत्तर पाने की निर्वचनात्मक अपेक्षा के लिए संदर्भित कविता की रचना-प्रक्रिया का उद्‌घाटन करना आवश्यक है। यहां यह ध्यान देने योग्य है कि यद्यपि माखनलाल जी का काव्य चिंतन वस्तुवादी है, तथापि उनकी काव्य रचना प्रक्रिया सपाट नहीं होकर स्वप्न-यांत्रिकी की प्रक्रिया जैसी ही है। जिस प्रकार स्वप्न-यांत्रिकी में 1. नाटकीयता (Dramatisation) 2. विस्थापन (Diplacement) 3. प्रतीकीकरण (Symbolisa-

tion), 4. संहनन (Condensation) और 5. द्वितीय विस्तार (Secondary Elaboration) के कौशल क्रियाशील होते हैं उसी प्रकार 'कैदी और कोकिला' कविता की रचना-प्रक्रिया में भी ये पांचों कौशल अपनी-अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहे हैं। नाटकीयता का तत्व तो संदर्भित कविता के आरंभण और समापन दोनों ही बिंदुओं पर प्राप्त होता है। कविता का आरंभ अत्यंत नाटकीयता से होता है जिसमें अनौपचारिक प्रोक्ति-प्रश्नात्मकता की वृत्तिकता (Modality) छायी है :-

"क्या गाती हो?
क्यों रह-रह जाती हो?
कोकिल बोलो तो।
क्या लाती हो?
संदेशा किसका है
कोकिल बोलो तो।"

इसी प्रकार कविता की अंतिम प्रोक्ति-प्रश्नात्मकता अपनी प्रकृति में अनौपचारिक होने के बाद भी चुनौती भरी और अभिप्रेरक है :-

"क्या? घुस जाएगा रुदन,
तुम्हारा निःश्वासों के द्वारा
कोकिल बोलो तो
और सवेरे हो जाएगा
उलट-पुलट जग सारा
कोकिल बोलो तो"

इसके अतिरिक्त कविता के मध्य में भी—'फिर कुहू....अरे क्या बंद न होगा गाना' जैसी अभिव्यक्ति में इस नाटकीयता की सक्रियता देखी जा सकती है।

अंत की नाटकीयता तो लगातार चल रही वर्तमानकालिकता और सामान्य तथा आसन्न भूत कालिकता को अचानक छोड़ भविष्यकालिकता को अपनाने के कारण उपस्थित होती है, जिसमें अनेक निगूढ़ व्यंजनाएं निहित हैं। 'कैदी और कोकिला' कविता में 'विस्थापन' का कौशल 'कोकिला' की प्रस्तुति में प्राप्त होता है। वस्तुतः 'कोकिला' नरक्षेत्रीय, मानवीय प्रस्तुति ही है, जो विस्थापित होकर इस कविता में उपस्थित हुई है। इस कविता में आयी कोकिला विषयक प्रोक्तियां इस तथ्य को उजागर करती हैं कि यह कोकिला प्रकृति क्षेत्रीय कोकिला नहीं है। इस दृष्टि से इस कविता का शिल्पतंत्र द्विधाविभक्त या आत्मविखंडित व्यक्तित्व (स्कीजोफ्रैनिक पर्सनालिटी/Schezophranic Personality) का शिल्प सिद्ध होता है। यहीं हमें कविता की भीतरी गूंजों का साक्षात्कार संभव हो पाता है। इस कविता में कवि का चेतन और अचेतन दोनों आमने सामने खड़े हैं। 'कैदी' कवि का चेतन है और 'कोकिला' उसका अचेतन। इसीलिए इस विस्थापन के कौशल से परिचित होने के कारण मेरे लिए इस कविता में कोकिला कहीं बाहर से नहीं आती, बल्कि वह कवि के

अचेतन का 'पर्सोना' बनकर उपस्थित होती है। 'कैदी' कवि का चेतन है और 'कोकिला' कवि का अचेतन। 'कैदी' माखनलाल जी का राजनीतिक नेता कार्यकर्ता है और 'कोकिल' उनका कवि। राजनीतिक कार्यकर्ता माखनलाल जी परतंत्र हैं, कैदी हैं, बंदी हैं, पर उनका कवि स्वतंत्र है, मुक्त है, आजाद है। तन पर बंधन है, वह कैद में है, पर मन पर कोई बंधन नहीं, वह सर्वतंत्र स्वतंत्र है। अतः 'कैदी और कोकिला' कविता का द्वयाभिमुखी स्थिर-कोटिक संलाप वास्तव में चेतन और अचेतन के बीच का संलाप है, जो दोनों के द्वंद्व और तनाव से जन्म पाता है। 'चेतन' अर्थात् कैदी की स्थिति उत्पीड़न, सख्ती, निराशा और मायूसियत की स्थिति है, जिससे करुणा उत्पन्न होती है :

''जीने को देते नहीं पेट भर खाना,
मरने भी देते नहीं तड़प रह जाना।
जीवन पर अब दिन-रात कठिन पहरा है,
शासन है या तम का प्रभाव गहरा है?''

पर 'अचेतन' न तो 'उधार की वाणी' बोलने वाला है, न रटाया गया पाठ दुहराने वाला है और न ही वह ऐसा है कि उसकी आवाज नक्कारखाने में तूती की आवाज की तरह दब कर रह जाए। वह स्वतंत्र बलि में आस्था रखने वाला है, उसकी गति को कूतने वाला है। यही वह कवि है जो शंखनाद करता है और दीवारों के पार कारागार में भी अपनी वाणी गुंजा पाता है। यही वह कवि है जो औचित्य का सत्पथ त्याग कर, याचना का मार्ग त्याग कर, शुक्लता को त्याग कर, विद्रोहियों के मार्ग की ओर, क्रांतिकारियों के मार्ग की ओर, बलिपंथियों के मार्ग की ओर चेतन को बढ़ने के लिए अभिप्रेरित उद्वेलित करता है:-

''तेरे 'मांगे हुए न बैना'
री तू नहीं बंदिना मैना,
न तू स्वर्ण पिंजड़े की जाली
तुझे न दाख खिलाये आली,
तोता नहीं, नहीं तू तूती,
तू स्वतंत्र बलि की गति की कूती,
तब तू रण का ही प्रसाद है,
तेरा स्वर बस शंखनाद है।

दीवारों के उस पार
या कि इस पार दे रही गूंजे?
हृदय टटोलो तो।
त्याग शुक्लता,
तुझ काली को, आर्यभारती पूजे,
कोकिल बोलो तो।''

इतना ही नहीं, इस कविता में कोकिल की प्रस्तुति में विस्थापन का यह कौशल तब

और घनत्वपूर्ण तथा आवर्तक हो उठता है जब 'कोकिल' को 'काली' कहता हुआ रचनाकार श्लेष से उस 'काली' में शक्ति या चंडी का भी अर्थ नियोजित कर बैठता है। एक तो कोकिल नहीं होकर अपनी गहन संरचना में कवि है, दूसरे 'काली' कहलाती हुई वह केवल अपना रंग-वैशिष्ट्य जाहिर नहीं करती, बल्कि 'काली' के रुप में वह चंडी की, शक्ति की गुणधर्मिता को भी उजागर करती है। 'काली' एक साथ विशेषण और संज्ञा दोनों रुपों में प्रयुक्त है। प्रतीकीकरण जैसे शिल्प की दृष्टि से इस कविता की रचना-प्रक्रिया में 'तम', 'अंधकार', 'कालिमा', 'मृदुल-वैभव', 'दावानल की ज्वाला', 'नभ के दीप', 'हिमकर' और 'रविकिरण' जैसे शब्द महत्वपूर्ण हैं। पर इनकी प्रतीकात्मकता दुरुह नहीं होकर सरल है। कवि ने प्रोक्ति-प्रतिज्ञप्तियों के द्वारा इन्हें खोल दिया है। दूसरे शब्दों में प्रोक्ति की संघटना में सहज रुप में आने वाली प्रतिज्ञप्तियों (Propositious) के आधार पर ये प्रतीक स्वयं विपुटित होते जाते हैं। इनको सामने रखें तो 'कालिमा' और 'अंधकार' व्यक्तित्व के 'इद्म' पक्ष को 'तम' ब्रितानी हुकूमत को, 'मृदुल वैभव' 'स्वतंत्रता को, 'दावानल की ज्वाला' परतंत्र शासन के अत्याचार-उत्पीड़न को, 'नभ के दीप' ब्रितानी हुकूमत के प्रहरी को, उसके पक्षधर को और 'रवि किरण' चेतना के प्रकाश को प्रतीकित करते हैं। इसी तरह इस कविता की रचना-प्रक्रिया में सहनीकरण का कौशल भी सक्रिय है। यहां अभिव्यक्ति का यह घनापन एक सधे हुए नैरंतर्य में कई बार उपस्थित होता है। कोकिला इस मध्य रात्रि में क्यों अपना अनवरत आलाप भर रही है? इस प्रश्न का अनुमित विकल्पात्मक उत्तर प्रस्तुत करता कैदी विकल्पों की पूरी श्रृंखला प्रस्तुत कर बैठता है :-

''निज मधुराई को कारागृह पर छाने,
जी के घावों पर तरलामृत बरसाने,
या वायु-विटप-वल्लरी-चीर, हठ ठाने,
दीवार चीर कर अपना स्वर अजमाने
या लेने आयी इन आंखों का पानी?''

इसी तरह इस कविता में कालेपन की विश्लेषणात्मक प्रतिज्ञप्ति (Proposition) का सहनीकरण भी द्रष्टव्य है :-

''काली तू, रजनी भी काली
शासन की करनी भी काली
काली लहर, कल्पना काली
मेरी काल-कोठरी काली
टोपी काली, कमली काली
मेरी लौह-श्रृंखला काली''

स्वप्न यांत्रिकी का अंतिम तत्व द्वितीयक विस्तारण का है, जहां खंड खंड में विभक्त रूप में देखे गये स्वप्न के बीच जागने पर प्रायः अंतः संबंध बिठा लिया जाता है। प्रस्तुत कविता भी खंडों में बंटी हुई है, यहां द्वितीयक विस्तारण के रुप में अंत में इस तरह का

प्रश्न किया जाता है जिससे सारी कविता के अंश-बिंब परस्पर अनुस्यूत हो उठते हैं। यह प्रश्न परिणाम-संबंधी है, जिसका सरोकार कोकिला के प्रत्येक क्रिया कलाप से बैठता है। इस प्रकार इस कविता की रचना-प्रक्रिया में स्वप्न-यांत्रिकी का अनुविस्तार भी चरितार्थ होता दिखता है:

''क्या? घुस जाएगा रुदन,
तुम्हारा निश्वासों के द्वारा,
कोकिल बोलो तो
और सवेरे हो जाएगा
उलट-पुलट जग सारा
कोकिल बोलो तो।''

इस कविता की रचना-प्रक्रिया की परतों को उद्घटित करने के क्रम में 'कैदी और कोकिला' की सही अस्मिता से परिचित हो चुकने पर अब इस कविता के चिंतन पर क्रमशः स्थल तत्वमूलक (Based on Space Factor) कालतत्वमूलक (Based on Time Factor) पात्र तत्व-मूलक (Based on Character Factor) और व्यापार तत्वमूलक (Based on Activity Factor) चिंतन के रुप में विचार किया जा सकता है।

'कैदी और कोकिला' कविता में निरुपित स्थल तत्वमूलक चिंतन द्विध्रुवी है। एक ओर यहां कारागार का स्थल तत्व है तो दूसरी ओर मुक्त संसार का। कारागार का संबंध कैदी से है। और मुक्त संसार का संबंध कोकिला से। कारागार क्या है? एक ऐसी काली कोठरी है, जहां ऊंची, काली दीवारों के घेरे में दस फुट का एक छोटा सा संसार है। वहां डाकू, चोरों, बदमाशों का डेरा है। वह अत्यंत सीमित और परिमित स्थल है, जहां अपराध-तत्वों और अपराधियों का वास स्थान है। वह अपने-आप में भयानक काल कोठरी है। एक बहुत ही अंधेरी और तंग जगह है 'सालिटरी सेल' है या कि स्वयं मृत्यु (काल) की ही काली कोठरी है। वहां लोहे के दरवाजे हैं और दीवारों की ऊंचाइयां हैं। दूसरी ओर कोकिला के वास-स्थान प्राकृतिक स्थल का निर्देश है, जहां विंध्य का झरना है, ऊंचे उठने हेतु व्रत धारण करने वाला वन है, उसकी हरियाली-भरी डालियां है और है आकाश की निस्सीम व्यापकता। इस प्रकार कुल मिलाकर यह द्विध्रुवीयता अपने देश को भारतवर्ष को निर्दिष्ट करती है। कहना न होगा कि इस कविता में माखनलाल जी का स्थल तात्विक चिंतन इस कविता के मूल संवदेन चिंतन का संवाहक संपोषक है। कारागार का स्थल-तत्व जहां राजनीतिक कैदी की विवशता, निरुपायता को प्रत्यक्ष कराता है वहीं प्रकृति का मुक्त स्थल कवि की उन्मुक्तता, स्वतंत्रता का निदर्शन कराता है। स्थल तत्व के इस द्विध्रुवी निरुपण में प्रोक्ति की विरोधी प्रकृति की समांतरता मिलती है। यहां कारागारी सीमित स्थल-तत्व की पृष्ठभूमि में प्राकृतिक स्थल-तत्व की व्यापकता को अग्रप्रस्तुत कर अभिप्रेत सिद्ध किया गया है। फलतः विवशता निरुपायता की पृष्ठभूमि में उन्मुक्तता, स्वतंत्रता अग्रप्रस्तुत होती है और विवश राजनीतिक कैदी की पृष्ठभूमि में जागरुक और सक्रिय कवि अग्रप्रस्तुत हो पड़ता है।

'कैदी और कोकिला' में कवि का कालतत्व मूलक चिंतन आदि से अंत तक विद्यमान है। इसका बीज कूट है भाद्रपद का महीना। कृष्ण पक्ष की अष्टमी। घनी काली मध्य रात्रि की वेला। कैदी की अभिव्यक्ति इसका संकेत करती है। 'मोहन के व्रत पर प्राणों का आसव किसमें भर दूं कोकिल बोलो तो।' स्पष्ट है कि पूरी कविता में यह चिंतन अपनी वर्तमानता में उस काली रात का है, जिसमें बंदी सोते हैं, प्रहरी सारी रात एक-दो तीन-चार गिनते हैं, ऊपर नभ के दीये टिमटिमाते हैं और मोहन के व्रत की इस निविड़ काली मध्य रात्रि में कोकिला लगातार चीखती, तमोपत्र पर अपनी चमकीली तानों से अभिलेख लिखती गजब ढाती है। पूरी कविता में तम, अंधकार और काली रात का विस्तार विद्यमान है, उसकी प्रभुता छायी है। यहां यह कवि का कालतात्विक चिंतन ही है, जिसके आधार पर कैदी वसुदेव की भूमिका में उपस्थित होता है और कोकिला कृष्ण की भूमिका में मुक्तिदूत बनकर आती है। पर इसी कविता में दूसरी ओर प्रभाव की निर्दिष्ट कालपरकता भी है। यह दो प्रकार की है—सामान्य और विशिष्ट। सामान्य रुप में यह कालपरकता कविता के बीच में संदर्भित हुई है। 'तुम रविकिरणों से खेल जगत को रोज जगाने वाली'। यहां 'रवि किरण' उस व्यावहारिक सुविधापरक चेतना का अर्थ देती है, जिसकी अनुपालना या सुविधाजीवी संवेदना में कभी कवि को 'अभी की पूरन कटोरिया-सी विक्टोरिया रानी' भी लिखना पड़ता है। पर विवेच्य कविता के कवि की संवेदनशीलता या चिंतनपरकता भूले से भी ऐसी नहीं है। वह तो 'इदम्' और 'सुप्राहम्' के स्तर पर क्रियाशील है। 'क्रांति' और 'विद्रोह' में 'इदम्' तथा 'बलिदान' और 'उत्सर्ग' में सुप्राहम्। यहां प्रभात की विशिष्ट कालपरकता कविता की सोद्देश्यता बन कर आती है और रात्रि-कालिमा की प्रशस्त पृष्ठभूमि में विरल रुप में अग्रप्रस्तुत होकर उपस्थित होती है: ''और सवेरे हो जाएगा उलट-पुलट जग सारा? कोकिल बोलो तो। 'इस प्रकार अपनी व्यापकता में कालतत्व परतंत्रता के काल को निरुपित करता है।

इस कविता का पात्र-तत्व मूलक चिंतन भी द्विधा विभक्त है: कैदी और कोकिल के रूप में। कैदी भी यहां दो प्रकार के हैं—1. सुषुप्त और 2. जाग्रत कैदी। एक ओर यहां काली टोपी, काली कमली, काली जंजीरों हथकड़ियों, बेड़ियों वाले वे कैदी हैं, जो दिन भर कोल्हू चलाते, गिट्टी तोड़ते और मोट खींचते हैं। फिर भी इतना अनवरत श्रम करने के बावजूद वे कारागार के अधिकारियों से गालियां खाते हैं। वे करुणा-ग्राहक कैदी रात में सोते हुए अपने स्वप्नों में स्मृति की श्वासें धाते हैं, स्वप्नों में अपनी यादें ताजा करते हैं। दूसरी ओर इनमें एक जगा हुआ कैदी भी है जिसके नयन-कटोरे जब आंसुओं से भर उठते हैं तब उसकी आंखों का पानी लेने के लिए आलाप भरती कोकिला चली आती है और उसका रोना भी गुनाह बन जाता है। यही कैदी कोकिला से बार-बार प्रश्न करता है। यही उससे उत्तर देने का बार-बार आग्रह करता है। यही दंड-स्वरुप मिलने वाली कर्म-दायित्व को व्यंग्य, स्वाभिमान उदात्तता और अकड़ से भर कर देखता है :

'हथकड़ियां क्यों? यह ब्रिटिश राज का गहना
कोल्हू का चर्रक चूं? जीवन की तान
गिट्टी पर अंगुलियों ने लिक्खे गान?

हूं मोट खींचता लगा पेट पर जुआ
खाली करता हूं ब्रिटिश अकड़ का कूआं।''

यही राजनीतिक कैदी कवि के 'पर्सोना' कोकिल को 'तुझ काली को आर्य भारती पूजे' का गौरव प्रदान करता है और यही कैदी कोकिल से यह प्रश्न भी करता है कि क्या तुम्हारी मुखरता से परतंत्रता का अंधकार मिट जाएगा, स्वतंत्रता का प्रकाश आएगा और यदि आए भी तो क्या स्वतंत्रता का सवेरा सारी अव्यवस्था को उलट-पुलट कर सुव्यवस्था दे सकेगा... कोकिला इस कविता में कवि का प्रतीक है। माखनलाल जी ने उसे गाने वाली, मधुर गाना गाने वाली के रुप में प्रस्तुत किया है। वह बावली है, मतवाली है, चीखें लगाने वाली है। वह वेदना के बोझ से दबी हूकने वाली है और कूक कर लुटने की स्थिति दर्शाने वाली भी है। वह कालिमामयी तो है ही। साक्षात काली भी है। उसकी कालिमामयता अपनी गुणधर्मिता में उसे धुन का पक्कापन देती है—'सूरदास प्रभु काली कामरि चढ़यो न दूजो रंग।' वह कभी निरर्थक आलाप नहीं भरती, बल्कि उसकी कूक में सार्थकता है, वह संदेश लाने वाली है। वह स्वयं जगी हुई है और संसार को जगाने वाली है। उसकी 'वाणी' उधार की मांगी न होकर मौलिक है। उस पर ब्रितानी हुकूमत का 'डिक्टेशन' नहीं चलता। न तो वह उस हुकूमत से पालित-पोषित है, न ही वह उनकी वंदिनी है। न वह उनके द्वारा रटाया गया संवाद बोलने वाली है और न ही वह अपने-आप में इतनी दुर्बल है कि वह स्वतः अपनी आवाज गुंजा नहीं पाए। वह कैदियों के दिन की कर्ममयता को बाधित नहीं कर रात में अपने बोल से गजब ढ़ोने वाली है। वह अंधकार को वेधकर रोने वाली है, पर रोने वाले कैदी की आंखों के पानी को अपने बोल से सुखा कर उसे संकल्पव्रती बनाने वाली भी है। वह काले संकट सागर पर अपने चमकीले गीतों को तैराने वाली भी है। वह तमोपात्र पर अपनी चमकीली तान लिखने वाली है, तो रात्रि में अपनी चीख से सर्वनाश करती दीखने वाली भी है। वह अत्याचार और प्रपीड़न के सुलगते दावानल की ज्वाला को तो देखने वाली है, पर कैदियों के हाथ-पांव में जंजीरों का गहना नहीं देख सकने वाली है, उन्हें कोल्हू चलाते नहीं देख सकने वाली है, उनकी गिट्टी तोड़ती उंगलियों को नहीं देख सकने वाली है और उन्हें मोट खींचते भी नहीं देख सकने वाली है। वह चुपचाप मधुर विद्रोह बीज बोने वाली और शंखनाद करने वाली है। वह स्वयं रण का प्रसाद है। वह रणभेरी बजाने वाली है। वह अंग्रेजी राज के रक्षकों को नभ के दीप को बुझाने की ठानने वाली है। वह कारागार के बंदियों के घावों पर तरलामृत बरसाने वाली और कारागार में मधुरता फैलाने वाली है याकि अंधेरे में अपनी मधुराई को दफनाने वाली है। वह बलिदानी है। इसलिए मरने को मदमाती रहने वाली है। वह निडर, निश्शंक है। वह अपने को ब्रितानी हुकूमत का आहार तक बना देने वाली है। वास्तव में इस कविता में कोकिला नर-प्रकृति को उद्घाटित करती है। वह बाह्य प्रकृति को ऐसी कोकिला नहीं है, जिस पर माखनलाल जी ने या कविता के वाचक ने या कैदी ने अपनी संवेदना भावना का आरोप किया हो, बल्कि यह वह प्रतीक है जिसके माध्यम से माखनलाल जी की कवि-विषयक अवधारणा और मान्यता स्पष्ट होती है। उनका कवि उन सारी विशेषताओं से युक्त है जिन विशेषताओं

को कोकिला में दिखाया है। उनकी दृष्टि में कवि ही बलिदानी संवेदना का पहला मंत्रोच्चार करने वाला है। यह कवि स्वयं जाग्रत है और श्रोता को अपनी वाणी से जगाने वाला है। यह गायक है और अपनी मौलिक स्वातंत्र्यकामी वाणी गुंजाने वाला है। यह रटी-रटायी वाणी बोलने वाला तोता नहीं है। यह द्रष्टा है, यह उदबोधक है, यह समानुभूति-आवश्यक है। यह विद्रोहिता और क्रांतिधर्मिता के गुणों से भरा है। बलिदानी संवेदना और बलिदान-वृत्ति इसकी निधि है। यह इन सबका अभिप्रेरक है। यह इतना संवेदितचित्त है कि स्वयं रुदन करने वाला है और इतना प्रबुद्ध और दायित्व उद्बुद्ध है कि रुदन के अश्रुओं को पोंछने वाला भी है। यह कैदियों की पीड़ा नहीं देख सकने वाला है तो उन्हें कर्म-विमुख भी नहीं कर सकने वाला है। यह जिजीविषा और व्यापक गतिशीलता का प्रतीक है। यह कविता के आलंबन के रुप में सनातन काल से स्वीकृत प्रकृति को अब अपना काव्य-आलंबन नहीं बनाकर, दमित, प्रताड़ित, मनुष्यता और उसकी मुक्ति राष्ट्रीयता को अपना काव्य-आलंबन बनाता है। यह सुख, सुविधा और व्यावहारिक कुशलता के प्रकाश को अब अपनी कविता के लिए आलंबन नहीं बनाकर दुःख, उलझन और समस्या मूलक जटिलता के अंधकार को अपना काव्य-आलंबन बनाता है। तभी किंचित विस्मय से कैदी उससे पूछता है :-

"दूबों के आंसू धोती रवि-किरनों पर,
मोती बिखराती विंध्या के झरनों पर,
ऊंचे उठने के व्रतधारी इस वन पर,
ब्रह्मांड कंपाती उस उद्दंड पवन पर,
तेरे मीठे गीतों का पूरा लेखा
मैंने प्रकाश में लिखा सजीला देखा

तब सर्वनाश करती क्यों हो,
तुम जाने या बेजाने?
कोकिल बोलो तो
क्यों तमोपत्र पर विवश हुई
लिखने चमकीली तानें?
कोकिल बोलो तो।"

कैदी और कोकिला कविता का व्यापार तत्व मूलक चिंतन कई रुपों में सामने आता है। इनमें एक ओर ब्रितानी शासन का दमनमूलक व्यापार है, तो दूसरी ओर राजनीतिक कैदियों का कर्ममूलक और विवशतापरक व्यापार। ब्रितानी शासन के दमनमूलक व्यापार तात्विक चिंतन को निम्नलिखित पंक्तियों में देखा जा सकता है :

"जीने को देते नहीं पेट भर खाना,
मरने भी देते नहीं, तड़प रह जाना
जीवन पर अब दिन-रात कड़ा पहरा है
शासन है या तम का प्रभाव गहरा है?"

इसी प्रकार राजनीतिक कैदियों के कर्ममूलक व्यापार तात्विक चिंतन को निम्नांकित काव्य पंक्तियां उजागर करती हैं :

"हथकड़ियां क्यों? यह ब्रिटिश राज्य का गहना
कोल्हू का चर्रक-चूं, जीवन की तान,
गिट्टी पर अंगुलियों ने लिक्खे गान?
हूं मोट खींचता लगा पेट पर जुआ
खाली करता हूं ब्रिटिश अकड़ का कूआ।"

× × ×

"फिर भी करुणा-गाहक बंदी सोते हैं,
स्वप्नों में स्मृतियों की श्वासें धोते हैं।"

और उनके विवशतापरक व्यापार तात्विक चिंतन की झांकी भी इस कविता में दो बार मिलती है :-

"मेरे आंसू की भरी उभय जब प्याली"

× × ×

या लेने आयी इन आंखों का पानी।"

इसके अतिरिक्त इस कविता में कोकिला की मुखरता का व्यापार, संदेश लाने, देने का व्यापार, इसके अंतर्गत जागरण का संदेश देने का व्यापार, क्रांति और विद्रोह के शंखनाद का संदेश देने का व्यापार, बलिदान और उत्सर्ग का संदेश देने का व्यापार, पुनः प्रशासन के समर्थकों को मिटाने का व्यापार तथा राजनीतिक कैदियों को सहानुभूति देने और आश्वस्त करने का व्यापार जैसे चार प्रकार के व्यापार तत्व मूलक चिंतन देखने को मिलते हैं।

कोकिला की मुखरता का व्यापार—तात्विक चिंतन इस पूरी कविता में आद्यंत विद्यमान है, जिसे गाने के रुप में, हूकने के रुप में, चीखने के रुप में, रोने के रुप में, और कुहू-कुहू करने के रुप में अनेकशः स्वरुपित किया गया है। संदेश लाने देने के व्यापार तात्विक चिंतन के अंतर्गत जागरण का संदेश-चिंतन—'इस समय कालिमामयी जगी क्यों आली और क्यों अर्धरात्रि में विश्व जगाने आयी हो? जैसी अभिव्यक्तियों में, तो क्रांति और विद्रोह के शंखनाद का चिंतन 'चुपचाप मधुर विद्रोह बीज इस भांति बो रही क्यों हो?' 'तेरा स्वर बस शंखनाद है' और 'बजा रही तिस पर रण-भेरी" जैसी पंक्तियों में और बलिदान-उत्सर्ग का संदेश-चिंतन 'इस काले संकट सागर पर मरने को मदमाती', 'तू स्वतंत्र बलि की गति कूती' और 'मोहन के व्रत पर प्राणों का आसव किसमें भर दूं, जैसी प्रोक्तियों में निरुपित हुआ है। इस कविता में ब्रितानी शासन के समर्थकों को मिटाने का व्यापार तात्विक चिंतन—

"नभ के ये दीप बुझाने की है ठानी।
खा अंधकार, करते वे जग रखवाली
क्या उनकी शोध तुझे न भायी आली"

जैसी काव्य-प्रोक्ति में द्रष्टव्य है और राजनीतिक कैदियों को सहानुभूति देने तथा आश्वस्त करने का काव्य-चिंतन कैदी के निम्नलिखित उद्‌गार में नियोजित है:

"निज मधुराई को कारागृह पर छाने
जी के घावों पर तरलामृत बरसाने
या वायु-विटप-वल्लरी चरी, हठ ठाने
दीवार-चीर कर अपना स्वर अजमाने
या लेने आयी इन आंखों का पानी"

कुल मिलाकर देखें तो इस कविता का चिंतन राष्ट्रीय काव्य-चिंतन है जिसके केंद्र में स्वतंत्रता प्राप्ति की कामना है। पर यह कामना यहां किसी 'यूटोपिया' के रुप में व्यक्त नहीं हुई है, क्योंकि इसके लिए किये जाने प्रयत्न के विषय में कवि का विवेक बहुत स्पष्ट है। वह याचना के मार्ग से या शांति के मार्ग से स्वतंत्रता प्राप्त करने का विश्वासी नहीं है। वह तो विद्रोह और क्रांति को मानने वाला है। शुक्लपक्षीयता पर उसका बिल्कुल विश्वास नहीं है। अपनी इस मान्यता को माखन लाल जी ने इस कविता के राजनीतिक बंदी के माध्यम से बहुत स्पष्ट शब्दों में व्यक्त करवाया है :

"त्याग शुक्लता तुझ काली को
आर्य-भारती पूजे
कोकिल बोलो तो"

बलिदान माखनलाल जी का मृल काव्य-स्वर रहा है। 'कैदी और कोकिला' का क़ाव्य चिंतन भी बलिदान-मूलक है। एक ओर यदि कोकिला यहां काल संकट पर मरने को मदमाती है तो दूसरी ओर राजनीतिक बंदी भी मोहन के व्रत पर अपने प्राणों को आसव भरने के लिए पात्र खोजता है। इस प्रकार बलिदान उनके अचेतन और चेतन दोनों स्तरों की क्रियाशीलता बनकर उपस्थित होता है। इस प्रकार प्रस्तुत संदर्भ में इसका महत्व जीवन मूल्यपरक चिंतन का महत्व बन जाता है।

'कैदी और कोकिला' का काव्य-चिंतन यह भी स्पष्ट करता है कि जब देश परतंत्र हो, वहां के नागरिक उत्पीड़न और प्रपीड़न झेल रहे हों, उनका अनवरत दमन किया जा रहा हो तब कवि के द्वारा कविता का विषय या उसको आलम्बन प्रकृति को नहीं बनाया जा सकता, बल्कि दमित, प्रपीड़ित मनुष्य को बनाया जाता है और यहां कविता दर्द के ताप-मात्र को अभिव्यक्त नहीं करती, बल्कि समस्याओं का समाधान ढूंढ़ने की कारगर कोशिश भी करती है। इस कविता के राजनीतिक कैदी को इस रहस्य के स्पष्ट नहीं होने तक ही यह आश्चर्य होता है कि कोकिला प्रकृति के व्यापक अंचल में अपना स्वर क्यों मुखर नहीं कर कारागार की दीवार से सर मार रही है?

इस कविता में माखनलाल जी का काव्यचिंतन यह मानता है कि कविता एक कारगर हथियार है। मानसिकता के दृढ़ीकरण के लिए, संवेगात्मक सक्रिय वेग के लिए, प्रत्ययनीयता (Persuation) के लिए, उद्‌बोधन के लिए और क्रांति-पथ की क्रियाशीलता

के लिए कविता का इस्तेमाल किया जा सकता है बशर्ते गृहीता तत्पर और जागृत हो।

माखनलाल जी का काव्य-चिंतन यह भी निर्दिष्ट करता है कि भारतीय कवि अपनी प्रकृति से स्वतंत्रता-कामी होता है, उसकी वाणी उसकी भौतिक वाणी होती है। उस पर किसी और का 'डिक्टेशन' नहीं चलता है। उसे न तो कोई पालित-पोषित कर सकता है और न उससे सत्ता अपने अनुकूल स्वरोच्चार करवा सकती है। इससे स्वतः माखनलाल जी के अपने कवि का यथार्थ स्पष्ट होता है और कवि वर्ग के लिए एक प्रादर्शात्मक मूल्य सामने आता है, जो उनके चिंतन की देन हैः

"तेरे मांगे हुए न बैना,
री तू नहीं बंदिनी मैना,
न तू स्वर्ण-पिंजड़े की पाली
तुझे न दाख खिलायी आली
तोता नहीं, नहीं तू तूती
तू स्वतंत्र बलि को गति कूती
तब तू रण का ही प्रसाद है,
तेर स्वर बस शंखनाद है"

"कैदी और कोकिला" के काव्य-चिंतन में कविता की ग्रहणशीलता का बिंदु भी उठाया गया है। अतः यहां माखनलाल जी के काव्य-चिंतन का एक पहलू यह भी है कि कवि की कविता चाहे कितनी ही अभिप्रेरक, उद्बोधक, क्रांतिकारी या बलिदानी क्यों न हो, पर यदि उसके पाठोच्चार के समय उसका श्रोता-गृहीता नहीं है तो वह कविता उस कालिकता के लिए प्रभावविहीन है। इस कविता के प्राश्निक बंदी की विशेषता यह है कि वह तो जगा है, पर उसके अन्य सभी सहयोगी राजनीतिक कैदी सो रहे हैं। अतः उस समय वह अचेतन से निःसृत अपनी कविता के संवेदन-चिंतन की सांझ अपने सहयोगियों से कर पाने की स्थिति में नहीं है। जाग्रत कैदी में कविता की अभिव्यक्ति का जितना उद्वेलन है उसके अनुरुप यदि सभी बंदी जगे तो उसके संदेश को ग्रहण कर पाते और निश्चित दिशा में निश्चित कार्यक्रम भी निर्णीत कर पाते। वस्तुतः कैदी का चेतन कैदी के अचेतन को काव्याभिव्यक्ति के खतरे से परिचित करा देना चाहता है, क्योंकि ब्रितानी हुकूमत न केवल उस कविता विशेष पर प्रतिबंध लगाती है, न केवल उसके सर्जक को दंड मात्र देकर छोड़ देती है, बल्कि उस सर्जक को मिटा देने तक का भरपूर प्रयास करती है :

'नभ सीख चुका है कमजोरों को खाना
क्यों बना रही अपने को उसका दाना।'

फिर भी ऐसी स्थिति में यदि कविता-अभिव्यक्ति होती है, तो उसकी सोददेश्यता को सार्थकता देने के लिए गृहीता को तत्पर रहना चाहिए। पर इस मध्य रात्रि की वेला में उसके सारे सहयोगी बंदी 'कविता-ग्राहक' नहीं होकर 'करुणा ग्राहक' की भूमिका में पड़े हैं, जो इस वेला में सो रहे हैं और स्वप्न-प्रक्रिया में अपनी-अपनी वैयक्तिक, घरेलू पारिवारिक स्मृतियों

को ताजा कर रहे हैं। वे तो 'निद्रित लाश' बने हुए हैं, जिनमें कविता की ग्रहणशीलता की कोई संभावना नहीं है। इसीलिए जाग्रत बंदी का चेतन उसके अचेतन से प्रश्न करता है कि क्या तुम सोने वाले कैदी के स्पंदित हो रहे निःश्वासों के द्वारा उनमें कविता का संदेश संप्रेषित कर दे सकोगे? और यदि यह संभव नहीं है, तो क्या बिना गृहीता के रात में अवतरित कविता के चिंतन के अनुरुप सवेरे तक सारी व्यवस्था उलटी-पलटी जा सकती है? कविता इसी प्रश्न बिंदु पर आकर पूरी हो जाती है। कवि इस कविता को बंधी-बंधायी परिपाटी वाली अंततः (Closed-endedness) नहीं देकर इसे मुक्त रुप की अंतता (Open-endedness) प्रदान करता है। फलतः पाठ की निर्वचनात्मक संभावना यहीं निःशेष नहीं हो जाती है। चूंकि कविता के सहज उपलब्ध श्रोता-पाठक, जो कारागार में है, सुषुप्त, स्वप्नरत और 'करुणा ग्राहक' बने हुए हैं, अतः कविता को बाहर पाठक उपलब्ध कराने की आवश्यकता है। कवि स्वयं राजनीतिक कैदी है, जो कारागार से बाहर नहीं जा सकता है, पर उसकी कविता, जो मुक्तिदूत की भूमिका में है, बाहर जा सकती है। तभी वह प्रभावमयी हो सकती है। यदि सवेरा लाना है और मारकत्रासक व्यवस्था को छिन्न-भिन्न करना है, तो कविता को कारागार से बाहर जाग्रत जनसमुदाय में जाना होगा तभी सवेरा हो सकता है, स्वतंत्रता प्राप्त हो सकती है और मारक त्रामक व्यवस्था को छिन्न-भिन्न करने के प्रयत्न किये जा सकते हैं, क्योंकि केवल स्वतंत्रता प्राप्त कर लेने से ही यह मारक-त्रासक छद्म और पाखंड से भरी 'हिपोक्रेसी' वाली व्यवस्था स्वतः उलट-पुलट नहीं जाएगी, बल्कि उसे छिन्न-भिन्न कर नष्ट करने के लिए लगातार जाग्रत तौर पर कारगर कोशिशें करनी होंगी। वास्तव में यह नुकता वह अहम नुकता है जहां आज भी आजादी प्राप्त कर लेने के इकतालीस वर्षों के बाद भी देश उसे उलट-पुलट या छिन्न-भिन्न नहीं कर पा रहा है। इस तरह इस कविता का संवेदन-चिंतन तात्कालिक मात्र नहीं रहकर भविष्योन्मुख रूप में भी सिद्ध होता है।

पश्चिम में ऑस्टिन और सार्ले ने वचन कर्म—सिद्धांत का विवेचन किया है तथा वचन कर्म के तीन प्रकार माने हैं : 1. भाषिक वचन कर्म (Locutionary Speech Act) 2. विवक्षित वचन-कर्म (Illocutionary Speech Act) और 3. प्रभावी वचन-कर्म (Perlocutionary Speech Act)। इस कविता के चिंतन को प्राप्त करने के लिए उससे परिचित होने के लिए अब तक जो भी विश्लेषण-विवेचन किया गया है वह भाषिक वचन-कर्म के क्षेत्र का विवेचन है। 'विवक्षित वचन कर्म' की दृष्टि से यह कविता निषेधात्मक Negative), प्रश्नात्मक (Interogative) वर्णनात्मक (Descriptive), आग्रहमूलक (Cognitive), प्रत्ययनीय (Persuative), तुलनात्मक (Comparative), शंकामूलक (Doubtful) जैसी अनेकविध वृत्तिकताओं (Modalities), विवक्षाओं से भरी पूरी है। इन सब में सबसे अधिक विवक्षा प्रश्नात्मकता की ही है। पर इन सबके मूल में जो एक बड़ी विवक्षा सक्रिय है वह अभिप्रेरणा की विवक्षा है। इस दृष्टि से इस कविता का मूल चिंतन राष्ट्रवादी, स्वदेशभक्ति-मूलक और स्वतंत्रता-प्राप्ति के सार्थक उत्क्रांत प्रयत्नों के लिए अभिप्रेरणा का चिंतन है। इस कविता में प्रभावी वचन कर्म (Perlocutionary Speech Act) को चरितार्थता नहीं प्राप्त हो पाती है, पर उसकी आत्यंतिक चिंता कविता

के अंतिम चरण का महत्वपूर्ण प्रतिपाद्य बनती है। अपनी तात्कालीनता में कोटि-कोटि समानधर्मा राष्ट्र प्रेमियों के सामने प्रभावी वचन-कर्म की इस चिंता को उभार कर, उसका दायित्व-बोध प्रदान कर और उसके मार्ग में आने वाले खतरे से आगाह कर कवि ने 'कैदी और कोकिला' के काव्य-चिंतन को वायवीय की जगह अत्यंत ठोस तथा अत्यंत यथार्थवादी बना दिया है। कहना न होगा कि यह माखनलाल जी के संवेदन चिंतन और उनकी काव्य-क्षमता का अत्यंत सार्थक प्रमाण है। ☐

राष्ट्रीय काव्यधारा और माखनलाल चतुर्वेदी

डॉ. राजमणि शर्मा

'राष्ट्रीय' शब्द अत्यंत व्यापक है। रचनाकार इसे युग संदर्भ में अपनी इच्छानुसार प्रयुक्त करता है। वैसे हिंदी साहित्य के इतिहास का अवलोकन करें तो यह प्रवृत्ति दसवीं शती में भी दिखाई देती है, और पंद्रहवीं शती के आस-पास भी। वहां यह एक आंदोलन के रूप में, जन सामान्य के अभियान के रूप में मुखर है। किंतु उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में भारतेंदु के आगमन के साथ इसका स्वरूप बदलता नजर आता है। भारतेंदु भारतीय चेतना के उन्नायक, भारतीय संस्कृति के उद्धारक के रूप में स्वयं ही नहीं आते अपितु एक मंडल तैयार करते हैं और यह मंडल भारतीय जन के संत्रास, उसकी कुंठा, उसके शोषण को वाणी ही नहीं देता अपितु उसके विरुद्ध आवाज भी बुलंद करता है। वहा राष्ट्रीय भावना का प्रधान कारक—एकता, समता—का भाव भी उजागर है। वस्तुतः भारतेंदु के आगमन के पूर्व 1857 की भारतीय क्रांति असफल हो चुकी थी, किंतु उसकी चिनगारी अवशेष थी। उस चिनगारी को फूंक मारकर प्रज्जवलित करने का वीड़ा यदि एक तरफ राजनीतिक, सामाजिक नेता उठा रहे थे तो दूसरी तरफ युग की इस चेतना से साहित्यकार असंपृक्त नहीं थे। भारतेंदु ने यह अनुभव किया था कि इस चिनगारी को आग का रूप देने के लिए अनेक किस्म की समिधा आवश्यक है। यह समीधा एक भाषा की भी थी, अपनी संस्कृति के प्रति मोह पैदा करने की भी थी, अपने गौरवशाली अतीत के पुनः स्मृति से वर्तमान को निर्मित करने की भी थी और शोषण के विरुद्ध, सामाजिक असमानता के विरुद्ध आक्रोश को जन्म देने की भी थी और शोषित, दलित जन को उसकी शक्ति का आभास करा देने की भी थी। और, इस काल के रचनाकारों ने इस दिशा में सार्थक प्रयास भी किये। इसी सरणि में पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी का आगमन होता है। द्विवेदी युग में पराधीनता से मुक्ति की आकांक्षा बलवती हुई, राष्ट्रीयता की भावना और प्रबल हुई। बढ़ती राजनीतिक चेतना तथा सांस्कृतिक पुनरुत्थान के परिणामस्वरूप राष्ट्रीयता द्विवेदी युग की प्रधान भावधारा थी। 'यद्यपि श्रीधर पाठक भारतेंदु युग की तर्ज पर राजभक्ति परक रचनाएं भी करते थे', किंतु राष्ट्रभक्ति का भाव द्विवेदी युग में ही स्पष्ट रूप से उभर कर आता है। वहां आत्माभिमान एवं देशाभिमान की प्रेरणा मुखर है—

> 'वंदनीय वह देश जहां के देशी निज अभिमानी हों।
> बांधवता में बंधे परस्पर परता के अज्ञानी हों।'

किंतु नाथूराम शर्मा शंकर इस युग के पहले कवि हैं जिन्होंने राजभक्ति से राष्ट्रभक्ति को अलग किया, और युग चेतना की मांग समझते हुए राष्ट्रभक्ति को प्राथमिकता दी। यहीं से राष्ट्रीयता की भावना नया ढर्रा पकड़ती है। इन्होंने पराधीनता को सबसे बड़ा अभिशाप बताया तथा स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए क्रांति एवं आत्मोत्सर्ग की प्रेरणा दी :

"देशभक्त वीरों, मरने से नेक नहीं डरना होगा।
प्राणों का बलिदान देश की वेदी पर करना होगा।" (शंकर सर्वस्व)

और मैथिली शरण गुप्त की ओजस्वी हुंकार (स्वेदश संगीत, भारत भारती), राम नरेश त्रिपाठी का परतंत्रता के बंधन काटने का संदेश, ठाकुर गोपाल शरण सिंह का देश की हीन दशा पर क्षोभ, राय देवी प्रसाद पूर्ण का आलस, फूट, स्वार्थ प्रियता, मिथ्या कुलीनता पर प्रहार आदि भावों का जन्म द्विवेदी युगीन रचनाकारों में राष्ट्रीयता की भावना के जन्म के पुष्ट प्रमाण हैं।

छायावाद युग के उदय के साथ ही पं. माखनलाल चतुर्वेदी, लोचन प्रसाद पाण्डेय, बालकृष्ण शर्मा नवीन, सियाराम शरण गुप्त, निराला, सुभद्रा कुमारी चौहान, रामनरेश त्रिपाठी आदि कवियों का अवतरण हो चुका था जो राष्ट्रीय काव्यधारा की स्रोतस्विनी को निरंतर प्रवहमान ही नहीं कर रहे थे, अपितु उसे जल-आप्लावित भी कर रहे थे। इस परंपरा में आगे चलकर पं. उदयशंकर भट्ट, जगन्नाथ प्रसाद मिलिंद और दिनकर की हुंकार झंकृत होती है।

किसी भी रचनाकार की रचना-धर्मिता और उसकी रचना के मूल-स्वर उसकी रचनाओं, निबंधों एवं क्रिया-कलापों के अंतः साक्ष्य से ही स्पष्ट हो सकते हैं। इसीलिए चतुर्वेदी जी की राष्ट्रीय भावना की पहचान और उसके स्वरूप निर्धारण के लिए मैंने उनके निबंधों, टिप्पणियों एवं कविताओं को ही आधार बनाया है।

चतुर्वेदी जी का आगमन एक साथ द्विवेदी युग की सांध्यबेला तथा छायावाद युग के प्रभात का प्रतीक है। एक जागरूक, संवेदनशील राष्ट्रभक्त तथा क्रांतिकारी व्यक्तित्व के पुंजीभूत व्यक्तित्व का नाम पं. माखनलाल चतुर्वेदी रहा है। इसीलिए आचार्य शुक्ल जैसे समीक्षक उनके अनेक उपनामों में से एक 'भारतीय आत्मा' का ही चयन करते हैं।

रचनाकार अपने काल की चेतना से आप्लावित हुए बिना नहीं रह पाता। वह, उस युग के जन साधारण की मानसिकता, उनकी चिंतना और सोच को ही वाणी देता है। चतुर्वेदी जी का युग, पराधीनता की चक्की में पिसते हुए, विकृतियों के कोढ़ से ग्रस्त समाज की वेदना का था। यही वेदना की सघन अनुभूति राष्ट्रीय भावना को जन्म देती है। वे स्व-विकास पर जोर देते हैं, स्व-विकास किसका, वेदना का—'कलम छुओ उस दिन, जिस दिन उन्मेष या चेतना से तुम्हारा रक्त आंसू बनकर और तुम्हारे आंसू रक्त बनकर उतर रहे हों।' (जब रसवंती बोल उठे)। बात साफ है, चतुर्वेदी जी, रचनाकार का, राष्ट्र की स्थिति से तादात्म्य स्थापित कर रचना में संपृक्त होने का आह्वान करते हैं। वे स्वयं उस वेदना को केवल अनुभव ही नहीं किए, अपितु उसे सहा भी। वे 1917 में गणेशशंकर विद्यार्थी के सहयोग से महात्मा गांधी के संपर्क में आए। गांधी व्यक्ति नहीं थे, भारतीय जनता की पीड़ा के प्रतीक थे और थे उसकी चेतना। 1920 के सत्याग्रह में भी चतुर्वेदी जी ने हिस्सा लिया। खण्डवा में प्रांतीय राजनीतिक परिषद् की स्थापना की। 12 मई 1921 को राजद्रोह के अपराध में गिरफ्तार होकर जेल गए। 1923 में नागपुर में ऐतिहासिक झंडा सत्याग्रह में महत्वपूर्ण भूमिका निभाकर आंदोलन को नया रूप एवं शक्ति दी। स्वयं गांधी जी ने इसे स्वीकार

किया किंतु उनके इस रूप का यह अर्थ नहीं कि वे केवल राजनीतिक नेता थे। उनमें मूलतः रचनाकार की आत्मा थी, चाहे वे साहित्य की रचना हो, अथवा भारतीय मनीषा की पुरसंरचना हो। वे दोनों मोर्चे पर एक साथ लड़ रहे थे, दोनों मोर्चे पर सजग थे। इसीलिए 1924 में विद्यार्थी जी की गिरफ्तारी के बाद कानपुर जाकर 'प्रताप' का संपादन किया। वह 'प्रताप' जो नव जागरण एवं राष्ट्रीयता का अग्रदूत था, वह 'प्रताप' जो साहित्य का मसीहा था। उसके बिना लेखकीय दिशा अवरुद्ध होती, उन्होंने उसे अवरुद्ध नहीं होने दिया। वस्तुतः साहित्य की संवेदना स्वातंत्र्य आंदोलन को केवल दिशा ही नहीं दे रही थी, अपितु उसकी सफलता के मूल पाठ को भी संप्रेषित कर रही थी। यही रचनाकार की नियति होती है। फलस्वरूप चतुर्वेदी जी साहित्य को एक दर्शन, ऐसा दर्शन जो अविनाशी और स्थिर है, स्वीकार करते हैं। साहित्य की मूल आत्मा मानव विकार को स्वीकार करते हैं। उनकी अवधारणा थी—'भूतकाल के लिए संबद्ध एकतानता और भविष्य के लिए अमर रहने के तंतु कला की संपूर्णता के अनिवार्य तत्व हैं।' (विकारों का ऊर्ध्वमुखी आकार : ललित साहित्य)।

चतुर्वेदी जी अपनी लेखनी उठाने के पूर्व साहित्य के पक्ष पर, उसके अतीत और वर्तमान पर अपनी दृष्टि भी फेरते हैं और तत्युगीन चेतना और अपनी संवेदना की खोज करते भी नजर आते हैं। वे साहित्य का प्रधान अंग काव्य को मानते हैं। वे यह स्वीकार करते हैं कि "वर्तमान में ऐसे काव्य ग्रंथों का अभाव है जो यथार्थ में काव्य कहे जा सकें।" "ऐसे काव्य ग्रंथों की आवश्यकता है जो देश का चित्र सामने रखें, अमीरों की चर्चा न करके गरीबी की गाथा गावें, महलों का वर्णन न करके कुटियों का वर्णन करें और खंड़ों को स्वर्ग बना, शहरों को खेड़ों की धूल चटा दें।" वस्तुतः भारतीय साहित्य उस स्वाभाविक विकास की परिणति है, जिसके मूल में दो महान ग्रंथ हमेशा-हमेशा विद्यमान रहे हैं। ये हैं—रामायण और महाभारत। यद्यपि दोनों की कथा किसी-न-किसी मूल बिंदु पर एक है किंतु एक यदि आदर्श की चरम परिणति है तो दूसरा यथार्थ की। दोनों की आधारभूमि जन-शक्ति है। दोनों जन-जागरण एवं शोषण से मुक्ति का प्रयास है। दोनों में परंपराओं को छिन्न-भिन्न करने की अकुलाहट है। वे यह भी स्वीकार करते हैं—"जिसमें देश-नेताओं और देश की पवित्र आत्माओं के चरित्र लिखे गए हों, वे ही हमारे लिए पुराण स्वरूप हैं, जिसमें स्वदेश राग अलापा गया हो वे ही हमारे लिए गायत्री के मंत्र हैं, जिसमें राजनीति की कठिन उलझनें सुलझाई गई हों, वे ही वेदांत और दर्शन की पुस्तकें हैं, जिनमें हमारा तुम्हारा भाव भूलकर गले से लगाकर स्वतंत्रता ही हुंकार की गयी हो, वे ही हमारे पूज्य वेद भगवान हैं। इसी धर्म से दीक्षित हों।" यहां साहित्य का प्रयोजन, स्वाधीनता, स्पष्ट हो उठता है। चतुर्वेदी जी के इस कथन में उनकी रचना शीलता की झलक भी मिल जाती है। वे राजनीति और साहित्य को अलग नहीं स्वीकार करते। सत्य भी है, साहित्य और राजनीति दोनों एक दूसरे के पूरक हैं।

चतुर्वेदी जी वेदना को साहित्य के मूल में स्वीकार करते हैं किंतु वे केवल वेदना या पीड़ा की अभिव्यक्ति को ही साहित्य या काव्य का आधार नहीं मानते। वे तो वेदना और पीड़ा को विद्रोह का स्रोत स्वीकार करते हैं इसलिए वे उसमें विद्रोह की खोज करते हैं।

इतिहास इस बात का साक्षी है कि विद्रोह की यह लपट जिस रचनाकार में जितनी अधिक रही है वह उतना ही सफल रहा है। निश्चय ही इसके अभाव में साहित्य अपने उद्देश्य में सफल नहीं हो सकता। साहित्य के प्रधान अंग, कविता को वे विधाता के जगत की कमी की पूर्ति मानते हैं और कविता का आधार भी है विद्रोह। यह विद्रोह अपने वर्तमान, अपने परिवेश की विरूपताओं से विद्रोह है और यह विद्रोह ही नवीनता का जनक भी है—

हम हैं नहीं रूढ़ि की पुस्तक
के पथरीले भार
नित नवीनता के हम हैं
जग के मौलिक उपहार। (साहित्य और कविता, 1948)

यहां अगर रूढ़िगत परंपरा, उस परंपरा का जो हमारे विकास पथ की, अवरोधक है, के विरोध का आह्वान है तो वहीं नित नवीन बनने की अमिट आकांक्षा भी है। यह नवीनता और कुछ नहीं अपितु उन जर्जर मान्यताओं, रूढ़ि परंपराओं से मुक्त होकर विश्व स्तर पर बराबरी के, नए स्वरूप ग्रहण का संदेश है। वे मनुष्य को मौलिक उपहार मानते हैं जो अपने में ही नवीनता के भाव को आत्मसात किए है। आवश्यकता केवल उसे कुरेदने भर की है। राष्ट्रीय भावना के उन्मेष का पहला आधार होता है सामंतवादी व्यवस्था पर कुठाराघात। मजेदार बात यह है कि यह व्यवस्था केवल शासन तंत्र का केंद्र ही नहीं होती, अपितु साहित्य का भी केंद्र बन जाती है। भारतीय साहित्य पर दृष्टि डाली जाय तो यह बात साफ हो जाएगी। वे विद्रोह को कला का आधार भी स्वीकार करते हैं—

'मैंने मिट जाने में ही सीखा है जग में हरियाना।
मेरी हरियाली दुनिया में मिट्टी में मिल जाना।'

और यह विद्रोह भाव यहीं पूर्णता नहीं प्राप्त करता। अपितु वह तो यह सिद्ध करता है कि वह विद्रोह ही है जो हमें सबमें श्रेष्ठ बनाता है—

'विद्रोही हम हैं कि चढ़ाती प्रकृति हमी पर रूप
कलियों के किरीट पहनाती हमें बनाती भूप।'

चतुर्वेदी जी को एक दूसरी पीड़ा भी सालती रही है। इसीलिए वे साहित्य का आधार या स्रोत वर्ग विशेष या उच्च वर्ग को नहीं, जन सामान्य को मानते हैं। तभी तो काव्य के बाद दूसरा स्थान वे नाटक को देते हैं। किंतु नाटक को तब तक निरर्थक मानते हैं जब तक उसमें "देशराग न अलापा जावे, जिसमें छोटी शक्ति बड़ी शक्ति पर विजय प्राप्त न करें, जिसमें सत्ता के दुरूपयोग का फल न दिया गया हो वह नाटक नहीं, हम चाहते हैं कि बड़े राजा महाराजा नायक न होकर किसान नायक हो, गरीब किंतु पवित्र और उदार आत्मा नाटक के नायक बने और हम अपने चश्मे को अलग रखकर अपने घर का हाल जानें और अपना कर्तव्य समझें।" वे इस असमानता को मानव निर्मित बताते हैं। यद्यपि कहीं-कहीं वे भाग्यवादी भी दिखाई देते हैं, किन्तु भाग्यवादिता को भी वे रणभेरी बना देते हैं, विषमता

का जनक यह भाव ही तो संघर्ष को शक्ति देता है—

'तुम्हें मिली हरियाली, मुझे नसीब कोठरी काली
तेरे गीत कहावें वाह, रोना भी है मुझे गुनाह।
देख विषमता तेरी मेरी बजा रही तिस पर रणभेरी।' (हिमकिरीटनी)

इसीलिए वे स्वीकार करते हैं कि "मानव विकास को जन-जन के जीवन में उतारने की कला को साहित्य कहते हैं।" साहित्य पथ पर चलते हुए वे देशी साहित्य की पगडंडी पर आ जाते हैं। और उसे परिभाषित करते हुए वे और राष्ट्रोन्मुख हो जाते हैं। वे देशी साहित्य के लक्ष्य को स्पष्ट करते हुए कहते है--"मानव जाति को उन्नति के पथ पर लाने वाला, गिरी हुई दशा में ढांढ़स बंधाने वाला, अकर्मण्यता का नाश करने वाला, सैकड़ों वर्षों की बात आंखों के सामने ला देने वाला, मुर्दों में जान डाल देने वाला, समय की सूक्ष्म गति लिख देने वाला और देश के अनुरक्त हृदयों में जातीयता का प्रबल बीज बोने वाला यदि कुछ संसार में है तो वह देश का साहित्य है।" देश या राष्ट्र के साहित्य के स्वरूप की इससे अच्छी व्याख्या और क्या हो सकती है? वस्तुतः साहित्य का यही तो प्रतिपाद्य है। किंतु वे शुद्ध साहित्य और राजनीतिक साहित्य में भेद भी करते हैं—"साहित्य में भी साहित्य का अंश देश का यह गौरव शक्तियों का दर्पण कर्मवीरों का चित्र है जो राजनीतिक साहित्य कहा जाता है' (साहित्यिक हलचल)।

अतीत, छायावाद युग की असंख्य रचनाओं का आधार रहा है। प्रसाद इसमें अग्रणी रहे। यद्यपि अतीत के मोह के कारण ही प्रसाद पर पुनरूत्थानवादिता का आरोप भी लगा। वस्तुतः अतीत की पुनः प्रस्तुति के पीछे प्रसाद की पुनरूत्थानवादी दृष्टि कदापि नहीं थी। स्वयं चतुर्वेदी जी अतीत के ग्रहण की अनिवार्यता और उसके स्वरूप को स्पष्ट करते हैं—"कलाकार तो भूतकाल को, सुनहले भृतकाल को भी अपनी अंतर की आंखों के छोरों से इसलिए छूता है कि वह शक्ति भर भूतकाल की गहराई मापकर अपनी आकांक्षा का माप बना ले और उसको उठाकर जब वह भविष्य की ओर रख दे और उससे कुछ आगे अपनी कला-बिंदुओं की सीमा खींच दें, तो विश्व में, युग से होड़ लेती हुई उसे अपनी एक अमर पीढ़ी दिखायी दे।" कलाकार को वे एक महत्वपूर्ण व्यक्तित्व स्वीकार करते हैं जो समय का पथ प्रदर्शक और राहगीर होता है, न कि राहगीर का समय काटने की वस्तु मात्र। वे स्पष्ट घोषित करते हैं—'साहित्य का उचित स्थान वह हृदय है, जिसमें पीढ़ियां और युग अपने विश्वास को धरोहर की तरह छिपाकर रख सकें।' ऐसे हृदय में ही कला का उदय होता है। कलाकार की निर्मिति, साधारण नहीं असाधारण होती है और जब उसमें असाधारणता होगी तभी वह निर्मिति कहलाती है, इसे प्राप्त करने के लिए कलाकार को अपना सर्वस्व निछावर करना पड़ता है—'निर्माण जिसका बचपन हो, निर्माण जिसका अध्ययन, निर्माण जिसका चिंतन हो, निर्माण जिसकी कमाई और विनोद हो, तब निर्माण ही उसकी चिर समाधि क्यों न हो? उसे निर्माण की समाधि न कहेंगे, वह तो पंचतत्व को प्राप्त होकर भी समाधि के द्वारा पीढ़ियों में प्रेरणा-रूप में जीवित रहने वाला निर्माण ही कहा जावेगा, निर्माता की जिम्मेदारी पूरी करने वाला, निर्माता की यह अपनी चीज होगी।'

(अंगुलियों की गिनती की पीढ़ी) और वे कलाकार को अपने युग की स्फूर्ति के प्रकाश के रंग में डूबी भगवान की प्राणवान प्रेरक और कल्पक कूंची स्वीकार करते हैं। इसीलिए वे रचनाकारों को विद्रोह का बीज बोने का संदेश देते हैं। ''आज के साहित्यिक चिंतन पर जिम्मेदारी है कि वह पुरुषार्थ को दोनों हाथों में लेकर जीने का खतरा और मरने का स्वाद अपनी पीढ़ी में बोए' (अशस्त्रधारी पुरुषार्थ)।

और फिर! चतुर्वेदी जी जनता को संबोधित करते हुए उद्घोष करते हैं—'लुटेरे को जानने दो कि तुम्हारा हास्य यदि वरदान दे सकता है तो तुम्हारी आत्मरक्षा-पूर्ण उथल-पुथल प्रलय कर सकती है।' (जनता)

राष्ट्रीयता की भावना की जड़ को कमजोर करता है—धार्मिक उन्माद। 'रूढ़िग्रस्त धार्मिक भावनाओं पर कुठाराघात करते हुए वे कहते हैं—'इस धर्म ने साधारण समाज ही पर अपना हाथ साफ नहीं किया, प्रत्युत पढ़े लिखे समाज को भी अपना दास बना रखा है।' (धार्मिक विचार विभिन्नताः एक बीमारी)। यहां उनकी पीड़ा और तत्कालीन धार्मिक भावना के प्रति उनके मन का विद्रोह भाव स्पष्ट है। यह और जोर पकड़ता है—'जिस देश के सामाजिक, आर्थिक, नैतिक एवं धार्मिक विचारों में स्वाधीनता नहीं, वह राजनीतिक स्वाधीनता का अर्थ ही क्या जाने? और जिस देश के स्वाधीन विचारों का मानचित्र इतना भद्दा है वह स्वतंत्रता और स्वाधीनता का बार-बार नाम लेकर अपनी राय क्या प्रकट करता है?' (विचारों के नाश का प्रयत्न, मई 1815 'प्रभा') यहां चतुर्वेदी जी धर्म के क्षेत्र में स्वाधीन चिंतन पर बल देते दिखाई देते हैं, वह स्वाधीनता चिंतन और कुछ नहीं अपितु रूढ़िग्रस्तता से मुक्ति की कामना और तद्युगीन संदर्भ में धार्मिक स्वरूप की नयी खोज का प्रयास है।

सामाजिक समस्या पर भी वे बेखबर नहीं, इसीलिए वे नारी की स्थिति का पर्दाफाश कर उसके सुधार का प्रयास करते हैं। नारी आंदोलन का नारा देते हैं। विधवा बालिकाओं पर दर्दनाक टिप्पणी प्रस्तुत करते हैं—'जब ये यौवन दशा में दुराचरण द्वारा हमारी कीर्ति पताका फहरावेंगी तब सारा संसार तालियां पीटेगा। परंतु हम तो उच्च आस्तिक ठहरे ऐसे गंदे विषय पर कैसे ध्यान दे सकते हैं? चाहे बहिन कुलटा भले ही हो जाय, धन्य है हमारे शील को।'

वे समाज के ऊंच-नीच के भेद को मिटा देने का संकल्प लेकर आगे बढ़ते हैं—'अपने को नीच मानकर भारत रत्नगर्भा को उचित वस्तुओं के पाने का अधिकारी न समझो जो जलवायु उच्चों ने सेवन किया है, वही निम्न बनने वाले ने किया है। जिस भारत माता की गोदी में तुम खेले हो उसी में वे भी खेले हैं।' (सुधार विचार : घर्षण चाहिए) नैतिकता के ह्रास पर भी वे सतर्क हैं—'आजकल के ग्रेजुएटों से, देश, जाति और साहित्य की भलाई की आशा करना तो दूर की बात है, स्वयं ग्रेजुएट भी विमल चरित्र हैं या नहीं, यह भी विचारणीय है'? (भारतवर्ष की वर्तमान उच्च शिक्षा, 27 जनवरी 1914 सं. 11)

'खिलाफत की समस्या और गाजी मुस्तफा कमाल पाशा', 'टर्की के भाग्य का निपटारा', 'काठियावाड़ का रामराज्य', 'सत्याग्रह की विजय पर नम्र निवेदन' उनके वे निबन्ध हैं जिनमें युग की अंतर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय राजनीति से गहरा संबंध है। प्रत्येक लेख लेखक

की राजनीतिक प्रज्ञा, सूक्ष्मदृष्टि, दूरदर्शिता और उदात्त जीवन दृष्टि का परिचायक है।

चतुर्वेदी जी यह जानते थे कि देश की उन्नति तभी संभव है जब उसकी अपनी भाषा उन्नत हो, उसकी अपनी लिपि हो—''भाषा देश की आवाज है परदेश की नहीं। संसार में ऐसा देश नहीं जो अपनी भाषा में आए हुए संदेश को समझने में विलंब करे, और दूसरी आवाज में आए हुए संदेश को भरपूर समझ सके।' (उठो कुरीतियों के खिलाफ, अप्रैल, 1915, सं. 2)

और वे नारा देते हैं—'राष्ट्रभाषा के गौरव की रक्षा हेतु अब हमें बैठे मुंह न देखना चाहिए''। पुनः वे ग्रियर्सन के रोमन लिपि स्वीकार करने के प्रस्ताव पर कह उठते हैं—'ग्रियर्सन विचारे यहां के कुलियों, किसानों और व्यापारियों का हाल क्या जानें?' और वे घोषित करते हैं कि 'भारत की यदि कोई लिपि हो सकती है तो यह नागरी लिपि ही हो सकती है।''

यहीं नहीं, वे मानव विकास को जन-जीवन में उतारने की कला को साहित्य कहते हैं। ऐसी स्थिति में साहित्य की भाषा कैसी हो? यह प्रश्न उठता है। यदि वे साहित्य की भाषा की सहजता और सरलता के हिमायती हैं तो वे जन-साधारण के बीच की भाषा को अपनाने के भी पक्षधर हैं। उस भाषा को नया अर्थ गौरव प्रदान करने में समर्थ हैं। कला और साहित्य निबंध में भी वे स्पष्ट कहते हैं कि 'कठिन भाषा साहित्य को कला होने से रोकती है। कठिन भाषा लिखकर गांवों और शहरों में विभेदक रेखा खींचकर हिंदी भाषा ज्ञान के क्षेत्र में अपने ही समाज के दो टुकड़े करने का पेशा. . . .विभेदकता से कम नहीं। . . .हिंदी के जिन मुहावरों को हम शब्द कोशों में देखते हैं वे गाँवों की ग्रामीण बोलियां में अभी भी जीवित हैं, किंतु हमारी नागरिक बोली में बिना नमक के स्वाद की तरह मुहावरों का अभाव है। हमारे सूत्र और शास्त्र जाने कब के मर गये होते यदि संतों के सरल गीतों और गांवों के चौपालों की कथा-कहानियों ने उन्हें जीवित न रखा होता। ग्रामीणों की सरल कहानियों और संतों के गीतों ने हमारे सांस्कृतिक साहित्य को वाचा दान किया, उसके प्रति सुरुचि, स्वाद श्रद्धा औए स्नेह को जागृत किया।' (जीवन और जनभाषा 1953)। चतुर्वेदी जी के अनुसार कलाकार की भाषा को वही समझ सकता है 'जो जीवन और मृत्यु को समझा करते हैं।', तात्पर्य यह है कि देश हित में उत्सर्ग की भावना के अभाव में साहित्य की समझ नामुमकिन है।

परतंत्रता के कारणों की खोज किए बिना उससे मुक्ति या स्वाधीनता की रक्षा संभव नहीं। चतुर्वेदी जी की यह भी चिंतना है—

> क्यों पड़ी परतंत्रता की बेड़िया? दासता की हाय हथकड़ियां पड़ी?
> दास भावों के हलाहल से भरे। मर रहा प्यारा हमारा देश क्यों?
>
> (राष्ट्रीय वीणा, पृ. 6)

चतुर्वेदी जी का मन अंतर्द्वंद्व और संघर्ष से ग्रस्त है, किंतु यह अपने लिए नहीं, भावी पीढ़ी के लिए है, तभी तो वे जेल की वेदना सहते हुए जेल के हर कष्ट को जीवन का सुख स्वीकार करते हैं :

जंजीरें हैं हथकड़ियां हैं, नेत्र सुहागिन की लड़ियां हैं
काले जी के काले साजन, काले पानी की घड़ियां है।

कोयल की कूक सुनकर 'कैदी और कोकिला' शीर्षक से रचित कविता जहां चतुर्वेदी के कभी न हारने वाले व्यक्तित्व की पहचान है, वहीं उनके धैर्य साहस और संघर्ष की अटूट आकांक्षा की भी परिचायक है। चतुर्वेदी जी जैसा राष्ट्र के लिए मर मिटने वाला व्यक्तित्व ही जेल की वेदना से रस खींच कर कविता का सृजन कर सकता है और ब्रिटिश राज्य का अकड़ का कुंआ खाली करने का संकल्प ले सकता था, जीवन की तान को अंगुलियों से मिट्टी पर लिखने को बेताब रह सकता था। यह अकल्पनीय नहीं। क्या आजाद, भगत सिंह, गांधी इसके उदाहरण नहीं?—

क्या देख न सकती जंजीरों को पहना/हथकड़ियां क्यों? यह ब्रिटिश राज का गहना
कोल्हू की चरक-चूँ-जीवन की तान/मिट्टी पर अंगुलियों ने लिखे गान
हूं मोट खींचता लगा पेट पर जुआ/खाली करता हूं ब्रिटिश अकड़ का कुंआ।

किंतु इतनी संघर्षशीलता, स्वाधीनता की अटूट आकांक्षा को संजोए देश को आदर्श बनाने की ये संकल्पना लिए व्यक्तित्व भी अपने को एक फूल; वह फूल जो दूसरों के पथ को कोमल, किसलय बनाए; स्वीकार करने की भावना ही चतुर्वेदी जी की श्रेष्ठता है। यही आत्मोत्सर्ग की उनकी आकांक्षा है और दूसरों से यही उनकी अपेक्षा भी। तभी तो राष्ट्र निर्मिति संभव है:

किंतु कहे देता हूं तुझसे सब जायेंगे भूल।
तेरे चरणों पर ही अर्पित होगा जीवन फूल।। (राष्ट्रीय वीणा, पृ. 2)

× × ×

मुझे तोड़ लेना बनमाली, उस पथ में देना तुम फेंक।
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने जिस पथ जांवे वीर अनेक।।

हिमतरंगिनी की रचनाएं एक तरफ चतुर्वेदी जी की सघन संवेदना की पहचान हैं तो दूसरी तरफ भारतीय मन के लिए संजीवनी हैं। जो उन्हें नई शक्ति, विदेशी सत्ता से संघर्ष की शक्ति से संबलित करती हैं। वे स्वयं स्वीकार करते हैं ''किसी नाले पर, नदी पर या किसी स्थान पर मैं होता तब जीवन से, बीहड़ और आदर्शवादी जीवन से भी, जब घबराहट होती थी मैं ऐसे गीतों को लिखा करता था।. . . विधाता ने मानो कुछ देकर मुझसे छीन लिया है।''. . . ''भाई, मनुष्य अपनी ही जिंदगी नहीं जीता, उसे अपने जमाने की जिंदगी भी जीनी होती है, चाहे हंसकर जिये या रो कर जिए। यही हिमतरंगिनी के गीत हैं।''

चतुर्वेदी जी अपने साहित्य को वह स्वरूप मानते हैं जो केवल बाह्य रूप में भारतीयों की एकता का प्रयत्नशील नहीं अपितु सशरीर एकता के लिए चाह है, जिसमें अंग प्रत्यंग का भेद ही नहीं :

ढेरा मत बोलो, यह मेरा व्रत पूजन है।
सन नहीं तन भारतीयों के मिलाता हूं। (1921, जबलपुर जेल से)

'ढेरा' वह माध्यम है जिसे सुतली तैयार होती है। इस प्रक्रिया में उसकी गंदगी तो साफ होती ही है, तन्मय व्यक्ति उसे हर स्तर पर बराबर बनाता है। यह बराबरी मानवता के विकास और एकता की अपरिहार्य स्थिति है। राष्ट्रीय भावना के लिए इससे बड़ा संकल्प और क्या हो सकता है? राष्ट्रीय एकता के लिए आवश्यकता है समस्त भारतीयों को सशरीर एक बनाने की। और यह चतुर्वेदी जी जैसा व्रत पालक ही कर सकता है। □

गोष्ठी प्रसंग

एक भारतीय आत्मा की याद में

ब्रजेंद्र त्रिपाठी

साहित्य अकादेमी, नयी दिल्ली और सर्जनात्मक लेखन एवं प्रकाशन केन्द्र, आई.आई.टी., कानपुर के तत्वावधान में माखनलाल चतुर्वेदी जन्म-शत-वार्षिकी के अवसर पर एक द्विदिवसीय संगोष्ठी संपन्न हुई। कानपुर में संगोष्ठी के आयोजन की सार्थकता इस रूप में थी कि कानपुर से चतुर्वेदी जी का घनिष्ठ संबंध था। स्व. गणेश शंकर विद्यार्थी उनके अनन्य मित्र और सहयोगी थे। उनके समाचार-पत्र 'प्रताप' के संपादन का दायित्व लिया था और विद्यार्थी जी ने एक लंबे अरसे तक माखनलाल जी द्वारा संस्थापित और संपादित मासिक पत्रिका 'प्रभा' का मुद्रण और प्रकाशन प्रताप प्रेस से किया था।

संगोष्ठी का प्रारंभ निराला द्वारा रचित सरस्वती वंदना 'वीणा वादिनी वर दे!' के साथ हुआ। साहित्य अकादेमी की तरफ से उसके सचिव श्री इंद्रनाथ चौधुरी ने और आई.आई.टी. की तरफ से उसके निदेशक ए.के. मलिक ने आमंत्रित अतिथियों, साहित्यकारों और बुद्धिजीवियों का स्वागत किया। साहित्य अकादेमी के अध्यक्ष, विख्यात उपन्यासकार, साहित्य अकादेमी तथा ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता असमिया लेखक *डॉ. बीरेंद्र कुमार भट्टाचार्य* ने प्रवर्तन व्याख्यान देते हुए कहा कि माखनलाल चतुर्वेदी भारतेंदु परंपरा के बाद आने वाले स्वतंत्रता संग्राम के युग में प्रथम पंक्ति के लेखकों में से एक थे। वह एक महान पत्रकार थे और 'प्रभा' तथा 'कर्मवीर' के संपादन द्वारा उन्होंने पत्रकारिता के मानदंड स्थापित किये। उन्होंने उनकी तुलना असमिया लेखक अंबिका राय गिरि चौधुरी से की और उनकी समानताओं को रेखांकित किया। उन्होंने कहा कि उनकी कविता में लोक तत्व के साथ संस्कृत की शास्त्रीय परंपरा के भी दर्शन होते हैं। माखनलाल जी जीवन और कला को अलग नहीं देखते थे। स्वतंत्रता उनके लिए आत्मा की मुक्ति थी। प्रसिद्ध हिंदी कवि श्री *शिवमंगल सिंह 'सुमन'* ने इस अवसर पर श्री श्रीकांत जोशी द्वारा माखनलाल चतुर्वेदी पर लिखित पुस्तक का लोकार्पण किया।

उन्होंने कहा कि राष्ट्रीय कवि के रुप में मेरे सामने एक ही नाम आता है, माखनलाल चतुर्वेदी का। उन्होंने ही पहले-पहल राष्ट्रीय काव्यधारा प्रवाहित की। दूसरा नाम मेरे सामने सुब्रह्मण्यम भारती का आता है। माखनलाल चतुर्वेदी के काव्य और गद्य को राम और भरत की संज्ञा दी जा सकती है। दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। यह कह सकना बड़ा कठिन है कि गद्य और पद्य के शिखर में कौन अधिक ऊंचा है। सुमन जी ने इस तथ्य की तरफ भी ध्यान आकृष्ट किया कि गणेश जी और माखनलाल चतुर्वेदी ने मिलकर राष्ट्रीय जागरण का शंख फूंका था। अक्तूबर 1913 में खंडवा से 'प्रभा' का प्रकाशन शुरु हुआ और इसी

समय कानपुर से 'प्रताप' का। 'प्रताप' के प्रथम अंक में ही चतुर्वेदी जी की 'चेतावनी' कविता छपी, 'एक भारतीय आत्मा' के नाम से। 1912 में 'भारत भारती' का प्रकाशन हो चुका था। उन्होंने इसे जागरण में हिंदी साहित्य सम्मेलन और अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी अधिवेशनों के योगदान की भी चर्चा की। डा. सुमन ने माखनलाल जी के कानपुर से आत्मीय संबंधों की चर्चा करते हुए उनके संस्मरणों के माध्यम से उनके व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाशन डाला। उन्होंने कहा कि मैथिलीशरण गुप्त को गांधी जी ने 1936 ई. में 'राष्ट्रकवि' की उपाधि दी थी और बाद में वे इसी रुप में प्रसिद्ध हुए। पर इसके बीस वर्ष पहले ही 1916 में ही 'पुष्पांजलि' शीर्षक कविता में ही चतुर्वेदी जी ने उन्हें 'राष्ट्रकवि' कह कर संबोधित किया था। साहित्य रचना के साथ चतुर्वेदी जी ने स्वतंत्रता संग्राम में भाग लिया और जेल भी गये। वे ऐसे सर्जक थे जिन्होंने अपनी त्याग-तपस्या को भुनाया नहीं। वे राजधानी से दूर खंडवा में ही अलख जगाये रहे। उन्होंने कहा कि 'कर्मवीर' जैसे पत्र द्वारा ब्रिटिश राज को चुनौती देते हुए माखनलाल ने मिशन भावना से जुड़ी हुई पत्रकारिता का उदाहरण प्रस्तुत किया।

अपने मुख्य व्याख्यान में *डॉ. विजयेंद्र स्नातक* ने चतुर्वेदी जी को अपने युग का नैसर्गिक प्रतिभा संपन्न काव्य-पुरुष बताया। उन्होंने कहा कि 'एक भारतीय आत्मा' के नाम से विख्यात इस कवि ने अपने युग की संपूर्ण राष्ट्रीय चेतना को स्वर देने तथा विदेशी शासन के प्रति जन-मानस में आक्रोश, विद्रोह और उत्तेजन उत्पन्न करने में अपनी शक्ति का पूरा इस्तेमाल किया। ज्वालामुखी के मुख पर बैठकर वेणुवादन करने का अदम्य साहस, जो उस समय कल्पनातीत था, इस कवि ने चरितार्थ कर दिखाया। परंपरित काव्य रुढ़ियों से पृथक रहकर, राष्ट्रीय चेतना से ओत-प्रोत स्वर-साधना में वे तल्लीन रहे। किसी बाला के केशपाश में लोचन उलझाना, लाजभरे सौंदर्य को अपलक नयनों से निहारना, आकाश से किसी मौन निमंत्रण को सुनना, मधुर-मधुर दीपक की लौ पर न्यौछावर होना उन्हें न सुहाया। डॉ. स्नातक ने कहा कि राष्ट्र और राष्ट्रीयता की चिंता में निमंत्रित 'भारतीय आत्मा' के काव्य की मूल प्रेरक शक्ति उनकी परंपरागत वैष्णव भावना है। वैष्णवता और राष्ट्रीयता का मणिकांचन संयोग उनका सहज स्वभाव था। उनके मुख से कविता ही नहीं गद्य और भाषण भी उसी लय और यति-गति में प्रवाहित होते थे। गद्य काव्य विधा में 'साहित्य देवता' अपनी भावात्मकता, रसात्मकता और व्यंजनात्मकता के कारण एक बेजोड़ कृति है। उन्होंने खड़ी बोली हिंदी को फुटपाथ के व्याकरणिक गलियारे से निकालकर राजपथ पर छाती तानकर निर्द्वंद्व भाव से चलना और दौड़ना सिखाया।

अपने अध्यक्षीय व्याख्यान में श्री *बिशंभरनाथ पांडेय* ने कहा कि माखनलाल जी का आदर करके हम हिंदी काव्य प्रतिभा का, हिंदी साहित्य का, निर्भीक देशभक्ति का, त्याग और सेवा का, तपोमय जीवन का आदर कर रहे हैं। वास्तव में वे विराट भारत की अखंड आत्मा थे। उनके काव्य में हिमालय की गरिमा हरितांबरा धरती से एकाकार होती है। नर्मदा और वेत्रवती की उच्छल तरंगे गंगा की मंथर मूर्छनागति में एकाकार हो गयी हैं। संकल्प और भावना, बुद्धि की तीव्रता, दर्शन की दुरुहता और जीवन की सहज छवि एक साथ ही उनके काव्य में मिलती है। वे इस देश के ऐसे गायक थे, जिन्होंने एक विशेष युग में गाया

परंतु उनका गीत युग-युग का संगीत बन गया। पांडेय जी ने कहा कि दादा सार्वजनिक जीवन में निस्पृहता और त्याग की मिसाल थे। गरीबी का उन्होंने वरण किया था। जब तक राजनीति में रहे, स्वाभिमान के साथ रहे। सरदार पटेल से सैद्धांतिक मतभेद के कारण उन्हें महाकौशल प्रदेश कांग्रेस की अध्यक्षता और प्रदेश कांग्रेस पार्लियामेंटरी बोर्ड की अध्यक्षता से त्यागपत्र देने मे जरा भी संकोच नहीं हुआ। पटेल को भी पता चला कि उनकी कृश काया के भीतर भी लौह आत्मा है। दादा ने जो एक बार त्यागपत्र दिया तो फिर पीछे मुड़कर नहीं देखा। अवसरवादी राजनीति उनकी छाया तक का स्पर्श नहीं कर सकी। *श्री गिरिराज किशोर* ने धन्यवाद ज्ञापित करते हुए कहा कि अब ऐसा जमाना आ गया है कि राष्ट्रीयता को हेय दृष्टि से देखा जाने लगा है परंतु एक युग था जब कवियों ने राष्ट्रीय चेतनापरक कविताएं लिखकर इस भावना को जन-जन तक पहुंचाया। अंतर्राष्ट्रीयता को स्वीकार करने के लिए भी राष्ट्रीयता जरूरी है। माखनलाल ने इस दृष्टि से एक बहुत गहरी भावना का परिचय दिया। उन्होंने 'फूल की चाह' शीर्षक कविता का उदाहरण देते हुए कहा कि प्रत्येक काल और देश में स्वतंत्रता की अलग परिभाषा होती है।

संगोष्ठी के 'युगीन चेतना और राष्ट्रीयता' विषयक प्रथम सत्र में समकालीन कविता के प्रमुख हस्ताक्षर *प्रो. केदारनाथ सिंह* ने कहा कि साहित्य रचना और जेल यातना उस युग की पूरी सर्जनात्मक चेतना के दो छोर थे। इन दोनों छोरों के बीच जो एक विरोध दिखायी पड़ता है, सचाई यह है कि उन्हीं दोनों के तनाव से उस युग का समूचा सृजनात्मक माहौल निर्मित हुआ था। इतिहास में ऐसे दौर कम ही आते हैं जब ये दोनों छोर प्रत्यक्षतः आमने-सामने दिखायी देते हैं। इस अर्थ में स्वतंत्रता आंदोलन के जमाने के कवि अधिक भाग्यशाली थे क्योंकि उनके सामने दोस्त और दुश्मन के चेहरे दिन की तरह साफ थे।, जहाँ रचनात्मकता इतने बेबाक ढंग से साफ हो, वहां लेखक को बिल्कुल दूसरे तरह के खतरे का सामना करना पड़ता है—यहाँ समस्या कला के खतरे के रुप में होती है, जिसका सामना यदि पूरी सृजनात्मक और कलात्मक क्षमता से नहीं किया गया तो रचना के एकायामी और सपाट होने की आशंका हमेशा मौजूद रहती है। चतुर्वेदी जी की कविताओं की यदि गहराई से छानबीन की जाये तो पता चलेगा कि वे रचना के मार्ग में आने वाले इन खतरों से पूरी तरह सचेत थे। उनकी कविता और गद्य दोनों में ही इसके प्रमाण मिल जाते हैं। उन्होंने कहा कि माखनलाल के भावबोध के विकास और उसकी विशिष्ट बनावट को परिभाषित करने की कोशिश बहुत कम की गयी है। उनकी कविताओं में भ्रम में डालने वाली ऐसी सरलता है कि गंभीर से गंभीर पाठक भी धोखा खा जाता है और इसीलिए उनकी रचनात्मकता का समुचित मूल्यांकन भी नहीं हो पाया है। उन्होंने 'पुष्प की चाह' कविता को हिंदी काव्य सवेदना में घटित होने वाले मूलभूत परिवर्तन का सूचक बताया। प्राचीन और नवीन के टक्कर से पैदा होने वाली ये अनुगूंजें माखनलाल के पूरे काव्य में सुनी जा सकती हैं। उनकी कविताओं में एक ठेठ हिंदुस्तानी की प्रज्ञामूलक सोच दिखायी पड़ती है। एक कवि की राष्ट्रीय चेतना सबसे पहले उसकी सौंदर्य दृष्टि का विस्तार करती है और किसी हद का उसका रुपांतरण भी। उनमें यथार्थवादिता है और एक खास तरह का अनगढ़पन भी जो पाठकों को विचलित करता है। *डॉ. बिजेंद्र नारायण सिंह* ने अपने 'कवि माखनलाल

चतुर्वेदी : कृष्ण मिथक से राष्ट्रीयता के मिथक तक की यात्रा' विषयक आलेख में कहा कि समग्र आधुनिक हिंदी कविता में अगर किसी कवि में कृष्ण चेतना का पूर्ण आधिपत्य दीख पड़ता है तो वे हैं भारतेंदु हरिश्चंद्र और माखनलाल चतुर्वेदी। दोनों ही प्रखर राष्ट्रीय भावना के कवि हैं। लेकिन दोनों में एक बड़ा अंतर यह है कि भारतेंदु में कृष्ण चेतना और राष्ट्रीय भावना में किसी प्रकार का संबंध नहीं दीख पड़ता है जबकि माखनलाल में मध्यकालीन कृष्ण चेतना शनैः शनैः प्रखर राष्ट्रीय भावना में रुपांतरित हो गयी है। वे कृष्ण चेतना से आक्रांत व्यक्ति और रचनाकार हैं। यह उनकी कविता का प्रस्थान बिंदु ही नहीं, पर्यवसान बिंदु भी है। कृष्ण के तमाम प्रसंग उनकी रचनाओं में बिखरे पड़े हैं और उन्होंने इस पुराने मिथक को विद्रोह के प्रतीक में रुपांतरित कर दिया है। डॉ. सिंह ने कहा कि माखनलाल चतुर्वेदी हमारे जातीय कवि हैं। उनकी राष्ट्रीय भावना चेतना से व्युत्पन्न है और उनकी जातीय चेतना कृष्ण मिथक से अनुशासित ही नहीं वरन् आक्रांत है। श्री श्रीकांत जोशी ने राष्ट्रीयता और उसके क्रमिक विकास को व्याख्यायित करते हुए कहा कि कितनी सहजता से एक ही कविता संपूर्ण युग बदल सकती है, इसे माखनलाल जी के प्रारंभिक वर्षों का आकलन कर स्थूल रुप में भी समझा जा सकता है। स्वराज्य और समता का घोष करते हुए शोषकों का प्राणांतक विरोध करते हुए माखनलाल जी की राष्ट्रीयता जिस वैश्विक शिखर को स्पष्ट करती है, वह कोई साधारण बात नहीं। सत्र के अध्यक्ष श्री *राजेंद्र यादव* ने अपनी टिप्पणी में कहा कि युगीन चेतना और राष्ट्रीयता दो विरोधी चीजें नहीं हैं। राष्ट्रीयता की अवधारणा उस जमाने में बड़ी व्यापक थी। स्वतंत्रता के बाद एक गुणात्मक परिवर्तन यह आया कि हमने इसे सत्ता से जोड़ दिया। वह एक भौगोलिक चीज हो गयी और वह सांस्कृतिक और सार्वभौमिक लड़ाई की बात पीछे हो गयी। राष्ट्रीयता का एक सक्रिय रुप जो माखनलाल जी के जमाने में था, अब उसे स्वयंसेवी संस्थाओं के जिम्मे छोड़ दिया गया है। भौगोलिक रुप से हमने सरहदों को राष्ट्रीयता से जोड़ दिया है, जिससे बहुत सी सरहदें उभर आयी हैं जो क्षेत्रीयता में जाकर सिमट जाती हैं। श्री यादव ने इस बात की तरफ ध्यान आकृष्ट कराया कि इलाहाबाद, बनारस और लखनऊ—हिंदी के इन तीन गढ़ों से अलग चतुर्वेदी जी ने मध्यभारत में एक केंद्र बनाने का प्रयत्न किया और शायद इसीलिए उन्हें मान्यता मिलने में देर लगी। उन्होंने कहा कि छायावादी कविताओं के गद्य और पद्य (जिसमें माखनलाल जी भी शामिल हैं) में क्या अंतर है, इसे गंभीरता से जाँचने की कोशिश नहीं की गयी।

संगोष्ठी का दूसरा सत्र 'पत्रकारिता और जन जागरण' विषय पर केंद्रित था। सत्र के अध्यक्ष *डॉ. प्रभाकर माचवे* ने माखनलाल जी से जुड़े हुए कई अंतरंग संस्मरण सुनाये तथा उन्होंने कहा कि 'विंध्य कुमार' के नाम से 'कर्मवीर' में कविताएं लिखीं। उन्हें मराठी से अतिशय प्रेम था। यह इससे भी प्रकट है कि उन्होंने अपने लेखों में मराठी साहित्यकारों का उल्लेख किया है। माचवे जी ने उनके पुस्तक प्रेम का भी जिक्र किया और उनकी वैश्विक भावना का भी। कविता को प्रगतिवाद और स्वच्छंदतावाद आदि के खाने में बांटकर देखना बेकार है। माखनलाल जी छायावाद के पहले जनक थे। सांसद पत्रकार *श्री नरेश चंद्र चतुर्वेदी* ने कहा कि वह ऐसा युग था कि आप अलग-अलग खानों में बांटकर किसी

व्यक्ति की पूर्णता नहीं सिद्ध कर सकते थे। आधुनिक हिंदी की प्रतिष्ठापना के साथ ही 'भारतीय जन जागरण' का भी काम शुरू हो जाता है। 1878 ई. में 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' में कहा गया कि 'हिंदी नयी चाल में ढली'। उसी भारतेंदु युग में पं. प्रताप नारायण मिश्र हैं। बंगाल में सबसे पहले हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने की मांग उठी। चतुर्वेदी जी ने उस युग के अनेक पत्रों का उल्लेख किया जो जन जागरण का कार्य कर रहे थे। गणेशशंकर विद्यार्थी हिंदी पत्रकारिता में जन जागरण के पुरोधा थे। छैल बिहारी दीक्षित 'कंटक' को अपनी कविताओं के लिए जेल जाना पड़ा। माखनलाल जी की पत्रकारिता की शुरुआत 1913 में 'प्रभा' से होती है। इसी वर्ष कानपुर से विद्यार्थी जी ने 'प्रताप' शुरु किया। 1920 में माखनलाल जी ने 'कर्मवीर' का प्रकाशन किया। माखनलाल जी ने भाषा को एक नया सूत्र दिया। श्री ***प्रभाष जोशी*** ने कहा कि पत्रकारिता माखनलाल जी के लिए व्यवसाय नहीं थी। उनके लिए पत्रकारिता देश के लिए बलिदान की पगडंडी थी। उस समय लिखने और छपवाने से यश और कमाई नहीं होती थी। लिखने की तब कीमत चुकानी होती थी जो जुर्माने से लेकर जेल और बरबादी तक हो सकती थी। माखनलाल जी ने उमर भर विद्रोही लेखन किया और उसकी कीमत चुकाई। उन्होंने कांग्रेस संगठन में कभी कोई गौरवपूर्ण पद नहीं लिया, न कभी कांग्रेस छोड़ी। श्री जोशी ने कहा कि स्वतंत्रता और राष्ट्रीयता की कीमत हर निष्पक्ष संपादक को चुकानी होती है। फिर चाहे देश गुलाम हो या आजाद और माखनलाल जी गणेश शंकर विद्यार्थी के साथ हिंदी के सबसे स्वतंत्रचेता संपादक थे। उनके लिए पत्रकारिता व्यवसाय, यश, प्रतिष्ठा और सत्ता का साधन हो ही नहीं सकती थी। माखनलाल चतुर्वेदी को उनकी शतवार्षिकी पर हमारा सच्चा पिंडदान यही हो सकता है कि हम आजाद भारत की सत्ता को जनता के प्रति उत्तरदायी बनायें और ऐसा करने की जो भी कीमत हो चुकाएँ।

संगोष्ठी का तीसरा सत्र 'माखनलाल चतुर्वेदी : युग, साहित्य और राजनीति' विषय पर केंद्रित था। श्री ***नरेश मेहता*** ने कहा कि चर्च, राज्य और मशीन के सामूहिक आक्रमण और पश्चिम के साम्राज्यवादी स्वरुप ने हमारे पारंपरिक अर्थ तंत्र, उत्पादन और कला कौशल को निगल लिया। उन्होंने कहा कि हमने दर्शन-चिंतन से निश्चित ही बहुत कुछ सीखा, पर इतिहास से नहीं। मध्यकाल का हमारा सारा व्यक्तित्व और आचरण कच्छप वृत्ति वाले कापुरुष का है। दार्शनिक या सांस्कृतिक शब्दावली से मंडित कर देने के बावजूद हमारी कापुरुषता का पीतल झाँक ही जाता है। श्री मेहता की इस टिप्पणी पर खासी तीखी प्रतिक्रियाएँ हुई। उन्होंने कहा कि पश्चिमी ढंग की शिक्षा का आरंभ अंग्रेजों की सबसे कूटनीतिक चाल थी जिससे वह भारतीय वैचारिक मनस्विता से मात दे सकते थे। हमने अपने चिंतन और भाषाओं की सारी खिड़कियाँ बंद कर लीं और मानने लगे कि हमारी भाषा की खिड़कियों से जब हम अपना पूरा देश ही नहीं देख सकते तब भला विश्व-दर्शन कैसे संभव है और यह कार्य केवल अंग्रेजी नामक भाषा-खिड़की से ही संभव है। इस दास मनोवृत्ति को कितना ही मंडित किया जाये पर है जह हमारी जातीय अस्मिता का संपूर्ण हरण। वस्तुतः इतिहास के मंच पर इससे अधिक हम और विदूषक कभी नहीं थे। श्री मेहता ने कहा कि जिस यौवनकाल में माखनलाल चतुर्वेदी और नवीन कवियों ने ये जेलयात्राएं भोगीं, वह उनकी

राजनीतिक कविताओं के साथ-साथ उनके राग-विद्रोह को भी व्यक्त करती रहीं, इसलिए ये सहज कवि लगते हैं, न केवल राजनीतिक व्यक्ति। श्री *जगदीश गुप्त* ने कहा कि माखनलाल जी की पत्रकारिता उनके साहित्य-कर्म का अभिन्न अंग रही है तथा किसी प्रकार का अंतर नहीं किया। उनकी क्रांतिमुक्ति वैष्णवता राष्ट्रीयता के साथ एकात्म दिखायी देती है। उनकी मुक्ति-चेतना परलोकोन्मुखी न होकर निरंतर लोक की ओर उन्मुख रही। उनकी कालदृष्टि बहुआयामी थी। सामयिक संदर्भों में जीते हुए भी वे कालातीत दृष्टि की पहचान रखते थे। माखनलालजी के भीतर एक सजग, संवेदनशील चित्रकार-मूर्तिकार के दर्शन होते हैं, विशेषतः 'हिमकिरीटिनी' के रुप में जब वे भारत माता की काव्यमयी मौलिक कल्पना करने लगते हैं। उनका साहित्यबोध ऐसा था कि किसी जगह वह राजनीति से नीचे नहीं दिखायी देता वरन् बहुधा उसके ऊपर प्रतिष्ठित प्रतीत होता है। श्री *अजित कुमार* ने कहा कि श्री ***माखनलाल चतुर्वेदी*** ने युग की मांग श्रमजीवी पत्रकार तथा वक्ता के रुप में, साहित्य की मांग लेखक तथा कवि के रुप में और राजनीति की माँग स्वाधीनता संघर्ष में संलग्न सेनानी तथा कार्यकर्त्ता के रुप में पूरी की थी। उनके व्यक्तित्व और कृतित्व के तीनों पक्षों के बीच किस तरह का संबंध था और इन तीनों कृतियों ने उनके अवदान पर क्या प्रभाव डाला—इसकी पड़ताल होनी चाहिए। अजित कुमार ने माखनलाल जी के अनेक उद्धरणों से सिद्ध किया कि विषय के अनुसार भाषा में परिवर्तन आने के बावजूद छंद एक ही है। उनकी कविताएँ चाहे वे भक्तिपरक हैं, या देशभक्ति, छायावादी या यथार्थवादी, झरने और बिजली जैसी वेगयुक्त हैं, पर उनका जल और ताप झलकने के बाद एकबारगी नष्ट नहीं हो जाता, बल्कि लौट-लौटकर बार-बार अपने-आपको ऊर्जस्वित करता है। उन्होंने कहा कि समय के साथ उनकी अभिव्यक्ति में गूढ़ता की जगह स्पष्टता बढ़ती गयी और आशु भाषा का गुण जो उनके आरंभ से नैसर्गिक रुप में विद्यमान था, वह एक तरह की सिद्ध या अनायास भाषा में ढलने लगा। उन्होंने इस तथ्य की ओर भी इशारा किया कि माखनलाल की विविध भूमिकाओं ने उनके लेखक को स्फूर्ति और विषय दिये—उसमें ओजस्विता की मात्रा भी बढ़ाई—लेकिन वक्तृत्व, राजनीति और पत्रकारिता ने एक अत्यंत समर्थ, संवेदनशील एवं प्रतिभाशाली लेखक की सभी संभावनाओं को पूर्णतः प्रस्फुटित नहीं होने दिया। दक्षिण भारत से पधारे हिंदी विद्वान *एन.ई. विश्वनाथ अय्यर* ने कहा कि माखनलाल जी के व्यक्तित्व का अंग देशप्रेम उनकी कविता में भी प्रकट हुआ है। माखनलाल जी के शब्द कोरे शब्द नहीं थे। वे स्वयं उस पथ पर गये और कांटों का ताज पहना। वे युग के बलिदानी स्वतंत्रता सैनिक हैं। उनके काव्य मे युग की राजनीति प्रतिबिंबित है।

संगोष्ठी का समापन करते हुए *श्री विष्णु प्रभाकर* ने कहा माखनलाल जी स्वतंत्रता आंदोलन के युग के भोक्ता और द्रष्टा थे। उनके काव्य में शांति और क्रांति दोनों स्वर मुखर हुए हैं। वहां क्रांति का शंखनाद है, तो सौंदर्य की अनुभूति भी है। वे प्रेम और माधुर्य के कवि भी हैं, उनकी गणना छायावाद के प्रवर्तक कवियों में की जाती रही। लेकिन उन्होंने अपने लौकिक प्रेम को राष्ट्र प्रेम में इस तरह रुपांतरित कर दिया है, जैसे महादेवी ने आध्यात्मिकता में। इसलिए उनका प्रमुख स्वर क्रांति और विद्रोह का ही है। इस क्षेत्र में वे अपने समकालीनों से समरस होकर भी कई अर्थों में अलग हैं। वे बाँसुरिया के स्थान पर,

पांचजन्य उठा लेते है तो पिस्तौल को रखकर गांधीजी की गोपियों में भी शामिल हो जाते हैं, इसलिए उनका पांचजन्य अहिंसक युद्ध का उद्‌घोष करता है। वे देश भक्ति, उत्साह और ओज के अद्‌भुत कवि हैं। आज के युग में प्रतिबद्धता का स्वर बहुत मुखर हो उठा है। माखन लाल जी का पूरा सृजन राष्ट्र की स्वाधीनता मनुष्य की अस्मिता और अपनी कला के प्रति प्रतिबद्ध है। विष्णु जी ने कहा कि वास्तव में माखनलाल जी यात्रा-पुरुष थे। वह यात्रा पुरुष जो निरंतर चलने में विश्वास करता है, चरैवेति-चरैवेति। जिसके सामने मंजिल नहीं होती, बस राह होती है। कर्म होता है, कर्मफल नहीं, जो प्रयत्न में नहीं सहजता में विश्वास करता है, जो सत्य से अधिक सत्य की खोज में व्याकुल रहता है, जिसकी आस्था खंड में नहीं संपूर्ण में है। □

इस अंक के लेखक

प्रो. विजयेंद्र स्नातक	संस्कृत, हिंदी के प्रसिद्ध विद्वान। राधा-वल्लभ संप्रदाय के सिद्धांत और साहित्य पर विशेष शोध, जो इस भक्ति आंदोलन का स्रोत-ग्रंथ हो गया है। प्रसिद्ध समीक्षक, आलोचक। दिल्ली विश्वविद्यालय के निवृत हिंदी विभागाध्यक्ष। संपर्क : ई-5/3, राणा प्रताप बाग, नयी दिल्ली।
रामेश्वर शुक्ल अंचल	छायावादोत्तर काल के प्रख्यात कवि, कथाकार, आलोचक, चिंतक। चौथे दशक में नव-रोमानी एवं सामाजिक चेतना के संवाहक, शिक्षाविद्। नयी प्रगीत विद्या में अमूल्य योगदान। संप्रति : सभापति हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग। संपर्क : पचपेढ़ी, दक्षिणी सिविल लाइंस, जबलपुर (म.प्र.)
श्रीकांत जोशी	जन्म : 1930 खण्डवा (म.प्र.) शिक्षा : एम.ए. (हिंदी) प्रख्यात लेखक। कवि, संपादक। चार कविता संग्रह। संपर्क : जवाहर गंज, खण्डवा (म.प्र.) 450001
जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी	हिंदी के प्रख्यात पत्रकार। पिछले 43 वर्षों से स्वतंत्र लेखन एवं जन संचार विशेषज्ञ। भारतीय पत्रकार संघ के अध्यक्ष रहे। फौजी पर महत्वपूर्ण पुस्तक। संपर्क : 55 काकानगर, नयी दिल्ली।
डॉ. प्रभाकर माचवे	आधुनिक हिंदी प्रयोगवादी कविता के मूर्धन्य हस्ताक्षर। प्रख्यात कवि, आलोचक। साहित्य अकादेमी के पूर्व सचिव। संघ लोक सेवा आयोग एवं भारतीय भाषा परिषद कलकत्ता के हिंदी निदेशक रहे। संपर्क : 73 वल्लभ नगर, इंदौर-452 003
प्रभाकर श्रोत्रिय	शिक्षा : एम.ए. पी.एच.डी., डी.लिट्। 13 पुस्तकें। इला 'नाटक'। 'कविता की तीसरी आंख' का अंग्रेजी अनुवाद। साहित्यिक सेवाओं के लिए पुरस्कृत। संपर्क : 82/101, तुलसी नगर, भोपाल-462005

डॉ. गंगा प्रसाद विमल	हिंदी में साठोत्तर लेखकों की पीढ़ी के बहुचर्चित कवि, कथाकार, उपन्यासकार एवं आलोचक। कई देशों की यात्राएं और वहां के साहित्य पर कार्य। इनकी रचनाओं के विदेशी भाषाओं में भी अनुवाद हो चुके हैं। संप्रति : निदेशक, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, आर. के. पुरम, नयी दिल्ली-110066. संपर्क : 3 ए/11 डब्लू इ.ए. करोलबाग नयी दिल्ली-110005
डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल	प्राध्यापक, कवि, आलोचक। हिन्दू कालेज, दिल्ली विश्वविद्यालय में कार्यरत। *प्रकाशित कृतियाँ* : भवानी प्रसाद मिश्र का काव्य-संसार, रामनरेश त्रिपाठी का काव्य, आधुनिक भारतीय नयी कविता, सुमित्रानंदन पंत, हिंदी आलोचना का सैद्धान्तिक आधार, महादेवी का रचना-प्रारुप, सर्वेश्वर और उनकी कविता, माखनलाल चतुर्वेदी तथा अन्य निबंध, स्मृति बिंब।
डॉ. विजय अग्रवाल	हिंदी साहित्य में एम.ए. करने के बाद स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यासों में सामंती जीवन विषय पर पी.एच.डी.। समीक्षा में विशेष रुचि। साहित्य, संस्कृति, भाषा एवं फिल्मों पर अनेक लेख राष्ट्रीय पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित। संप्रति—राज्य सभा के सभापति के विशेष कार्याधिकारी। संपर्क : एक्स वाई 30, सरोजिनी नगर, नयी दिल्ली-110 023।
डॉ. श्याम सुंदर घोष	जन्म : 20 नवंबर, 1934। शिक्षा : एम.ए., पी.एच.डी.। प्रेमचंद के उपन्यासों में मध्य वर्ग पर शोध। भागलपुर विश्वविद्यालय सेवांतर्गत यूनिवर्सिटी प्रोफेसर। प्रेमचंद, नयी कविता, बच्चन, निराला, नव लेखन, साहित्य के नये रुप आदि पर आलोचनात्मक पुस्तकें प्रकाशित। कविता, कहानी, हास्य व्यंग्य, समाज विज्ञान, बाल साहित्य विषयक पुस्तकें भी प्रकाशित। अनेक पुस्तकों का संपादन। संपर्क : ऋतंबरा, पो. जिला गोड्डा, पिन 814133 (बिहार)
डिय शाश भूषण शीतांशु	प्रख्यात लेखक, निबंधकार, आलोचक। पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएं। प्रोफेसर एवम् पूर्व अध्यक्ष हिंदी विभाग, गुरूनानक देव युनिवर्सिटी अमृतसर-143005।

घनश्याम शलभ

संगीत काव्य और चित्रकला की भूमि श्रीनाथ द्वारा में 21 अगस्त, 1929 को जन्म।

शिक्षा : एम.ए. (अंग्रेजी और हिंदी साहित्य)।

छायावाद से ही देश की आजादी की लड़ाई में शिरकत। कुंभलगढ़ और राजनगर की जेलों में कुछ माह व्यतीत। उसी वक्त माखनलाल जी से उनके उदयपुर आगमन पर परिचय। विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में रचनाएं। कविता, उपन्यास के अलावा संपादन कार्य।

संपर्क : 11 ख, रवींद्र नगर, उदयपुर, राजस्थान।

लक्ष्मी नारायण दुबे

जन्म : 27 जून, 1932 हरदा, होशंगाबाद, मध्यप्रदेश।

शिक्षा : एम. (हिंदी) एम. ए. (इतिहास), पी.एच.डी., डी. लिट्.,।

अनेक मानक ग्रंथों के प्रणेता। कई हिंदी साहित्य सम्मेलनों के व्याख्यान में हिस्सा लिया।

संप्रति : विश्वविद्यालय प्रोफेसर तथा अध्यक्ष, हिंदी अध्ययन मण्डल, डा. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर।

संपर्क : ब-6, गौर नगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर-470003।

डॉ. राजमणि शर्मा

पत्र पत्रिकाओं में लेख प्रकाशित। निरंतर रचनाशील।

संपर्क : पो. बा. 1050 चाणक्यपुरी, निकट न्यू हैदराबाद गेट, काशी हिंदू विश्वविद्यालय वाराणसी 221005

ब्रजेंद्र त्रिपाठी

जन्म अक्तूबर 1955। शिक्षा : हिंदी में स्नातकोत्तर। 'विक्षुब्ध वर्तमान' और 'धूप एक बरामदे की' संग्रहों में कविताएं। कविता संग्रह 'तलाश'। पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएं।

संपर्क : 34 संस्कृति नगर, प्लाट नं. 3, सैक्टर 14 रोहिणी, नयी दिल्ली-110 085 । □

फार्म-4

(नियम 8 देखिए)

1.	प्रकाशन स्थान	भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् आज़ाद भवन, आई.पी. इस्टेट, नयी दिल्ली
2.	प्रकाशन अवधि	त्रैमासिक
3.	मुद्रक का नाम	श्रीमती वीणा सीकरी
	क्या भारत का नागरिक है ?	हां
	(यदि विदेशी है तो मूल देश)	
	पता	महानिदेशक, भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, आज़ाद भवन, आई.पी. इस्टेट, नयी दिल्ली
4.	प्रकाशक का नाम	श्रीमती वीणा सीकरी
	क्या भारत का नागरिक है ?	हां
	(यदि विदेशी है तो मूल देश)	
	पता	महानिदेशक, भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, आज़ाद भवन, आई.पी. इस्टेट, नयी दिल्ली
5.	संपादक का नाम	गिरिजा कुमार माथुर
	क्या भारत का नागरिक है ?	हां
	(यदि विदेशी है तो मूल देश)	
	पता	भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, आज़ाद भवन, आई.पी. इस्टेट, नयी दिल्ली
6.	उन व्यक्तियों के नाम व पते जो समाचार-पत्र के स्वामी हों तथा जो समस्त पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार या हिस्सेदार हों।	श्रीमती वीणा सीकरी महानिदेशक, भारतीय सांस्कृतिक, संबंध परिषद्, आज़ाद भवन, आई.पी. इस्टेट, नयी दिल्ली

मैं श्रीमती वीणा सीकरी एतद्द्वारा घोषित करती हूं कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिए गए विवरण सत्य हैं।

दिनांक 28.2.1991 प्रकाशक के हस्ताक्षर